…मीमांसा

ल स्वाध्यायमञ्जरी का एकादश पुष्प

आत्म मीमांसा

अर्थात्

आत्मा की सत्ता के प्रमाण

लेखक

नन्दलाल खन्ना एम. ए. एल एल. बी.

प्रोफ़ेसर पाश्चात्य दर्शन

गुरुकुल काङ्गड़ी

हरद्वार

(लेखक—'पुनर्जन्म मीमांसा')

गुन, १९९६ } { मूल्य दो रुपया

प्रथम संस्करण
१०००

प्रकाशक—
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी
हरिद्वार

मुद्रक—
चौ० हुलासराय
गुरुकुल यन्त्रा
गुरुकुल क

CONSECRATED

TO

THE SACRED MEMORY

OF

SWAMI SHRADHANAND

AS A TOKEN OF REVERENCE

AND

AN ACKNOWLEDGMENT OF MY GRATITUDE

FOR HIS PERSONAL KINDNESS

TO ME.

Nand Lal Khanna.

विषयानुक्रम

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवां अध्याय

छठा अध्याय

सातवां अध्याय

आठवां अध्याय

नवां अध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

बारहवां अध्याय

तेरहवां अध्याय

प्राक्कथन

यह पुस्तक पाश्चात्य दर्शन के दृष्टि-बिन्दु से लिखी गई है। हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य दर्शन के विचारों का प्रचार बहुत कम है, बहुत थोड़ी पुस्तकें हैं जो पाश्चात्य दर्शन के दृष्टि-बिन्दु से लिखी गई हैं। इस कमी को अनुभव करते हुए मैंने इस पुस्तक में और अपनी दूसरी पुस्तक 'पुनर्जन्ममीमांसा'[1] में पाश्चात्य दर्शन की विचारशैली के नमूने हिन्दी-पाठकों के सन्मुख उपस्थित करने का यत्न किया है।

इस पुस्तक का विषय है, 'आत्मा की सत्ता के प्रमाण'। अनेक कारणों से, जिन में प्राकृतिक विज्ञान की सफलता भी एक है, आजकल पाश्चात्य संसार में प्रकृतिवाद फैला हुआ है। परमात्मा और आत्मा को भूलकर अनेक लोग प्रकृति अथवा किसी भौतिक शक्ति को ही सब कुछ मानते हैं। पश्चिम से यह लहर भारतवर्ष की ओर भी आ रही है। इस प्राचीन आध्यात्मवादी देश में भी अनेक लोग प्रकृतिवाद की ओर झुक रहे हैं। इसलिए इस समय आध्यात्मिक सत्ताओं के बलपूर्वक समर्थन की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक समयोपयोगी सिद्ध हो सकेगी।

---

1. प्रकाशक शारदा मंदिर लिमिटेड, नई सड़क देहली।

आत्मा की सत्ता के विषय में भारतीय दर्शनों के सिद्धान्त और मुख्य युक्तियां भी इस पुस्तक में दे दी गई हैं, परन्तु अधिक स्थान पाश्चात्य युक्तियों को दिया गया है। इसका एक विशेष कारण है। आध्यात्मिक सत्ताओं के विरुद्ध बहुत से आक्षेप आजकल पाश्चात्य प्रकृतिवादी वैज्ञानिकों की ओर से ही होते हैं। उनके आक्षेप वर्त्तमान जगत् की समस्याओं और वर्त्तमान विज्ञान के सिद्धान्तों की दृष्टि से होते हैं। ऐसे आक्षेपों के उत्तर भी आधुनिक पाश्चात्य विचारकों से ही मिल सकते हैं। भारतीय दर्शन में अत्यन्त उच्च कोटि का विचार मिलता है, परन्तु स्वाभाविक तौर पर वह विचार वर्त्तमान समय की समस्याओं को दृष्टि से नहीं हुवा है। वर्त्तमान विज्ञान प्रकृतिवादी है, परन्तु वर्त्तमान दर्शन मुख्यतया आध्यात्मवादी हैं। अतः पाश्चात्य दर्शन में प्रकृतिवाद के विरुद्ध अनेक सुन्दर युक्तियां मिलती हैं। वर्त्तमान काल परीक्षणात्मक अनुसन्धान का युग है। वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक क्षेत्र के भिन्न भिन्न स्थलों के सम्बन्ध में खोज करते हैं तो दार्शनिक, मनुष्य की असाधारण मानसिक शक्तियां के सम्बन्धमें परीक्षण कर रहे हैं। इस मानसिक अनुसन्धान का साईकिकलरिसर्च का नाम दिया जाता है। इससे मनुष्य की अनेक शक्तियों का पता लगा है, जो आत्मा की सत्ता की ओर संकेत करती हैं, क्योंकि उनकी व्याख्या शरीर द्वारा नहीं हो सकती। इस मानसिक अनुसन्धान का आधार घटनाएं और परीक्षण हैं, अतः यह विज्ञान के शस्त्रों से ही वैज्ञानिक प्राकृतिवाद का खण्डन करता है। इस प्रकार, आत्मा के समर्थन में यह नवीन खोज बड़ी महत्त्वपूर्ण

सहायता देती है। मैंने इस पुस्तक में इस खोज के आधार पर अनेक घटनाएं आत्मा की सत्ता के समर्थन के लिए दी हैं।

इस पुस्तक में आत्मा के सम्बन्ध में अन्तिम सिद्धान्त भारतीय दार्शनिक विचार के अनुकूल रखा गया है यद्यपि युक्तियां और विचार-शैली मुख्यतया पाश्चात्य दार्शनिक विचार के अनुकूल हैं। विचार स्वतन्त्र रीति से किया गया है। घटनाओं और प्रचलित सिद्धान्तों के लिए अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है परन्तु उनके आधार पर तर्क और परिणाम प्रायः लेखक के अपने हैं। जो पाठक दार्शनिक विचार से परिचित न हों अथवा पारिभाषिक दार्शनिक विचार में रुचि न रखते हों, उन्हें पुस्तक का अध्ययन करते हुए, दूसरा, छठा, आठवां और नवां अध्याय छोड़ देने चाहिएं।

पुस्तक का विषय केवल आत्मा है, अतः मन, अन्तःकरण आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया। पाश्चात्य दर्शन मन अथवा अन्तःकरण की अलग सत्ता नहीं मानता। भारतीय दर्शनों में भी इनके सम्बन्ध में परस्पर कुछ मतभेद हैं—उदाहरण के लिए, न्याय दर्शन मन की सत्ता को मानता है तो योगदर्शन अन्तःकरण को। परन्तु इस पुस्तक में कोई ऐसी बात नहीं कही गई जो मन आदि के प्रतिकूल हो। आत्मा के सम्बन्ध में इस पुस्तक में प्रदर्शित सिद्धान्त के साथ पाठक अपनी अपनी इच्छा के अनुसार मन आदि के सिद्धान्त जोड़ सकते हैं। यहां केवल उन्हें विषयान्तर समझ कर छोड़ दिया गया है।

इस पुस्तक को तय्यार करने में मुझे मेरे साथी उपाध्यायों ने और शिष्यों ने बहुमूल्य सहायता दी है, श्री पं० सत्यव्रत जी

सिद्धान्तालङ्कार ने पुस्तक छपवाने के सम्बन्ध में अनेक परामर्श दिए हैं। श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार साहित्याचार्य ने हस्त-लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ा और भाषा को परिमार्जित किया है। श्री पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति ने भारतीय दर्शनशास्त्रों के मन्तव्यों के सम्बन्ध में कुछ परामर्श दिए हैं। श्री पं० केशव-देव जी वेदालंकार और श्री ब्र० रामचन्द्र जी ने सुपाठ्य हस्त-लेख तय्यार करने में सहायता दी है। श्री पं० हरिवंश जी वेदाल-ङ्कार और श्री ब्र० सतीश जी ने प्रूफ़संशोधन और विषय-सूची तथा इण्डेक्स बनाने में सहायता दी है।

मैं इन सब महानुभावों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

गुरुकुल कांगड़ी — नन्दलाल खन्ना

१ फाल्गुन, १९९६.

आत्म-मीमांसा

पहला अध्याय

प्रकृति और आत्मा

मनुष्य का एक स्थूल शरीर है, इसका प्रत्यक्ष सभी को हो रहा है। इस शरीर के साथ साथ मनुष्य के अन्दर एक और सत्ता भी है जिसे हम 'चेतना प्रवाह' या 'विचारधारा' (Stream of Consciousness) आदि नाम दे सकते हैं। जागृत अवस्था में चेतना के इस प्रवाह का हर समय अनुभव किया जा सकता है; भय शोक, सुख दुःख, काम क्रोध, संकल्प विकल्प आदि अवस्थाएं चेतना की ही अवस्थाएं हैं। मनुष्य के अन्दर स्थित इस चेतना प्रवाह से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। इन्कार भी चेतना ही की एक अवस्था है, इसी प्रकार चेतना प्रवाह में सन्देह प्रकट करना भी चेतना ही को प्रमाणित करना है। सन्देह अर्थात् 'ऐसा है या नहीं' इस तरह का चिन्तन भी चेतना ही की एक अवस्था है।

एवं मनुष्य मात्र का व्यापक अनुभव इस बात की साक्षी देता है कि मनुष्य में 'शरीर' और 'चेतना प्रवाह' दो ऐसी चीज़ें हैं जिनके अस्तित्व का निराकरण नहीं किया जा सकता। ये दोनों परस्पर एक दूसरे पर असर डालती हैं। आंख कान आदि शरीरावयवों के उत्तेजित होने से दर्शन-श्रवण आदि क्रियाएं चेतना में उत्पन्न होती हैं। यदि शरीर को दो चार दिन भोजन न मिले तो मनुष्य की चेतना में भी परिवर्त्तन आ जाता है, अक्ल चक्कर खाने लगती है, गम्भीर चिन्तन करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार यदि अफ़ीम शराब आदि मादक द्रव्य शरीर में प्रविष्ट हो जाएं तो विचार-धारा का प्रवाह बहुत परिवर्तित हो जाता है। शरीर अत्यन्त थका हुआ हो तो निद्रा आ जाती है अर्थात् चेतना का साधारण प्रवाह स्थगित हो जाता है अथवा स्वप्नों द्वारा अनियमित होजाता है।

इसके विपरीत चेतना की अवस्था का भी शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शरीर के बहुत से अंग प्रायः मनुष्य की इच्छा के अनुकूल कार्य करते हैं। हम चाहें तो अपने हाथ पांव हिला सकते हैं और चाहें तो उन्हें पड़ा रहने दे सकते हैं। इसी प्रकार भय, क्रोध, शोक आदि की हालत में मनुष्य के शरीर में अद्भुत परिवर्तन हो जाते हैं। भय में सारा शरीर निर्बल होकर थर थर कांपने लगता है; क्रोध में चेहरा तमतमा उठता है; शोक से देह संतप्त हो जाती है, आंखों

से आंसू झरने लगते हैं। यदि चेतना की ये अवस्थाएं कभी अत्यन्त उग्ररूप धारण कर लें तो मृत्यु भी सम्भव है।

शरीर और चेतना प्रवाह की इस पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रतीत होता है कि दोनों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है, परन्तु घनिष्ठ सम्बन्ध के होते हुए भी दोनों का स्वरूप अलग अलग है। साथ ही प्रभाव केवल एक ओर से नहीं परन्तु पारस्परिक है। इससे यह अनुमान युक्तियुक्त है कि मनुष्य दो भिन्न भिन्न पदार्थों का योग है---एक शरीर और दूसरा चेतना-प्रवाह का अधिष्ठान, आत्मा। परन्तु आजकल के कई विचारकों के अनुसार संसार की समस्त सत्ताओं को किसी एक पदार्थ में घटा देना ही दर्शनशास्त्र का उद्देश्य है। उनकी दृष्टि में दर्शन के किसी भी सिद्धान्त की सत्यता और प्रामाणिकता का एक बड़ा चिन्ह यह है कि वह कहां तक जगत् के सब पदार्थों को किसी एक अविशेष अन्तिम सत्ता का परिणाम रूपान्तर या आविष्कार सिद्ध करता है। इस प्रकार के आधुनिक दार्शनिकों को मनुष्य के अन्दर 'शरीर' और 'आत्मा' इन दो सत्ताओं को मौलिक रूप से पृथक् पृथक् और परस्पर स्वतन्त्र स्वीकार करने में संकोच होता है। उन्हें दो सत्ताएं मानने की अपेक्षा यह अधिक युक्ति संगत मालूम होता है कि शरीर को आत्मा का अथवा आत्मा को शरीर का कारण मान लिया जाय और इन दो भिन्न प्रकार की सत्ताओं को अन्त में एक ही में घटा दिया जाय।

इन एकतावादी (Monistic) विचारकों के सामने जब यह प्रश्न होता है कि शरीर अर्थात् प्रकृति (Matter) और आत्मा (Spirit) दोनों में से किसे कारण माना जाय और किसे परिणाम, तो बहुत से शरीर और प्रकृति की ओर झुक जाते हैं, क्योंकि आजकल प्रकृति और विज्ञान (Science) का युग है, जहां देखो प्रकृति सम्बन्धी आविष्कार मनुष्यों को चकाचौंध कर रहे हैं। कहीं बेतार की तार है जिससे क्षण भर में संसार के एक कोने की खबर दूसरे कोने तक पहुंच जाती है; कहीं रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, रेलगाड़ी, हवाई जहाज़ आदि अन्य चीजें हैं जिन्होंने मनुष्य की सभ्यता और रहन सहन में बड़ा परिवर्तन कर दिया है। वर्तमान संसार को प्रतीत होने लगा है कि जो शक्ति है वह प्रकृति में ही है, प्रकृति की तुलना में आत्मा और उसका विचार प्रवाह बड़ा निर्बल प्रतीत होता है। मनुष्य प्रकृति को बना नहीं सकता न ही उसमें बहुत परिवर्तन कर सकता है। किसी मनुष्य को कितनी भी भूख लगी हो परन्तु वह सामने पड़े हुए पत्थर को रोटी नहीं बना सकता। संसार के सब मनुष्य मिलकर भी प्रयत्न करें तो केवल पृथ्वी के ऊपर के पृष्ठ में थोड़ा सा परिवर्तन ला सकेंगे। इसके विपरीत, विचार प्रवाह बहुत हद तक प्रकृति पर आश्रित प्रतीत होता है। महान् ब्रह्माण्ड में कणवत् इस पृथिवी की उष्णता का कुछ बढ़ जाना प्रकृति में एक अत्यन्त तुच्छसा परिवर्तन है; परन्तु इससे सम्भव है कि

सब मनुष्य वाष्प में परिणत हो जाएं और इस प्रकार उन अवस्थाओं का ही अभाव हो जाय जिन पर मनुष्य जीवन में विचार धारा आश्रित प्रतीत होती है। प्रकृति सर्वत्र फैली हुई है। चेतना केवल जीवित चीज़ों में दिखाई देती है। प्रकृति की आयु अपरिमित प्रतीत होती है। विज्ञान के अनुसार पृथिवी अरबों वर्ष पुरानी है और अन्य आकाशीय पिण्ड और भी अधिक पुराने हैं, परन्तु चेतना की आयु लगभग सौ वर्ष से अधिक नहीं प्रतीत होती ; क्योंकि साधारणतया मनुष्य (या अन्य प्राणियों) का जीवन इससे अधिक नहीं होता। यदि वर्तमान विज्ञानों को देखा जाय तो प्रकृति के विषय में सैकड़ों विज्ञान हैं ; परन्तु चेतना के विषय में मनोविज्ञान (Psychology) ही एक मात्र विज्ञान है और मनोविज्ञान का विषय भी केवल चेतना नहीं किन्तु सम्पूर्ण मनुष्य अर्थात् शरीर और चेतना दोनों है। इस प्रकार के कारणों से प्रकृति वादी विचारकों को चेतना की अपेक्षा शरीर, आत्मा की अपेक्षा प्रकृति, अधिक शक्तिशाली और महत्व पूर्ण प्रतीत होती है; और इसलिये वह शरीर को विचार धारा का कारण और इसी प्रकार प्रकृति को संसार की सब चीजों का कारण मान लेते हैं। इस प्रकार प्रकृतिवादी विचारकों की दृष्टि में प्रकृति ही एक मात्र अन्तिम और आधार भूत सत्ता है और संसार की अन्य सब चीजें इसका परिणाम या आविष्कार मात्र हैं; एवं विचारधारा या चेतनता का आत्मा रूपी कोई

स्वतन्त्र आधार या अधिष्ठान नहीं, अपितु यह भी प्रकृति (अर्थात्) शरीर का ही परिणाम है। ताप, विद्युत, प्रकाश, रासायनिक स्नेह आदि प्रकृति की अनेक शक्तियां और क्रियाएं हैं, चेतना भी इन्हीं में से एक है। यदि कहा जाय कि चेतना, और ताप विद्युत आदि प्राकृतिक शक्तियों में बहुत भेद हैं इसलिए चेतना को प्रकृति की शक्ति नहीं माना जा सकता, तो प्रकृति वादी उत्तर देता है कि ताप, विद्युत्, रासायनिक स्नेह, आकर्षण, गति आदि प्राकृतिक शक्तियां एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न होती हुई भी एक ही आधारभूत सत्ता प्रकृति के परिणाम हैं। इसी प्रकार चेतना भी ताप, विद्युत आदि से भिन्न होने के बावजूद प्रकृति की ही एक शक्ति है। इसके विपरीत, अनेक विचारकों का मत है कि चेतना को प्रकृति की शक्ति नहीं माना जा सकता; अतः यह विषय विचारणीय है कि प्रकृति वादी का यह सिद्धान्त कहां तक सत्य है कि चेतना प्रकृति का परिणाम मात्र है। अगले अध्याय में हम इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हैं।

दूसरा अध्याय

प्रकृतिवाद

(१)

(दार्शनिक दृष्टि से समीक्षा)

प्रकृतिवाद के अनुसार मनुष्य शरीर और आत्मा इन दो भिन्न भिन्न पदार्थों का योग न होकर केवल शरीर मात्र है। मनुष्य में जो चेतना प्रवाह है वह दिमाग़ की क्रिया का परिणाम है। जिस प्रकार जिह्वा बोलने का उपकरण है, इसी प्रकार दिमाग़ सोचने-विचारने का; और क्योंकि सोचना विचारना शरीर से अतिरिक्त किसी आत्मा पर आश्रित नहीं प्रत्युत शरीर की ही उपज है; इसलिये इसका शरीर की किसी क्रिया पर असर नहीं पड़ता। जैसे रेल के इञ्जन की क्रिया का परिणाम सीटी बजना है, सीटी के बजने से रेलगाड़ी की गति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; इसी तरह दिमाग़ की क्रिया का परिणाम ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, संकल्प आदि हैं। परन्तु क्योंकि ये शरीर ही की क्रिया का परिणाम हैं, इसलिये इनका शरीर की अन्य क्रियाओं पर कोई असर नहीं होना

अर्थात् यह कहना ग़लत होगा कि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से काम करता है या अपने प्रयत्न से सफल होता है। कोई कार्य इच्छा और प्रयत्न से न होकर दिमाग़ की क्रिया से होता है। इच्छा प्रयत्न आदि दिमाग़ की क्रियाओं के अन्य परिणाम हैं। इस प्रकार वह शारीरिक कार्यों के कारण नहीं, केवल सूचना देते हैं कि वह शारीरिक काम हो रहे हैं। जैसे मनुष्य जब चलता है तो उसकी छाया भी उसके पीछे चलती है। छाया का चलना मनुष्य के चलने का सूचक और सहवर्ती तो है, लेकिन उसका कारण नहीं है।

इस सिद्धान्त को यदि अक्षरशः मान लिया जाय तो इसका अभिप्राय यह होगा कि यदि हम को कवि कालिदास के दिमाग़ और वात संस्थान (Nervous System) की रचना मालूम होती तो उसके विचार इच्छाओं आदि की सर्वथा उपेक्षा करके भी हम उसका जीवन वृत्तान्त लिख सकते और बता सकते हैं कि क्यों किसी समय उसने कागज़ पर वह स्याह दाग़ डाले जिनका नाम 'मेघदूत' है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य एक स्वय चलने वाली मशीन (Automaton) है। भेद केवल इतना है कि मनुष्य में चेतनता भी है यद्यपि वह चेतनता शरीर पर कोई प्रभाव नहीं रखती।

प्रकृति वादी अपने इस सिद्धान्त के लिये प्रमाण क्या देते हैं? हम उनकी कुछ मुख्य युक्तियां और उनके उत्तर एक-एक करके नीचे लिखते हैं:—

पहली युक्ति—शरीर के बहुत से काम मनुष्य की इच्छा से स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं। मनुष्य इन्हें स्वयं विचार पूर्वक नहीं करता। उदाहरण के लिये, हृदय की गति अपने आप होती रहती है, इसकी हमें खबर तक नहीं होती। इस तरह शरीर में रक्त संचार तथा भोजन का पचना आदि क्रियाएं जागृति में तथा निद्रा की अवस्था में भी स्वयं होती रहती हैं। जब इस प्रकार की उपयोगी और उद्देश्य युक्त क्रियाएं इच्छा और विचार की अपेक्षा किये बिना हो सकती हैं तो जिन क्रियाओं का इच्छा या विचार पूर्वक होना कहा जाता है उन्हें भी क्यों न केवल शरीर की ही उपज और विचार इच्छा आदि से स्वतन्त्र मान लिया जाय। क्यों न समझ लिया जाय कि इच्छा और विचार उनके होने के सूचक मात्र हैं, कारण नहीं।

समालोचना—यह ठीक है कि रक्त संचार आदि कुछ उपयोगी क्रियाएँ ऐसी हैं जो इच्छा और प्रयत्न के बिना स्वयं हो जाती हैं। परन्तु, इससे यह अनुमान करना कि सभी क्रियाएँ इच्छा और प्रयत्न से स्वतन्त्र हैं, उचित नहीं। यदि केवल सादृश्य (Continuity) के आधार पर अनुमान युक्ति युक्त हो तो इसके विपरीत भी अनुमान किया जा सकता है। हमारा अनुभव इस बात की साक्षी देता है कि हम बहुत सी उपयोगी क्रियाएं अपनी इच्छा और अपने प्रयत्न से करते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं के सादृश्य से यह अनुमान क्यों न कर लिया जाय कि रक्त संचार आदि क्रियाएं भी (जिनके

बारे में समझा जाता है कि उनका सम्बन्ध वात संस्थान के निचले हिस्सों से है) वास्तव में एक प्रकार की चेतना और इच्छा के आधीन हैं, यद्यपि इस चेतना का हमें अनुभव नहीं होता ।

यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसी चेतनता का क्या मतलब, जिसकी हमें अनुभूति ही नहीं होती ? चेतनता का तो अर्थ ही यह है कि कुछ प्रतीत हो, कुछ अनुभव हो । इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसानी से दिया जा सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान यह स्वीकार करता है कि हमारी साधारण चेतनता के अतिरिक्त जिसका हमें अनुभव होता रहता है एक ऐसी भी चेतनता है जिसका हमें साधारणतया अनुभव नहीं होता। इसे उपचेतना (Secondary or Subliminal Consciousness)का नाम दिया जाता है। इस प्रकार आज कल वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी चेतनता और ऐसी इच्छाएं असम्भव नहीं हैं जिनका अनुभव न हो रहा हो।

दूसरी युक्ति—विचार और शरीर की क्रियाओं में परस्पर बहुत अधिक अन्तर है; इतना अन्तर है कि दोनों एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं। शरीर की क्रियाएं प्राकृतिक नियमों से बंधी हुई हैं, अतः कार्य कारण के नियम के आधीन हैं । इसके विरुद्ध विचार और प्रयत्न आदि में स्वतन्त्र इच्छा (Free Will) का अंश होने से उन पर कार्य कारण भाव का प्राकृतिक नियम लागू नहीं

है। इसके अतिरिक्त यदि इच्छादि को शारीरिक क्रियाओं का कारण मान लिया जाय तो यह कारण परिगण्य नहीं होगा, इस लिये भौतिक विज्ञान का विषय नही बन सकेगा। अतः चेतना को शारीरिक क्रियाओं का कारण नहीं मानना चाहिये।

समालोचना—प्रकृति वादियों की ऐसी इच्छा है कि शारीरिक क्रियाओं की व्याख्या केवल प्राकृतिक कारणों से की जाय, इन प्राकृतिक कारणों के विषय में परीक्षण किये जा सकते हैं, इनके सम्बन्ध में गणित के ठीक ठीक नियम लगाये जा सकते हैं। इसके विपरीत यदि विचार प्रयत्न संकल्प आदि को भी कारण मान लिया जाय, तो इन कारणों के विषय में परीक्षण नहीं किये जा सकते ; न ही गणित के नियमों के अनुसार इनकी गणना सम्भव है। यह युक्ति तर्क पर आश्रित नहीं है, केवल इस इच्छा पर आश्रित है कि कारण भौतिक होने चाहियें, जिनकी गणना हो सके। केवल यह इच्छा ज़रा भी सिद्ध नहीं कर सकती कि अन्य प्रकार के कारण नहीं हो सकते।

तीसरी युक्ति— आधुनिक शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) के अनुसार, ऐच्छिक और वैचारिक क्रियाएं मस्तिष्क के द्वारा ही हो सकती हैं। अतः यदि विचार और इच्छा का शारीरिक क्रियाओं पर असर हो सकता है तो वह केवल मस्तिष्क की क्रियाओं

पर प्रभाव डालने से ही हो सकता है । मस्तिष्क पर असर पड़ने का अर्थ यह है कि मस्तिष्क में होने वाली रासायनिक क्रियाओं में परिवर्तन हो । लेकिन यह समझ में नहीं आता कि विचार कैसे रासायनिक क्रियाओं को परिवर्तित कर सकता है । रासायनिक क्रियाओं में परिवर्तन का यह अभिप्राय है कि नये रासायनिक समास बनें और दिमाग़ के अणु (Molecules) परिवर्तित होकर नई आकृति स्वीकार करें । यह सब परिवर्तन केवल विचार द्वारा हो जायगा ऐसा मानने में सङ्कोच होता है ।

समालोचना—कोई कारण किस रीति से कार्य को उत्पन्न करता है इसका मनुष्य को अभी तक ज्ञान नहीं । वर्तमान समय का प्रसिद्ध लेखक ऐकन (Eucken) लिखता है कि,'हम प्रति दिन देखते हैं कि जीवित वस्तुएं अन्य जीवित वस्तुओं को उत्पन्न करती हैं (Life produces life), परन्तु कौन बतला सकता है कि किस रीति से ? हम देखते हैं कि एक चीज़ दूसरी चीज़ को अपनी ओर आकृष्ट करती है, परन्तु आकर्षक चीज़ आकृष्यमाण चीज़ पर दूर से ही क्या और किस प्रकार असर पैदा करती है, यह किसे मालूम है ?' इसी तरह यदि यह समझ नहीं आता कि विचार मस्तिष्क के रासायनिक समासों में कैसे परिवर्तन कर देता है, तो यह भी समझ नहीं आता कि कोई भौतिक कारण कैसे दिमाग़ में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है । इसलिये कारण की प्रक्रिया के

अज्ञात होने की कठिनाई जितनी विचार के विषय में है, उतनी ही प्राकृतिक कारणों के विषय में भी है। यदि इसी कठिनाई के आधार पर किसी कारण के औचित्य में अविश्वास करना हो, तो क्या वैज्ञानिक अथवा प्रकृतिवादी भौतिक क्षेत्र में भी इसी तरह कारणों पर अविश्वास करेंगे ? रासायनिक-स्नेह, आकर्षणशक्ति तथा विद्युत आदि अनेक भौतिक शक्तियों को कारण न मानने पर विज्ञान और प्रकृतिवाद का निर्वाह नहीं,यद्यपि वह जरा भी नहीं बता सकता कि यह कारण किस रीति से अपने कार्य उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशा में प्रकृतिवादी का कोई अधिकार नहीं कि वह विचार आदि कारणों का इस आधार पर प्रतिवाद करे कि उनकी प्रक्रिया समझ में नहीं आती। यदि वह ऐसा करे तो उसे भौतिक कारणों का भी प्रतिवाद करना चाहिये। सब मनुष्यों को सदा यह अनुभव होता है कि हम अपने संकल्प और प्रयत्न से अपने शरीर की बहुत सी क्रियाएं कर सकते हैं। इस सार्वजनिक साक्षी को मिथ्या सिद्ध करने के लिये एक प्रबल विरोधी प्रमाण की आवश्यकता है, जो कि प्रकृतिवादियों के पास नहीं है।

अब तक हमने प्रकृतिवादियों की युक्तियों का खण्डन किया है। इसके साथ ही चेतनता के शारीरिक क्रियाओं के कारण होने के पक्ष में भी कई युक्तियां दी जा सकती हैं, उन्हें हम क्रमशः नीचे देते हैं—

(१) प्रकृतिवादी विकास को मानते हैं। विकासवाद के अनुसार सब प्राणी एक उत्तरोत्तर उन्नत शृंखला बनाते हैं। विकास की शृंखला में जितना भी कोई प्राणी अधिक उन्नत होता है, उतनी ही उसकी चेतना भी सूक्ष्म और उच्चकोटि की होती है। प्राणियों के अन्य अंगों के समान चेतनता का भी शनैः शनैः विकास हुआ प्रतीत होता है। विकास उन्हीं अङ्गों और शक्तियों का होता है जो जीवनोपयोगी हों, चेतनता भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकती; अतः चेतनता जीवन संग्राम में सहायता पहुंचाती है। सामान्य बुद्धि (Common Sense) के अनुसार भी मनुष्य की प्रत्येक शक्ति जीवन के लिये उपयोगी होनी चाहिये, ईश्वर ने कोई चीज़ निरर्थक नहीं बनाई। परन्तु चेतनता द्वारा जीवन की सहायता तभी हो सकती है जब इसका शरीर की क्रियाओं पर कुछ प्रभाव हो – अर्थात् यह उन क्रियाओं का किसी अंश में कारण हो।

(२) मनुष्य में एक त्रुटि दिखाई देती है। चेतनता और केवल चेतनता ही यदि यह शरीर पर प्रभाव डाल सकती हो तो उस त्रुटि को पूरा कर सकती है। मनुष्य को उस त्रुटि के कारण कोई हानि नहीं होती, अतः यह मानना युक्ति युक्त होगा कि चेतनता शरीर पर प्रभाव डालती है। मनुष्य शरीर के कुछ काम ऐसे हैं जो एक स्थिति में एक ही तरह होते हैं। उदाहरण के लिये मनुष्य की आंख में

किरकिरी पड़ जाय तो आंख अनिवार्य रूप में और इच्छा के विपरीत भी बन्द हो जाती है और पानी बहने लगता है। इस प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियाएं निश्चित हैं, इन्हें वैज्ञानिक लोग वातसंस्थान (Nervous System) के निचले केन्द्रों (Lower Centers) अर्थात् मेरु दण्डादि की क्रियाएं मानते हैं। इसके विपरीत कई प्रतिक्रियाएं अनिश्चित हैं। उदाहरण के लिए किसी मनुष्य के सामने कोई खाने की चीज़ पड़ी हो तो सम्भव है कि वह उसे खाये और सम्भव है कि न खाये। अर्थात् इस स्थिति में मनुष्य की क्रिया अनिश्चित है, ऐसी क्रियाओं को वैज्ञानिक दिमाग़ (Cerebrum) के आधीन मानते हैं।

जब एक स्थिति में कई क्रियायें सम्भव हों तो उनमें से कुछ शरीर रक्षक हो सकती हैं और कुछ शरीर-घातक। तब शरीर रक्षा के लिए आवश्यक है कि रक्षक क्रियाएं चुनी जायं और घातक क्रियाओं का त्याग किया जाय। परन्तु शरीर इस प्रकार का चुनाव नहीं कर सकता, शरीर तो एक मशीन है जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार काम करता है। केवल भौतिक Material) चीज़ होने से इसका कोई उद्देश्य नहीं हो सकता, अतः इसे इस बात की परवाह नहीं हो सकती कि शरीर रक्षा होती है या शरीर नाश—जैसे एक घड़ी के मालिक को चिन्ता हो सकती है कि यह ठीक चले, परन्तु स्वयं घड़ी को इस बात की परवाह नहीं कि यह ठीक

चलती है या ग़लत। अब चेतनता यदि कारण हो, शरीर पर प्रभाव डाल सकती हो, तो शरीर की इस त्रुटि को पूरा कर सकती है और चेतनता के अतिरिक्त कोई चीज़ इसे पूरा नहीं कर सकती। हम देखते हैं कि चेतनता का स्वभाव चुनाव करना है। उदाहरण के लिये मनुष्य के सामने कई चीज़ें होती हैं। परन्तु वह केवल उन्हीं चीजों को अच्छी तरह देखता है जिन की ओर उस की रुचि होती है। अनेक छोटे २ कीड़े आंखों के सामने होते हैं परन्तु मनुष्य को उनके होने की ख़बर भी नहीं होती, यद्यपि एक कृमि-विज्ञान-वेत्ता (Entomologist) उन्हीं को देखता है। एक ही चीज़ की आगे पीछे दायें-बायें से अर्थात् द्रष्टा की स्थिति के भेद के अनुसार भिन्न २ आकृतियां दिखाई देती हैं, परन्तु मनुष्य उनमें से केवल एक को ही वास्तविक समझता है; क्योंकि वह उसे सुन्दर या उपयोगी मालूम होती है, और शेष को उसकी प्रतीतियां मात्र समझता है। जीवन में कई मार्ग सम्भव होते हैं परन्तु मनुष्य एक को चुन लेता है। इस प्रकार चेतनता सर्वत्र चुनाव करने वाली चीज़ प्रतीत होती है और शरीर को इसी चुनाव की आवश्यकता है। चेतनता यदि शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव डाल रही हो, तो यह अनिश्चित क्रियाओं में से शरीरोपयोगी को चुन लेगी और नाशक को रोक देगी। इसके प्रभाव से शरीर की क्रियाएं उद्देश्य युक्त हो जाएंगी। चेतनता-

के बिना शरीर की क्रिया की आवश्यकता यह है कि यदि ज़हर खाया जाएगा तो शरीर का नाश होगा और यदि भोजन खाया जाएगा तो शरीर स्वस्थ होगा। शरीर को परवाह नहीं होगी कि नाश आता है अथवा स्वास्थ्य; परन्तु चेतनता के प्रभाव से अवस्था यह हो जाएगी कि शरीर की रक्षा होनी चाहिये और इस लिये ज़हर नहीं खाना चाहिए भोजन खाना चाहिये। यदि चेतनता शारीर क्रियाओं का कारण हो तो क्रियाओं में से शरीरोपयोगी चुनी जाएंगी और अनुपयोगी रोक दी जाएंगी। अनुभव बताता है कि प्रायः ऐसा ही होता है। अनिश्चित क्रियाओं में से मनुष्य प्रायः रक्षक क्रियाओं को चुनता रहता है और नाशक को छोड़ता रहता है, उदाहरण के लिये चलने में मोटर या कुएं से एक ओर हट जाता है। इस का अर्थ यह है कि मनुष्य की त्रुटि से जो हानि हो सकती है उससे मनुष्य बचा रहता है। इस हानि से चेतनता ही बचा सकती है। चेतनता मनुष्य में विद्यमान है और अन्य कोई चीज नहीं दिखाई देती जो चुनाव कर सके; अतः मानना पड़ेगा कि वह मनुष्य को शरीर की स्वाभाविक त्रुटि से बचाती है। परन्तु चेतनता बचा तभी सकती है यदि यह शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव डाल सके। अतः यह मानना पड़ेगा कि यह शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव डालती है।

(३) यदि दिमाग़ का एक हिस्सा काट दिया जाए तो दिमाग़ कुछ दिनों के लिये असाधारण क्रियायें करने लगता है, परन्तु शीघ्र ही फिर से ये क्रियायें असाधारण न रह कर पहिले की तरह साधारण हो जाती हैं। अब यदि चेतनता को कारण माना जाए तो समझ में आ सकता है कि दिमाग़ के शेष हिस्से कटे हुवे हिस्से के काम को क्यों करने लगते हैं†। चेतनता का तो कुछ उद्देश्य है, अतः इसकी आधीनता में दिमाग़ के शेष हिस्सों का फिर वही काम करने लगना स्वाभाविक प्रतीत होता है। दिमाग़ केवल एक यन्त्र है, इसे इस बात की परवाह नहीं कि यह कैसे कार्य करता है, जैसे एक इञ्जन को परवाह नहीं कि यह गाड़ी को पुल के ऊपर से ले जा रहा है या नीचे दरिया में घसीट कर ले जा रहा है। अतः यदि चेतनता शरीर पर प्रभाव न डालती हो तो समझ में नहीं आता है कि दिमाग़ के शेष हिस्से फिर वही काम क्यों करने लग जाते हैं।

(४) यदि मान लिया जाए कि चेतनता मनुष्य की कुछ क्रियाओं का कारण हो सकती है और शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव डाल सकती है तो एक प्रकार की घटनाओं की अत्यन्त युक्ति युक्त व्याख्या हो सकती है, परन्तु चेतनता को कारण न मानने से वह घटनाएं एक पहेली प्रतीत होती हैं:—हम देखते हैं कि जीवनोपयोगी क्रियायें प्रायः सुखदायी होती हैं और जीवन नाशक क्रियाएं प्रायः दुःखदायी

† Vicarious function

होती हैं । उदहारण के लिये, दम घुटना, भोजन पानी निद्रा का अभाव, थकावट की अवस्था में काम करना, शरीर के किसी भाग का जल जाना, ज़हर खा लेना आदि क्रियाएं दुःखदायी हैं; और थकावट के पश्चात् विश्राम, भूख की अवस्था में भोजन करना, विश्राम के पीछे व्यायाम आदि क्रियाएं सुखदायी हैं। अब प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों है? जीवनोपयोगी क्रियायें दुखदायी क्यों नहीं, और जीवन नाशक क्रियायें सुखदायी क्यों नहीं? यदि यह मान लिया जाए कि चेतनता शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव डाल सकती है तो समझ में आजाता है कि ऐसा क्यों है: ऐसे मनुष्य जिनको जीवन नाशक क्रियाओं में आनन्द आए और जीवन उपयोगी क्रियाओं में पीड़ा हो जी नहीं सकते। उदाहरण के लिये किसी मनुष्य को पानी में सिर डुबो कर दम घुटने में आनन्द आए तो वह जाकर किसी निकटवर्ती जलाशय में सिर डुबो लेगा, और डुबोये रखेगा जब तक उसका प्राणान्त न हो जाए। ऐसा मनुष्य कुछ मिनटों से अधिक न जी सकेगा। अतः ऐसे मनुष्य उत्पन्न नहीं किए गये जिनको जीवन घातक क्रियाओं में आनन्द आता हो, अथवा यदि ऐसे लोग उत्पन्न भी हुए तो वह जी नहीं सके और सन्तति नहीं छोड़ सके। अतः अब ऐसे ही मनुष्य पाये जाते हैं जिनको जीवन उपयोगी क्रियाएं सुखदायी हैं और जीवन नाशक क्रियाएं दुःखदायी। यदि यह मानलें कि चेतनता शरीर की क्रियाओं पर कोई

प्रभाव नहीं डाल सकती तो ऐसे मनुष्य भी जी सकेंगे जिनको अत्यन्त भूख में बड़ा आनन्द आता हो, और उस अवस्था में भोजन करने से अत्यन्त कष्ट होता हो। तब प्रश्न उठता है कि ऐसे मनुष्य संसार में क्यों नहीं मिलते ?

उपरोक्त कई प्रकार की युक्तियों से सिद्ध होता है कि चेतनता शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव डाल सकती है। इससे मालूम होता है कि इसका अधिष्ठान शरीर से अतिरिक्त कोई सत्ता होनी चाहिये। यदि चेतनता शरीर ही से उत्पन्न हुई हो तो शरीर पर प्रभाव नहीं डाल सकती, जैसे इञ्जन से उत्पन्न हुई हुई सीटी की आवाज़ इञ्जन की गति पर प्रभाव नहीं डाल सकती। इसलिये चेतनता का अधिष्ठान शरीर से अतिरिक्त कोई सत्ता होनी चाहिये जिसका गुण या क्रिया चेतनता हो सके। ऐसी सत्ता आत्मा ही हो सकती है। इस विचार की अधिक विवेचना अगले अध्याय में की जाएगी।

तीसरा अध्याय

प्रकृतिवाद

(२)

परीक्षणात्मक दृष्टि से

वैज्ञानिकों को परीक्षणात्मक प्रमाण पसंद होते हैं। इस अध्याय में हम इसी प्रकार के प्रमाणों से सिद्ध करेंगे कि चेतनता दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम कदापि नहीं हो सकती:—

१. दिमाग़ के क्षत होने पर भी बहुधा चेतनता पर कोई असर नहीं होता।

चेतनता यदि दिमाग़ से उत्पन्न हुई हो तो दिमाग़ के ख़राब होने पर चेतनता भी अवश्यमेव नष्ट या विकृत

हो जानी चाहिये, परन्तु देखा यह जाता है कि कई वार चोट लगने से अथवा बीमारी आदि से दिमाग़ को बहुत क्षति पहुंचती है, लेकिन इस क्षति का चेतनता पर ज़रा भी असर नहीं होता। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् † फ्लेमेरियन ने इस बात की पुष्टि में कई दृष्टान्त दिये हैं। इनमें से कुछ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

एडमण्ड पैरियर (Edmund Perrier) ने २२ दिसम्बर १९१३ को पैरिस की ऐकेडमी ऑफ सायंसेज (Academy of sciences) में भाषण देते हुवे कहा था कि 'डाक्टर राविन्सन ने एक ऐसे मनुष्य को देखा है जिसका दिमाग़ विगड़ कर बिल्कुल ख़राब होगया था। यह केवल एक पीप भरे फोड़े के सदृश हो गया था लेकिन फिर भी वह एक वर्ष तक जीता रहा और उसमें मानसिक विकार कोई नहीं उत्पन्न हुवा'।

इसी प्रकार, महायुद्ध के दिनों में २४ मार्च १९१७ को एक जख़्मी सिपाही पैरिस की एकेडमी ऑफ साइन्सेज (Academy of sciences) में लाया गया। यहां डाक्टर ग्युपिन (Guepin) ने उसके दिमाग़ का एक हिस्सा काट डाला, परन्तु उस सिपाही की बुद्धि और चेतनता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

---

† Mystery of Death vol 1.

२. शरीर शिथिल होने पर कई वार विचार शिथिल नहीं होता।

वैज्ञानिक कहते हैं कि दिमाग़ की अवस्था के बदलने के साथ साथ विचार की अवस्था भी बदलती है। बचपन और बुढ़ापे में दिमाग़ कमजोर होता है तो साथ ही विचार भी अपरिपक्क अथवा निर्बल होता है। दिमाग़ को पर्याप्त शुद्ध रक्त न मिलने पर विचार में शिथिलता आजाती है। शराब आदि मादक पदार्थ शरीर में प्रविष्ट हो जायें तो विचार भी परिवर्तित हो जाता है। परन्तु कई अवस्थाओं में वैज्ञानिकों के इस नियम के विपरीत भी कार्य होता दिखाई देता है।†"यदि किसी मनुष्य को सम्मोहन (Hypnotic)की निद्रा में लाया जाय, तो उसके हृदय की गति धीमी हो जाती है, अत्यन्त सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा ही मालूम हो सकता है कि हृदय चल रहा है, फेफड़े भी इतने आहिस्ता चलते हैं कि सांस रुका हुवा प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में दिमाग़ की बहुत बुरी हालत होनी चाहिये। उसे पर्याप्त रक्त नहीं मिल रहा और जो थोड़ा सा रक्त है उस की गति बहुत धीमी है, क्यों कि रक्त की गति हृदय की गति का ही परिणाम है। फेफड़ों की गति मन्द हो जाने का परिणाम यह है कि शुद्ध हवा का अन्दर जाना और ख़राब हवा का बाहर आना जल्दी जल्दी

---

† Proofs of the Existence of Soul by Annie Besant

नहीं हो रहा। इसलिये जो ज़हरीले पदार्थ शरीर में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं वह बाहर नहीं निकल रहे और रक्त में ही मौजूद हैं। इस प्रकार, दिमाग़ को जो थोड़ा सा रक्त पहुंच रहा है वह भी शुद्ध नहीं है। दिमाग़ की इस अत्यन्त हीन अवस्था में वैज्ञानिकों के नियम के अनुसार विचार बहुत हद तक स्थगित हो जाना चाहिये। बल्कि बेहोशी (Coma) की अवस्था आजानी चाहिये, लेकिन दशा इससे उलटी ही है। सम्मोहन कर्ता (Hypnotist) की आज्ञा से सम्मोहित व्यक्ति (पात्र) अपने प्रारम्भिक शैशव की घटनाओं को भी याद कर लेता है यद्यपि साधारण जागृत अवस्था में उसे ये घटनाएं भूली होती हैं। इसी प्रकार सम्मोहन की अवस्था (Hypnotic State) में पात्र ऐसी भाषाएं बोल सकता है जो उसने कभी बचपन में सुनी हों परन्तु जिन्हें वह जागृत अवस्था में सुनकर समझ भी नहीं सकता। किसी अज्ञात भाषा का एक पृष्ठ सुन कर उसे अक्षरशः दोहरा सकता है परन्तु पुनः जागृत अवस्था में जाने पर इसे सर्वथा भूल जाता है, और फिर सम्मोहन की अवस्था आने पर उसी प्रकार दोहरा सकता है। इस अवस्था में पात्र कई अन्य शक्तियां भी प्रकट करता है। उदाहरण के लिये सम्मोहन कर्ता से तीव्र रूप में युक्ति भी करने लगता है यद्यपि साधारण अवस्था में मूर्ख होता है। तात्पर्य यह है कि दिमाग़ की इस हीन अवस्था में विचार स्थगित होने के स्थान पर और भी अधिक उन्नत हो

जाता है।
परिवर्तन
दिमाग़ प
आज्ञा के
परिवर्तन
उलटा अ
यदि सम
वस्तुतः ग
पदार्थ के
सुगन्धित
है। यदि
तो वह व
चेतना श
निकल स
के आधी
खानों में
है कि सम
स्वस्थमन
अवस्था मे
दिमाग़ क
ख़राब
जाता है

जाता है। इसके अतिरिक्त इस अवस्था में अन्य ऐसे भी परिवर्तन होते हैं जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विचार दिमाग़ पर आश्रित नहीं, उदाहरणार्थ सम्मोहन कर्त्ता की आज्ञा के आधीन होकर (अर्थात् पात्र के विचार में परिवर्तन आने से) पात्र को अपनी इन्द्रियों से भी उलटा अनुभव होने लगता है। सरदी होते हुए भी यदि सम्मोहन कर्ता कह दे कि गरमी है तो पात्र को वस्तुतः गरमी अनुभव होने लगती है। यदि किसी सुगन्धित पदार्थ के विषय में सम्मोहन कर्ता कह दे कि यह बहुत सुगन्धित है तो पात्र को वह पदार्थ सुगन्धित ही प्रतीत होता है। यदि सम्मोहन कर्ता कह दे कि अमुक वस्तु को मत देखो तो वह वस्तु उसके लिए अदृश्य हो जाती है। यदि विचार और चेतना शरीर पर ही आश्रित हों तो इस तरह के परिणाम कैसे निकल सकते हैं ? इन से तो मालूम होता है कि शरीर विचार के आधीन है। डाक्टर एनी बेसेन्ट लिखती है कि 'पागल खानों में पागलों पर भी परीक्षण किए गए हैं और देखा गया है कि सम्मोहन की अवस्था में पागल लोगों में बुद्धि और स्वस्थमनस्कता के चिन्ह प्रगट होने लगते हैं, परन्तु साधारण अवस्था में आकर ये चिन्ह लुप्त हो जाते हैं। यदि विचार दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम हो तो दिमाग़ की अवस्था ख़राब होने पर विचार क्यों इतना उन्नत और तीव्र हो जाता है ?

३. क्लोरोफॉर्म से शरीर और आत्मा का पृथकत्व दिखाई देता है।

क्लोरोफॉर्म सूंघने से शरीर में संवेदन (Feeling) की शक्ति स्थगित हो जाती है। इस लिये डाक्टर लोग क्लोरोफॉर्म सुंघाकर मरीज़ों के अंगों की चीरफाड़ किया करते हैं। † एक बार एक स्पेन निवासी (Ramon de la Sagra) की पत्नी को क्लोरोफॉर्म सुंघाकर उसका ऑपरेशन किया गया। जब उसके शरीर को चाकू से काटा जा रहा था तो वह बड़ी शान्ति के साथ डाक्टर से बात चीत कर रही थी। और पीछे उसने बताया कि ऑपरेशन के समय मेरी मानसिक अवस्था बहुत आनन्दमय थी। उस स्पेन निवासी व्यक्ति पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा और वह लिखता है कि यह शरीर और आत्मा के पृथक् २ अस्तित्व का प्रमाण है। ऐसा प्रतीत होता है कि क्लोरोफॉर्म सुंघाने से शरीर और आत्मा मानो किसी अंश में कुछ देर के लिये अलग २ कार्य करने लगे। यदि चेतनता को दिमाग़ की क्रिया समझा जावे तो यह किसी तरह समझ नहीं आता कि, दिमाग़ की क्रियाओं के अवरुद्ध होने पर वह स्त्री डाक्टर से मज़े में कैसे बातचीत कर रही थी। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि, शरीर चीरा जा रहा था परन्तु उसके विचार शरीर के संबन्ध में न थे।

---

† Flammarion's Mystery of Death Vol. I

डॉ० रामस्वरूप जी वर्मा एल. आर. सी. पी. डी. पी. एच. ने लेखक को अपने सम्बन्ध में एक वृत्तान्त सुनाया जिसका संक्षेप निम्न लिखित है:— 'सन् १६१५ में जब मैं देहरादून में हेल्थ ऑफ़ीसर था तो, एक दिन बग्घी में बैठकर राजपुरा से देहरादून आरहा था। अकस्मात् बग्घी उलटने से मैं गिर गया जिससे मुझे भगन्दर (Ischiorectal abscess) होगया। इसलिये मुझे क्लोरोफॉर्म सुंधा कर मेरा ऑपरेशन किया गया। मेरे शरीर पर जब चाकू चल रहा था तब मुझे एक अत्यन्त मनोरञ्जक दृश्य दिखाई दे रहा था, जिसका ऑपरेशन से कोई सम्बन्ध नहीं था। मुझे नज़र आया कि मैं 'हर की पौड़ी' पर खड़ावें पहने खड़ा हूं, और दूर पानी पर एक महात्मा खड़ा हुवा मुझे अपनी तरफ़ बुला रहा है, और कह रहा है कि, तुम डूबोगे नहीं, पानी के ऊपर चल सकोगे। तदनुसार मैं पानी पर चल कर उसके पास पहुंच गया'।

४. एक पदार्थ का एक ही स्मृति चित्र होता है।

विज्ञान के अनुसार दिमाग़ के बाह्य पृष्ठ (Cortex) पर इन्द्रियों से अनुभव की हुई वस्तुओं के संस्कार पड़ने से स्मृति बनती है। यह इसी तरह होता है जैसे फ़ोटोग्राफ़ की प्लेट पर बाह्य-पदार्थों के चित्र

अङ्कित हो जाते हैं । परन्तु ज़रा विचारने पर यह तुलना सर्वथा अशुद्ध प्रतीत होगी । वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार,क्योंकि एक ही पदार्थ—स्थान,दिशा,काल और अवस्था-भेद से—भिन्न भिन्न दिखाई देता है, इसलिये हमारे दिमाग़ पर उस पदार्थ के अनेक प्रकार के चित्र अंकित होने चाहियें। जितनी वार हम एक मनुष्य को देखते हैं, उतनी ही बार उस की आकृति, वस्त्र तथा परिस्थिति के भेद से, पृथक् २ होती है। सामने से चेहरा एक प्रकार का दिखाई देता है पार्श्व से दूसरे प्रकार का, परन्तु उसकी आकृति की स्मृति सदा एक ही होती है । विज्ञान के अनुसार, शब्द की स्मृति हमारे दिमाग़ में इस तरह रहती है जैसे फ़ोनोग्राफ़ में आवाज़ । परन्तु एक ही शब्द का, वक्ता और समय भेद से, नाना प्रकार का उच्चारण किया जाता है, इस अवस्था में उसकी स्मृतियां भी नाना प्रकार की होनी चाहियें, किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है । हमारे अन्दर किसी शब्द की एक ही स्मृति होती है। इस से प्रतीत होताहै कि स्मृति का आधार फ़ोनोग्राफ़ अथवा फ़ोटोग्राफ़ की तरह की कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, प्रत्युत इससे अतिरिक्त कोई चीज़है ।

५. दिमाग़ में विकार आने पर भी स्मृति में विकार नहीं आता, शब्दों का क्रम से भूलना ।

फ्रांस के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर वर्गसन की सम्मति है कि स्मृति रोगों के अध्ययन से भी प्रकृतिवाद के मन्तव्यों का

खण्डन होता है। कई बार दिमाग़ को बहुत चोट लग जाने से बहुत सी बातें भूल जाती हैं। इसका कारण वैज्ञानिक यह बताते हैं कि दिमाग़ के अवयवों में उन बातों के संस्कार नष्ट हो गए। यदि यही कारण है तो उन बातों की स्मृति सदा के लिये नष्ट हो जानी चाहिये, परन्तु वास्तव में होता यह है कि उन की स्मृति मनुष्य की कई असाधारण अवस्थाओं में, उदाहरण के लिये जोश अथवा उद्विग्न मनोभावों के समय, लौट आती है। यदि दिमाग़ पर होने वाले संस्कार ही स्मृति का कारण हों तो उन संस्कारों के नष्ट होने पर स्मृति पुनः क्यों लौट आती है ? एफ़ेसिया (Aphasia) नामक स्मृति रोग में मनुष्य को शब्द भूल जाते हैं। वह बोल सकता है, परन्तु शब्द नहीं बोल सकता। कई अवस्थाओं में शब्द तो बोल सकता है परन्तु उसे अवस्थानुकूल शब्द याद नहीं आते और कुछ का कुछ बोल देता है। इस रोग से ग्रस्त एक बूढ़े मनुष्य ने अपने मित्रों से कहा कि मैं अपनी छतरी धुलाना चाहता हूं। पीछे पता लगा कि वह कहना चाहता था कि मैं अपने बाल कटाना चाहता हूं। रोग की अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्था में दो एक साधारण शब्द (हां, नहीं आदि) ही याद रह जाते हैं शेष सब भूल जाते हैं। जब रोग बढ़ता है तो शब्द एक क्रम से भूलने लगते हैं। पहले व्यक्ति वाचक संज्ञाएं (Proper Nouns) फिर श्रेणी

† Psychology by Woodworth,

वाचक संज्ञाएं (Common Nouns) फिर विशेषण (Adjectives) और फिर क्रियायें (Verbs)। यदि दिमाग़ के संस्कारों पर स्मृति आश्रित हो तो शब्दों के इस क्रम में भूलने का क्या कारण है? क्या भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दोंकी स्मृति दिमाग़ की भिन्न तहों में रहती है ? यदि ऐसा हो तो इसका अर्थ यह होगा कि दिमाग़ का एक एक हिस्सा संज्ञा, विशेषण आदियों के लिये सुरक्षित है, परन्तु यह बात कोई वैज्ञानिक नहीं मानता। यह स्मृति रोग चाहे दिमाग़ के इस हिस्से से चाहे उस हिस्से से, कहीं से भी शुरु हो, शब्दों के भूलने का क्रम वही रहता है। इसलिये विविध हिस्सों को भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों के लिये सुरक्षित मानने पर भी समस्या हल नहीं होती। हल एक ही हो सकता है, वह यह है कि दिमाग़ के अतिरिक्त किसी अन्य अप्राकृतिक सत्ता को स्मृति का आधार मान लिया जाये।

६. विचार का दिमाग़ से उत्पन्न होना परीक्षण-सिद्ध नहीं।

प्रकृतिवादी और वैज्ञानिक लोग मनमानी निराधार कल्पनाओं को छोड़ कर केवल परीक्षणों द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध बातों को ही मानने का अभिमान करते हैं। परन्तु, विचार दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम है, यह सिद्ध करने के लिये उनके पास कोई परीक्षणात्मक आधार नहीं। वे यह नहीं बता

सकते कि अमुक विचार दिमाग़ की अमुक अवस्था का परिणाम है, अथवा इस स्मृति का कारण दिमाग़ का यह संस्कार है। वास्तव में यह सब परीक्षण के क्षेत्र से बाहर है। किसी विशेष विचार के समय दिमाग़ की अवस्था जानने के लिये यदि मस्तिष्क की चीरफाड़ की जाय तो उस समय वह विचार ही नष्ट हो जावेगा। यदि किसी प्रकार के यन्त्रों द्वारा बिना चीरे फाड़े ही दिमाग़ को देख लिया जावे तो भी उसमें होने वाले सूक्ष्म भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के विषय में कुछ नहीं पता लगाया जा सकता। ऐसी अवस्था में वैज्ञानिकों का यह कहना कि विचार दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम है कम से कम परीक्षणों से तो सिद्ध नहीं।

विद्वानों की सम्मतियां:—

संसार के कई महान् विचारक जिन्होंने इस प्रश्न पर ध्यान दिया है, और जिनकी सम्मति प्रामाणिक समझी जा सकती है, इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि प्रकृतिवाद का यह सिद्धान्त कि विचार दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम है किसी प्रकार भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। वर्तमान संसार का सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक प्रोफ़ेसर विलियम जेम्स इस प्रश्न की विवेचना करते हुवे अन्त में निम्नलिखित शब्द लिखता है:—

"†Our assumption, therefore, that mind states are absolutely dependent on brain condition must still be understood as a postulate. We may have a general faith that it must still be true but any exact insight as to how it is true lags wofully behind".

अर्थात्, हमारी इस धारणा को, कि मानसिक अवस्थाएं (अथवा विचार) सर्वथा दिमाग़ की हालत पर निर्भर है, अभी तक केवल एक कल्पना ही समझना चाहिये। साधारणतया हमारा यह विश्वास हो सकता है कि ऐसा होना चाहिये, परन्तु कोई यथार्थ ज्ञान कि किस प्रकार ऐसा है अभी सर्वथा अपर्याप्त है।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर मैकटेगर्ट इस विषय में लिखता है:—

"‡With regard to the connexion of the brain with thought the chief evidence for it appears to be that diseases or mutilations of the brain affect the course of thought. But this does not prove that, ……… thoughts are directly conected with brain. Many things are capable of disturbing thought, which are not essential

† Principles of Psychology by James

‡ Human Mortality by Mctaggart

to its existence. For example, a sufficiently severe attack of toothache may render all consecutine abstract thought impossible. But if the tooth was extracted, I should still be able to think. And, in the same way, the fact that an abnormal state of the brain may affect our thoughts does not prove that the normal states of the brain are necessary for thought".

इसका भावार्थ यह है कि "दिमाग़ और विचार के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रमुख प्रमाण यही समझा जाता है कि दिमाग़ की अस्वस्थता अथवा इसके किसी भाग के कट जाने से विचार प्रवाह पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वास्तव में विचार दिमाग़ पर निर्भर है। ऐसी कई चीज़ें हैं जो विचार के अस्तित्व का कारण नहीं हैं; परन्तु विचार में बाधा डाल सकती हैं। उदाहरण के लिये यदि ज़ोर से दांत में दर्द हो तो गंभीर और सूक्ष्म विचार नहीं हो सकता, परन्तु यदि दांत को मुंह से निकाल दिया जावे तब भी विचार हो सकता है : अर्थात् स्वस्थ दांत विचार का आधार नहीं है फिर भी अस्वस्थ दांत विचार में बाधा डाल सकता है। इसी प्रकार, इस बात से कि दिमाग़ की किसी असाधारण अवस्था का विचार पर प्रभाव पड़ता है यह सिद्ध नहीं होता कि स्वस्थ अवस्था में दिमाग़ विचार का आधार और स्रोत है"।

प्रोफ़ेसर ड्रूमँड (Drummond) लिखता है:—

"To consciousness nothing can be so intelligible as consciousness , and to talk of explaining mind in terms of mechanical motions is simply an absurdity . It might seem needless to insist on what one might suppose would be self-evident to all; but the magic network which science has woven in the present generation has so ensnared many of our ablest minds, that to them a molecule appears more ientlligible - more fundamental- than a thought; a chemical equation than a feeling; a release of atomic energy than a volition".

इसका सारांश यह है कि मानसिक विचार की व्याख्या यान्त्रिक गतियों से करना बड़ी भारी भूल है; परन्तु, विज्ञान के जादू ने बड़े २ योग्य व्यक्तियों पर भी अपना ऐसा जाल फैलाया है कि उन्हें विचार और मानसिक घटनाओं की अपेक्षा, भौतिक सत्ताएं तथा घटनाएं अधिक बुद्धिगम्य, मौलिक और तात्विक प्रतीत होती हैं।

अनेक विद्वानों की इस प्रकार की सम्मतियां दी जा सकती हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण, निदर्शन के रूप में, थोड़ीसी ही यहां दी गई हैं।

७. विचार और शारीरिक वस्तुओं में कोई सादृश्य नहीं।

विचार अथवा चेतनता भौतिक वस्तुओं से सर्वथा भिन्न है। किन्हीं दो भौतिक वस्तुओं में परस्पर इतना अन्तर नहीं जितना विचार और भौतिक वस्तुओं में है; फिर यह कैसे समझा जा सकता है कि विचार दिमाग़ के भौतिक अणुओं की क्रिया का परिणाम है? वैज्ञानिक कहते हैं कि [1]मस्तिष्क में से विचार इसी तरह निकलता है जैसे जिगर में से पित्त; परन्तु क्या वस्तुतः विचार की पित्त से तुलना की जा सकती है? दिमाग़ अथवा अन्य किसी अंग से निकलने वाले (उदाहरणार्थः—आमाशय[2]-रस या मुख[3]-रस) रसों से पित्त आदि की तुलना भले ही की जा सके, किन्तु विचार जैसी सर्वथा विसदृश वस्तु के साथ उसकी तुलना सर्वथा अनुचित है। पित्त अचेतन तथा ज्ञान-रहित है, जब कि विचार चेतन और ज्ञान-युक्त।

वैज्ञानिक मानते हैं कि दिमाग़ के अणुओं की गति विचार में परिणत हो जाती है, किन्तु क्या कभी किसी वैज्ञानिक ने कहीं इतने बड़े परिवर्तन को होते हुए अनुभव किया है? प्रो० जेम्स[4] लिखता है कि यह बात किसी

---

१. The brain secretes thought as the liver secretes bile;

२. Gastic juce.

३. Saliva.

४ W. James.

तरह भी समझ में नहीं आती कि गति विचार में कैसे परिणत हो गई। क्या यह कल्पना की जासकती है कि ओषजन[1], उद्रजन[2], नत्रजन[3], कर्बन[4] आदि रासायनिक पदार्थों से प्रेम, आत्म त्याग, करुणा आदि मानसिक भाव उत्पन्न हो जाते हैं ? प्रो० टिण्डल (Tyndall) प्रकृतिवादी होते हुए भी लिखता है कि, " यह कहना व्यर्थ होगा कि विचार दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम है। विचार चेतन है जबकि दिमाग़ के अणु अचेतन हैं। अचेतन से चेतन की उत्पत्ति कार्य कारण सम्बंधी सब नियमों के विरुद्ध है "।

जर्मनी का एक विचारक ड्यू बौयस रेमॉन्ड[5] लिखता है कि, ' उच्च विचार तो एक तरफ़ रहा, शारीरिक क्रियाओंसे इन्द्रियानुभव[6] या अन्य किसी प्रकार की सामान्य से सामान्य चेतनता की भी व्याख्या नहीं की जा सकती"

डॉ फैरियर[7] लिखता है कि "यदि हमें यह स्पष्ट रूप से भी पता लग जाए कि किसी इन्द्रियानुभव के समय दिमाग़ की क्या अवस्था होती है, तो भी दिमाग़ की क्रियाओं से इन्द्रियानुभव की उत्पत्ति होती है यह सर्वथा समझ में नहीं आता"।

---

१. Oxygen, २. Hydrogen, ३. Nitrogen ४. Carbon
५. Du Bois Reymond ६. Sensation. ७. Ferrier.

८. ताप विद्युत् आदि से चेतनता की विलक्षणता ।

कई वैज्ञानिक कहते हैं कि जिस प्रकार ताप, विद्युत्, चुम्बक आदि प्रकृति के परिणाम हैं उसी प्रकार विचार भी है, परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता । यदि संसार की किन्हीं दो वस्तुओं में आकाश पाताल का अन्तर है तो वह विचार में और ताप इत्यादि प्राकृतिक गुणों में ही है । ताप, विद्युत् आदि परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं, परन्तु, भिन्न होते हुवे भी उनमें बहुत सादृश्य है ; और यह सुगमता से सोचा जा सकता है कि ये सब एक ही मूल पदार्थ के विभिन्न गुण हैं । इनके कार्य भी एक जैसे हैं । उदाहरण के लिये ताप और विद्युत् दोनों जलाते हैं, बहुत ऊचा ताप उत्पन्न करने के लिये भी विद्युत् ही प्रयुक्त होती है ; इसी प्रकार, विद्युत् उत्पन्न करने के लिये ताप से चलने वाले इञ्जनों का प्रयोग किया जाता है; कई रासायनिक समासों का संश्लेषण तथा विश्लेषण ताप अथवा विद्युत् इनमें से किसी से भी किया जा सकता है । इसके विपरीत, चेतनता या विचार का ताप, विद्युत् आदि से कोई भी सादृश्य नहीं । विचार चेतन है और विद्युत् अचेतन; विद्युत् प्राकृतिक निश्चित नियमों से सर्वथा बंधी हुई है, परन्तु चेतनता स्वतन्त्र है, कम से कम, अपने आप को स्वतन्त्र अनुभव तो करती है । चेतनता में न्याय का भाव है, परन्तु

क्या विद्युत भी अपराध का दण्ड देने के भाव से किसी को जलाती है, अथवा निर्दोष को छोड़ देती है? प्राकृतिक पदार्थ अपने लिये सुगम से सुगम मार्ग ढूंढते हैं, परन्तु चेतनता को, आदर्श प्राप्ति में,कठिन से कठिन मार्ग से प्रसन्नता प्राप्त होती है। ऐसी दशा में, चेतनता की ताप, विद्युत आदि प्राकृतिक परिणामों से तुलना करना निरर्थक है।

उपसंहार

अब तक हमने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि चेतनता शरीर की क्रियाओं का कारण अवश्य है; साथ ही इसे दिमाग़ से उत्पन्न हुई वस्तु भी नहीं माना जा सकता। अतः यह अनुमान स्वाभाविक है कि चेतनता का आश्रय भौतिक शरीर से अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ होना चाहिये जो शरीर के समान भौतिक और अचेतन न हो। चेतनता को स्वयं ही एक स्वतन्त्र सत्ता मान लेना और उसके लिये किसी आश्रय को न मानना भी ठीक नहीं। चेतनता एक क्रिया है, और वह प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है, इसलिये उसका कोई स्थिर आश्रय होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, बहुत सी बातें जो कि हर समय चेतनता में नहीं रहतीं,स्मृति रूप में, कहीं अन्यत्र रहती हैं, इस स्मृति का भी कोई स्थिर आश्रय होना चाहिये। चेतनता स्वयं परिवर्तन शील है, इसलिये स्मृति का आश्रय नहीं बन सकती। यदि चेतनता ही स्मृति का आधार हो, तो

स्मृति में स्थित सब बातों का हर समय स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं। अतः स्मृति का चेतनता से भिन्न कोई अन्य आश्रय अथवा अधिष्ठान होना चाहिये, और यही अधिष्ठान चेतनता का भी आश्रय होना चाहिये क्योंकि चेतनता और स्मृति में परस्पर विनिमय होता रहता है—स्मृति की बातें चेतनता में और चेतनता की स्मृति में परिणत होती रहती हैं। ऐसा अधिष्ठान आत्मा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

चौथा अध्याय

प्रकृतिवाद और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान

एकान्तर व्यक्तित्व

आजकल मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत अनुसन्धान हो रहा है जिससे मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं और शक्तियों के विषय में ऐसी बातें मालूम हुई हैं जिनकी व्याख्या दिमाग़ को चेतनता का आधार मान कर नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिये हम † एकान्तर-व्यक्तित्व को लेते हैं। कई मनुष्यों में कभी २ इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि साधारण व्यक्तित्व का स्थान एक नया व्यक्तित्व ले लेता है, पहले व्यक्तित्व का दूसरे से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। दोनों व्यक्तित्वों को परस्पर एक दूसरे की स्मृति भी नहीं होती। एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट होजाएगी:—

---

† Alternate Personality

"पैनसिलवेनिया[१] (संयुक्त प्रान्त अमेरिका) के जंगल में एक लड़की थी जिसका नाम मेरी रेनॉल्डस था। उसे एक बार इतनी गहरी नींद आई कि उठाने पर भी नहीं उठी। अन्त में जब २० घण्टे सोकर उसकी नींद स्वयं खुली, तो वह बिल्कुल बदल चुकी थी। उसे अपने जीवन की सब स्मृतियां भूल चुकी थीं, वह एक ऐसे व्यक्ति के समान थी जिसने बिलकुल अभी संसार में प्रवेश किया हो। हां, कुछ शब्द उसे अवश्य याद रह गये थे, उनका भी अर्थ उसे याद नहीं था, इसलिये वह बच्चे की तरह बोल देती थी। अपने मां बाप और भाइयों में से किसी को पहिचानती न थी। अड़ोस पड़ोस और चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य सब उसके लिये अपरिचित और नया था। वह लिखना पढ़ना भूल गई थी, परन्तु जब उसे फिर सिखाया गया तो वह बड़ी जल्दी सीख गई। लम्बी नींद से पहिले की अवस्था में वह उदास रहती थी, कम बोलती थी और एकान्त को पसंद करती थी। परन्तु दूसरी अवस्था में प्रसन्न रहती थी, बहुत अधिक बोलती थी और, पैदल या घोड़े पर, घंटो जंगल में घूमा करती थी; रीछ आदि भयंकर जंगली जानवरों की भी परवाह नहीं करती थी। पांच सप्ताह तक इस दूसरी अवस्था में ही रही। फिर वह एक दिन सोकर उठी तो उसकी यह दूसरी असाधारण अवस्था समाप्त हो चुकी थी। पहिली जो साधारण अवस्था थी वह लौट आई थी।

१. Principles of Psychology by W. James

अब वह अपने सब मित्रों और सम्बन्धियों को पहिचानती थी। वह सब ज्ञान जो पहिले उसमें था पुनः आगया। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी अवस्था में कभी कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं था, क्योंकि असाधारण अवस्था की सब बातें उसे भूल चुकी थीं और उसने अपना साधारण जीवन वहीं से आरम्भ किया जहां पहिले वह स्थगित हुआ था, उसका स्वभाव भी फिर पहिले जैसा ही होगया था। कुछ सप्ताह बाद, एक गहरी नींद के पश्चात्, उसकी असाधारण अवस्था फिर आगई। पहले इस अवस्था में उसने जहां जीवन स्थगित किया था वहीं से फिर शुरू कर दिया। अपने मां बाप को वह अब फिर भूल गई। असाधारण अवस्था की अन्य सब स्मृतियां भी लौट आईं। १५-१६ वर्ष तक इसी प्रकार परिवर्तन होते रहे, कभी पहली अवस्था आ जाती थी, कभी दूसरी; दोनों में व्यक्तित्व भिन्न २ था। एक की बातें दूसरी अवस्था में याद नहीं रहती थीं"।

दिमाग़ को चेतनता का आधार मानकर इस प्रकार की घटनाओं की व्याख्या कैसे की जा सकती है? क्या दिमाग़ के दो हिस्से हो जाते हैं? न केवल दिमाग़ के ही, परन्तु उसके प्रत्येक छोटे से छोटे अवयव के दो हिस्से मानने पड़ेंगे। पहली अवस्था में दिमाग़ का जो हिस्सा दृष्टि और स्मृति का आधार है वही हिस्सा दूसरी अवस्था में नहीं हो सकता, क्यों कि एक अवस्था में जो देखा हुआ है उसकी स्मृति दूसरी

अवस्था में नहीं रहती। यह तो मानना ही पड़ेगा कि स्मृति के संस्कार विद्यमान हैं, क्यों कि वही स्मृतियां दूसरी अवस्था में लौट आती हैं। तब स्मृतियां स्थगित क्यों हो जाती हैं? स्वभाव भेद का क्या कारण है, व्यक्तित्व इस प्रकार क्यों बदल जाता है? क्या दिमाग़ की रचना में परिवर्तन आ जाता है? ऐसा कोई परिवर्तन विज्ञान नहीं मानता। व्यक्तित्व का आकस्मिक परिवर्तन तो यही सूचित करता है कि दिमाग़ चेतनता का आधार होने के स्थान पर, चेतनता के पूर्ण रूप में प्रकट होने में एक बाधा उपास्थित करता है, और इस-लिये किसी समय चेतनता का केवल एक अंश ही एक व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होता है।

सौम्नैम्बूलिज़्म

निद्रा की एक विशेष अवस्था होती है जिसे सौम्नैम्बूलिज़्म कहते हैं। इस अवस्था में मनुष्य निद्रा में ही चलने फिरने लगता है और ऐसे काम करता है जिनका उसकी जागृत् अवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण के लिये, वह कई ऐसे विषयों में प्रतिभा दिखाता है जिन से उसका जीवन भर कोई सम्बन्ध नहीं रहा। किसी ऐसे विषय पर पुस्तक लिखता है जिसका उसे जागृत् अवस्थाओं में कोई ज्ञान नहीं होता, अथवा ऐसे कारीगरी के काम करता है जिन्हें वह साधारण जागृत् अवस्था में नहीं कर सकता। क्या इस प्रकार क घटनाएं यह सिद्ध नहीं करतीं कि साधारण अवस्था में

हमारी चेतनता सारी की सारी नहीं प्रकट होती ? मनोविज्ञान भी अब इस बात को स्वीकार करने लगा है। इसके अनुसार, साधारणतया प्रकट होने वाली चेतनता हमारी विस्तृत चेतनता का एक भाग मात्र है। चेतनता का बड़ा भाग, जिसे 'उपचेतनता' कहते हैं, कभीर असाधारण अवस्थाओं में ही प्रकट होता है। एक ही दिमाग़ ऐसी परस्पर असंबद्ध चेतनाओं का आधार और कारण कैसे हो सकता है ? यह तो माना जा सकता है कि दिमाग़ चेतनता को प्रकट करने का साधन है, और उसकी शक्ति परिमित होने के कारण सम्पूर्ण चेतनता किसी एक समय प्रकट नहीं हो सकती ; इसलिये भिन्न २ समयों में चेतनता के भिन्न २ खण्ड प्रकट होते हैं। यदि यह ठीक हो, तो दिमाग़ चेतनता का आधार न होकर केवल उसका एक यन्त्र होगा जैसे आंख दृष्टि का यन्त्र है।

सम्मोहन

कई बातों से सिद्ध होता है कि चेतनता, दिमाग़ पर आश्रित होने के स्थान पर, दिमाग़ और शरीर पर शासन करती है। सम्मोहन-कर्ता के आदेशानुसार सम्मोहित व्यक्ति या पात्र को गरमी में सरदी और सरदी में गरमी तथा जल में स्थल और स्थल में जल का अनुभव होने लगता है। हमने अपनी आंखों से देखा है कि बी. ए. के एक युवा विद्यार्थी को सम्मोहन-कर्ता ने यह आदेश दिया कि तुम इस ज़मीन पर पड़ी हुई पतली छड़ी के पार नहीं कूद सकोगे।

विद्यार्थी बहुत प्रयत्न करने पर भी उस छड़ी के पार न कूद सका। हिस्टीरिया आदि कई प्रकार के रोग, तथा शराब, अफ़ीम आदि की पुरानी आदतें सम्मोहन-कर्ता के आदेश मात्र से सदा के लिये जाती रहती हैं। आदेश का अर्थ है पात्र की चेतनता में कोई विशेष विचार बल पूर्वक उत्पन्न करना। इस प्रकार, चेतनता में बलपूर्वक विचार उत्पन्न होने से शरीर सर्वथा इस विचार के अनुकूल आचरण करने लगता है। क्या इन बातों से यह सिद्ध नहीं होता कि शरीर विचार के आधीन है?

आजकल कई स्थानों पर शल्य क्रिया के बड़े २ ऑपरेशन, बिना क्लोरोफ़ार्म सुंघाये, किये जाते हैं। रोगी को सम्मोहन की अवस्था में लाकर यह आदेश दे दिया जाता है कि तुम्हें पीड़ा बिल्कुल नहीं होगी। परिणाम यह होता है कि बड़े २ ऑपरेशन कर दिये जाते हैं, और रोगी ज़रा भी पीड़ा अनुभव नहीं करता।

विचार का शरीर पर प्रभाव

अन्य भी बहुत सी घटनाएं उपस्थित की जा सकती हैं जिनसे सिद्ध होता है कि शरीर सर्वथा विचार के आधीन है, और इसलिए विचार शरीर का परिणाम नहीं हो सकता। 'एडवाइस टु यंग मैन' नामक पुस्तक में कॉबेट लिखता है:— "फ़्रांस में प्राण दण्ड

की आज्ञा पाये हुए एक कैदी पर परीक्षण किया गया। उसकी आंखों पर पट्टी बांध कर, उसे मुंह के बल उलटा लिटा दिया गया। उसे कहा गया कि तुम्हारी गर्दन पर तलवार फेर कर तुम्हें मार देंगे, परन्तु वास्तव में तलवार के स्थान पर उसकी गर्दन पर केवल एक गीला कपड़ा धीरे धीरे फेरागया। कपड़े से ज्यों २ पानी टपकता था पास बैठे हुए लोग कहते जाते थे, 'देखो कितना खून बह रहा है'। थोड़ी देर यह क्रिया करने से उस कैदी की मृत्यु होगई"। इसका अर्थ यह है कि कैदी को यह निश्चय हो जाने से कि 'मेरी गरदन कट रही है' उसकी मृत्यु होगई। एक और घटना इस प्रकार है:—एक पादरी को गठिया था। वह चल फिर नहीं सकता था, इसलिये एक आराम कुर्सी पर बैठा हुआ था। कुछ दूर मेज़पर उसका लिखा उपदेश पड़ा था जिसे उसने रविवार को गिरजे में पढ़ना था। इतने में एक बच्चा खेलता हुआ आया और उपदेश पर दवात उलटाने ही को था कि पादरी ने भाग कर बच्चे के हाथ से दवात छीन ली। यदि दवात उलटने से उपदेश खराब हो जाता, तो पादरी, गिरजे में उपदेश न पढ़ सकने के कारण, नौकरी से बरखास्त कर दिया जाता। भय ने उसकी अत्यन्त तीव्र शारीरिक वेदना पर विजय पाली और जो मनुष्य एक कदम भी नहीं चल सकता था भाग कर मेज़ तक पहुंच गया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इनसे यही सिद्ध होता है कि विचार

दिमाग़ से नहीं पैदा होता, प्रत्युत दिमाग़ और शरीर की क्रियाएं विचार के आधीन हैं।

मनुष्य की संकल्प-शक्ति तथा दृढ़ता

इस प्रसंग में मनुष्य की संकल्प-शक्ति भी ध्यान देने योग्य है। मनुष्य किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये अपना सारा जीवन उसमें लगा देता है। उदाहरण के लिये, सिकन्दर का उद्देश्य था सम्पूर्ण संसार पर विजय पाना। उसे अनेक कठिनाइयों और आपत्तियों का सामना करना पड़ा, किन्तु कोई भी कठिनाई उसे अपने उद्देश्य से विमुख न कर सकी। क्या इस प्रकार का स्थिर उद्देश्य, दृढ़ निश्चय और निरन्तर प्रयत्न मनुष्य में एक स्थिर अपरिवर्तनशील सत्ता की ओर निर्देश नहीं करता? यह स्थिर उद्देश्य, शरीर का तो हो नहीं सकता, क्योंकि शरीर प्रति क्षण परिवर्तनशील है। इसके अतिरिक्त, उद्देश्य या आदेश किसी चेतन सत्ता का ही हो सकता है, परन्तु शरीर स्वयं चेतन नहीं है। यह उद्देश्य चेतनता का भी नहीं हो सकता, क्यों कि चेतनता स्वयं प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। उद्देश्य का अधिष्ठान अर्थात् आश्रय आत्मा ही हो सकता है जो स्थिर और चेतन है। एक तपस्वी मोक्षप्राप्ति अथवा अन्य किसी सिद्धि के लिये अपने शरीर को अत्यन्त कष्ट पहुंचाता है। कई व्यक्ति अपनी बाहु को इतनी देर तक ऊपर किये रखते हैं कि वह सूख जाती है। महात्मा

बुद्ध निर्वाण प्राप्ति के लिये १०--१२ साल जङ्गलों में ही भटकते रहे। महर्षि दयानन्द एक बार, ब्रह्मचर्य रक्षा के लिये, तीन दिन और तीन रात निरन्तर इधर उधर भागते रहे। सूसो आदि कई ईसाई महात्मा, काम वासना को दबाने के लिये, ऐसे लङ्गोट पहनते थे जिनके अन्दर घोड़े के बाल और नोकदार कीलें लगी रहती थीं। क्या यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के लक्ष्य दिमाग़ के घटकों—उद्रजन, ओषजन नत्रजन और कर्बन आदि—के अणुओं के होते हैं? एक शहीद कष्ट सहता जाता है, किन्तु अपने विश्वास पर दृढ़ रहता है। गुरु गोविंद सिंह के छोटे २ दोनों लड़कों को सरहिन्द में मुसलमानों ने पकड़ लिया और मुसलमान होने के लिये कहा, परन्तु दोनों ने इन्कार कर दिया। फिर उन्हें जीते जी दीवार में चुना जाने लगा। जब वे गरदन तक चुन दिये गये तो उन से फिर पूछा गया, "क्या तुम मुसलमान बनोगे"? उन्होंने फिर इन्कार कर दिया। अन्त में दोनों दीवार में चुन दिये गये, परन्तु अपने विश्वास पर दृढ़ रहे। क्या यह आदर्श-प्रियता दिमाग़ के प्राकृतिक अणुओं का गुण है? शरीर को तो कष्ट हो रहा है, और प्रकृति का गुण कम से कम बाधा के मार्ग पर जाना है; इस लिये शरीर को, प्राकृतिक होने से, बाधा के सामने झुक जाना चाहिए। विचार शरीर पर आश्रित हो तो उसे भी कष्ट के वश में हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसी अवस्थाओं में मनुष्य का विचार शारीरिक कष्ट पर

विजय पा लेता है। इससे पता लगता है कि मनुष्य में शरीर से अतिरिक्त एक सत्ता है जो शरीर पर शासन करती है और जो विचार का अधिष्ठान है। रोज़र बेकन नामक ईसाई पादरी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों के कारण कई वर्ष तक कैद में रहा। कोपर्निकस ने, अपने इस विश्वास के कारण कि पृथ्वी घूमती है और सूर्य स्थिर है, अत्यन्त कष्ट सहन किये, परन्तु अपनी बात पर अड़ा रहा। स्पाईनोज़ा को अपने दार्शनिक सिद्धान्त के लिये समाज से बहिष्कृत होना पड़ा। एक सुधारक अनेक कष्टों और बाधाओं के होते हुए भी अपने विचारों का प्रचार करता जाता है। क्या इन उदाहरणों से सिद्ध नहीं होता कि एक स्वतंत्र चेतन-सत्ता है जो अपने उद्देश्यों के अनुसार शरीर का प्रयोग करती है। कहते हैं कि प्राचीन काल में जब पोम्पिआई शहर ज्वालामुखी की आग से जलने लगा तो सब लोग वहां से भाग गये। परन्तु वह सिपाही जो शहर के दरवाज़े पर पहरा दे रहा था, अपने स्थान से नहीं हिला। शहर भस्म हो गया और वह स्वयं भी वहां खड़ा २ भस्म होगया, परन्तु अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुआ। कैसे-बिआँका की कथा प्रसिद्ध है। यह एक छोटा सा लड़का था जिसे उसका पिता जहाज़ के किसी स्थान पर नियुक्त कर के चला गया। पिता लड़ाई में मारा गया और इधर जहाज़ में आग लग गई। जहाज़ के सब लोग भाग गये, परन्तु कैसेबि-आँका अपने स्थान पर डटा रहा। बार २ पिता को पुकारता था

कि मुझे जाने की आज्ञा दो। अन्त में वहीं जहाज़ पर खड़ा २ वह काल का ग्रास बन गया। प्राचीन यूनान के एथेन्स शहर पर एक बार फ़ारस देश के राजा ने आक्रमण किया। लियोनिदास की अध्यक्षता में अपने तीन सौ सिपाहियों को एक तंग पहाड़ी रास्ते की रक्षा के लिये नियुक्त करके, एथेन्स की समस्त सेना किसी अन्य स्थान से शत्रु पर आक्रमण करने के लिये चली गई। शत्रु को इसका पता लग गया और उसने इन तीन सौ सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। सामने के रास्ते से शत्रु केवल एक २ करके आ सकते थे, परन्तु किसी देश द्रोही ने उन्हें एक मार्ग दिखा दिया जिससे वे पीछे से इकट्ठे आगये। अब प्रतिरोध व्यर्थ था और एथेन्स के सैनिक चाहते तो भाग कर अपनी जान बचा सकते थे, परन्तु उन्होंने भागना पसंद न किया और सब के सब वहीं धराशायी हो गये। ऐसे कर्तव्य परायणता और उत्तर दायित्व के भाव प्रकृति और उससे बने हुए दिमाग़ के परिणाम क्यों कर हो सकते हैं? दिमाग़ के कर्बन और उद्रजन के अणु इन्हें अनुभव नहीं कर सकते। इन भावों को अनुभव करने वाली कोई और ही अप्राकृतिक सत्ता होनी चाहिये।

प्रतिज्ञापालन

मनुष्य में न्याय का भाव भी शरीर से भिन्न किसी ऊँची सत्ता की ओर निर्देश करता है। कहते हैं कि भक्त कबीर

के घर एक बार रात को अतिथि आ गये। घर में खाने को कुछ न था, और पास पैसा भी न था। कबीर ने अपनी स्त्री से कहा कि कहीं से खाने की कोई चीज़ उधार ले आओ। वह एक बनिये के पास गई जो उसे पाप की दृष्टि से देखा करता था। बनियें ने उसे खाने का सामान उधार दे दिया, परन्तु इस शर्त पर कि वह रात्रि को उसके यहां सोने की प्रतिज्ञा करे। अतिथि भोजन करके सो गये। कबीर को अपनी स्त्री की प्रतिज्ञा का पता लग गया। वर्षा हो रही थी। कबीर उसी समय अपनी स्त्री को अपने कंधों पर बिठाकर बनियें के यहां छोड़ने गये। बनिये ने जब यह देखा तो उसके दिल को बड़ी ठेस पहुंची और कबीर जी की पत्नी के प्रति उसके भाव एक दम परिवर्तित हो गये। वह उसे माता की तरह समझने लगा। ऐसा प्रतिज्ञा-पालन का भाव क्या दिमाग़ के अणुओं से उत्पन्न हो सकता है? और जो ठेस बनिये को लगी क्या उसकी व्याख्या शरीर द्वारा किसी प्रकार की जा सकती है?

मनुष्य की विशेषता।

मनुष्य की गतिविधि को देखा जाए तो प्रतीत होता है कि वह बाकी सारी दुनिया से कुछ निराला ही है। संसार की दूसरी वस्तुएं तो मानों एक अनिवार्य प्रवाह में बह रही हैं, परन्तु मनुष्य अपने आपको स्वयं चलाता है। जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक [1]आईकन के शब्दों में, सब वस्तुएं एक चक्र में घूम

---

१. Eucken.

रही हैं, किन्तु मनुष्य अपने आदर्शों के कारण इस चक्कर की गति के विपरीत भी चलता है। सब चीजें मानों एक धारा के प्रवाह में बही जा रही हैं, परन्तु मनुष्य उस प्रवाह से विरुद्ध दिशा में जाने का भी प्रयत्न करता है। वह किन्हीं उद्देश्यों के लिये प्रकृति को अपने आधीन करना चाहता है। उसकी क्रियायें उसके अपने उद्देश्यों का अनुसरण करती हैं। मनुष्य धर्म, अर्थ, काम आदि की इच्छा करता है। वह मोक्ष प्राप्ति के लिये अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तियों का दमन करता है, इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य प्रकृति के प्रवाह में न बह कर उस प्रवाह को अपने अनुकूल दिशा में चलाने का प्रयत्न करता है। इन सब बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी चीज़ है जो प्रकृति के नियमों से स्वतन्त्र है और उस पर विजय पाना चाहती है। केवल प्रकृति के नैसर्गिक प्रवाह में बहते रहना मनुष्य को पसन्द नहीं; प्रकृति का गुण सर्वत्र सुगम से सुगम मार्ग पर जाना है, परन्तु मनुष्य कठिन से कठिन मार्ग पर चल कर अपने आपको धन्य समझता है। सुखसाध्य वस्तु की प्राप्ति में वह गौरव नहीं समझता प्रत्युत लज्जा अनुभव करता है। क्या इस प्रकृति से विपरीत गुण का आधार दिमाग़ के भौतिक अणु हो सकते हैं जो प्रकृति का ही एक अंश है?

उदारता तथा सहन शीलता ।

[1] स्माइल्स नामक अंगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक ने एक घटना का उल्लेख करते हुवे लिखा है कि पैरिस में एक राज दूसरे राजों के साथ मकान बना रहा था। दुर्भाग्य वश जिस तख़्ते पर वह और उसका दूसरा साथी राज बैठे थे वह तख़्ता टूट गया। तख़्ता टूटने से दोनों राज गिर पड़े, परन्तु नीचे आते हुए दोनों के हाथ एक बांस पर पड़ गये। बांस दोनों के बोझ को नहीं सह सकता था। साथ वाले राजने उसे कहा, "मेरे पुत्र कलत्र हैं और तुम अकेले हो, इसलिये बांस छोड़दो"। उसने बांस छोड़ दिया और नीचे गिर कर मर गया। भीष्म पितामह का उदाहरण उदारता और सहन शीलता में इससे भी बढ़ कर है। महा भारत के युद्ध में भीष्य शिखण्डी के तीरों का कोई प्रत्युत्तर नहीं देते थे, क्योंकि शिखण्डी पर तीर चलाना वे धर्म विरुद्ध समझते थे। भीष्म पितामह के शरीर में इतने तीर गड़गये कि उनके ज़मीन के साथ लगने से एक शय्या सी बन गई। जब अर्जुन ने पूछा, 'दादा जी, कुछ चाहिये'? तो उन्होंने यही उत्तर दिया, 'बेटा सिर लटकता है', तुम एक ऐसा तीर मारो कि वह सिरके नीचे तकिये का काम करे। अर्जुन ने ऐसा ही किया। ऐसी घटनाओं से प्रतीत होता हैकि आत्मा शरीर पर शासन करती है, वास्तव में आतमा एक स्वतन्त्र सत्ता है और शरीर इस सत्ता का साधन तथा यन्त्र मात्र है।

---

१. Character by Smiles.

शरीर से पृथक् आत्मा का अनुभव करने का उपाय

डॉक्टर †एनिवेसैंट लिखती है:—"एक प्रकार के परीक्षणों द्वारा आत्मा के अस्तित्व का अनुभव किया जा सकता है, अर्थात् इन्द्रियों का दमन करने से, उन पर विजय पाने से। उदाहरण के लिये, खाने पीने की या कोई और चीज़ जो तुम्हें बहुत अच्छी लगती हो उसे छोड़दो। तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारे अन्दर एक ऐसी वस्तु है जो इन्द्रियों को अपने वश में रखती है। जिस समय किसी पदार्थ की अत्युत्कट इच्छा हो और तुम उसकी ओर हाथ बढ़ाना ही चाहते हो तब एक दम अपने आपको रोककर कहो—"मैं तुमसे अधिक शक्ति शाली हूं, मैं जैसा चाहूं तुम्हारे प्रति करूंगा, मैं तुम्हें यह इच्छा पूरी नहीं करने दूंगा"। तुम्हें प्रतीत होगा कि तुम इन्द्रियों से पृथक्, उनसे ऊंची तथा उन पर शासन करने वाली एक सत्ता हो। कई वार तुम इन्द्रियों की नैसर्गिक बहिर्वृत्तियों को न रोक सकोगे और इच्छा में बह जाओगे। तब भी तुम अनुभव करोगे कि "मैं शरीर और इन्द्रियों से पृथक् हूं, किन्तु इन्द्रियां मुझ से अधिक बलवान् हैं और मुझे अपने प्रवाह में बहाये ले जा रही हैं"। अभ्यास करने पर तुम शरीर और इन्द्रियों को अपने वश में कर लोगे।

† Proofs of the Existence of soul by Annie Besant.

यदि तुम्हारा शरीर और इन्द्रियां तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध चलेंगी तो तुम्हें लज्जा आएगी। इस प्रकार मन शरीर को वश में कर लेगा। अब क्या शरीर और इन्द्रियों को वश में रखने वाले मन को भी वश में किया जा सकता है? मन इधर उधर बहुत दौड़ता है। कल्पना करो कि तुम एक कठिन पुस्तक याद करना चाहते हो जिसकी तुमने कल परीक्षा देनी है। तुम्हें बड़ी चिन्ता है और तुम रात को पुस्तक लेकर बैठते हो, परन्तु तुम्हारा मन वेग से इधर उधर भागता है, पुस्तक में नहीं लगता। तब तुम क्रोध में आकर प्रयत्न करते हो, बल पूर्वक मन का संयमन करते हो और अपना सारा ध्यान पुस्तक में लगा देते हो। क्या चीज़ है जिसने बल लगा कर मन को वश में कर लिया? मन स्वयं ऐसा नहीं कर सकता। शासक और शासित एक ही सत्ता नहीं हो सकते। इस प्रकार अभ्यास द्वारा जब तुम अपनी इच्छा के अनुसार मनको किसी चीज़ पर लगाने की योग्यता प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें स्पष्टतया एक ऐसी वस्तु का अनुभव होने लगेगा जो मन और विचार-प्रवाह से ऊपर है, और इनका नियन्त्रण कर सकती है। योग दर्शन हमें बताता है कि यदि मन को एकाग्र करने का अभ्यास जारी रखा जाए तो मनुष्य को विचित्र अनुभव होने लगते हैं, उसके अन्दर अपूर्व विचार उठते हैं और उसे उनके सम्बन्ध में प्रतीत होता है कि वे अनायास कहीं से आरहे हैं, वे मेरी किसी युक्ति और अनुमान का परिणाम

नहीं हैं। मन को अधिक देर तक समाहित करने का अभ्यास होने पर आत्मा की ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह चाहे तो शरीर के बन्धन से अलग होकर अपने आपको शुद्ध रूप में अनुभव कर सकती है। इस समय आत्मा शरीर को तुच्छ समझने लगती है, और शारीरिक जीवन को कैद के समान मानती है। इस प्रकार का साक्षात् अनुभव होने पर आत्मा की सत्ता में कोई सन्देह नहीं रह जाता"।

उक्त साक्षात् अनुभव बहुत थोड़े लोगों को होता है, और जिनको नहीं होता उनमें से कई सम्भवतः इस पर विश्वास भी नहीं कर सकते। युक्ति और अनुमान का क्षेत्र सबके लिये समान है। इसलिये हम पहिले की तरह युक्ति के आधार पर ही अपनी बातों को प्रमाणित करते रहेंगे।

विचार को शरीर की तरह बन्धन में नहीं डाला जा सकता

शरीर से अतिरिक्त सत्ता के पक्ष में एक और प्रमाण यह है कि शरीर को कैद किया जा सकता है, कष्ट पहुंचाया जा सकता है। परन्तु, इसके विपरीत, विचार स्वतन्त्र है, इसे कुछ नहीं किया जा सकता। किसी को कुछ करने से तो रोका जा सकता है, परन्तु क्या कभी किसी को कुछ सोचने से भी रोका जा सकता है? प्राचीन यूनान के स्टोइक लोग कहा करते थे, "यदि कोई मुझे कहे, मैं तुम्हें कैद कर दूंगा,

तो मैं कहूंगा, हां तुम मेरे शरीर को कैद कर सकते हो परन्तु मुझे नहीं। यदि वह फिर कहे कि मैं तुम्हारा सिर काट दूंगा तो मैं क गा मने तुम्हें कब कहा है कि मेरा सिर नहीं काटा जा सकता, परन्तु मुझ पर तो सबसे बड़े देवता ज्यूस[1] का भी अधिकार नहीं है"। क्या ऐसा कहने में स्टोइक लोग अपने आपको शरीर से पृथक् नहीं अनुभव करते थे ?

उपसंहार

अब तक हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि—

क. विचार और चेतनता दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम नहीं हो सकते। ख. एकान्तर व्यक्तित्व आदि की घटनाओं से प्रतीत होता है कि चेतनता किसी समय जितनी प्रकट हो रही होती है, वास्तव में उसका विस्तार उससे कहीं अधिक होता है—अर्थात् दिमाग़ के क्रिया करते हुए भी चेतनता का एक अंश ही प्रकट होता है। ग. चेतनता के विविध अंशों के परस्पर विरोधी और अलग २ होने से ऐसा प्रतीत होता है कि चेतनता दिमाग़ पर आश्रित नहीं। घ. सम्मोहन-क्रिया से गरमी, सरदी, पीड़ा आदि का नैसर्गिक अनुभव भी आदेशानुसार स्थगित हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि चेतनता शरीर पर शासन करती है। ङ. चेतनता जब दिमाग़ पर आश्रित नहीं तो इसका कोई और स्थिर आधार

---

१ Zeus

होना चाहिये, क्योंकि प्रतिक्षण परिवर्तित होने के कारण चेतनता स्वयं स्थिर सत्ता नहीं, और वह स्थिर स्मृतियों का आश्रय नहीं बन सकती। च. कर्त्तव्य, न्याय, आत्मत्याग आदि के भाव शरीर से अतिरिक्त किसी अप्राकृतिक सत्ता की ओर निर्देश करते हैं।

ये सब युक्तियां मिलकर एक चेतन सत्ता की ओर संकेत करती हैं, जो प्रकृतिजन्य शरीर से स्वतन्त्र है, चेतनता का अपरिवर्तनशील आधार है, शरीर पर शासन करती है, आदर्शप्रिय और कर्त्तव्य, न्याय, करुणा आदि के भाव रखने वाली है। ऐसी सत्ता आत्मा से अतिरिक्त और क्या हो सकती है? इस सत्ता में बहुत सी अद्भुत शक्तियां हैं जिनसे इसका अप्राकृतिक और आध्यात्मिक होना और भी पुष्ट होता है। अगले अध्याय में हम इन शक्तियों का वर्णन करेंगे।

पांचवां अध्याय

मनुष्य की असाधारण शक्तियां

हम पहले लिख चुके हैं कि आजकल मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में अत्यन्त महत्व पूर्ण अनुसन्धान हुआ है। इस अनुसन्धान के परिणाम स्वरूप मनुष्य की कुछ ऐसी असाधारण शक्तियों का पता चला है जो शरीर से ऊंची किसी अन्य सत्ता की ओर संकेत करती हैं। मायर्स, फ्लैमेरियन, प्रिन्स, जेनेट, बिनेट आदि ने इस क्षेत्र में सर्वोत्तम अन्वेषण किये हैं। इन्हीं अन्वेषणों में से कुछ उदाहरण लेकर हम इस अध्याय में लिखेंगे।

अनिष्टाशंका

कई वार मनुष्य के मन में ज़ोर से यह आशंका पैदा होती है कि कोई अनिष्ट होने वाला है और यह अनिष्टाशंका कई बार ठीक निकलती है। इसके कुछ दृष्टान्त हम नीचे देते हैं:—

मायर्स लिखता है— "[1]टॉमस गैरिसन फोर्डलैएड में रहता था और उसकी ५८ वर्ष की बूढ़ी मां उससे २० मील की दूरी पर रहती थी। उसे अपनी मां से मिले दो वर्ष गुज़र गये थे, परन्तु हर हफ़्ते चिट्ठी पत्री आती जाती रहती थी। एक दिन टॉमस और उसकी स्त्री एक धार्मिक सत्संग में बैठे हुवे थे। टॉमस की गोद में उसका साल भर का बच्चा था। रात को १० बजे जब भजन हो रहे थे तो टॉमस के दिल में ख्याल आया कि उसे अपनी मां के पास चलना चाहिये। सत्संग में बहुत से लोग भिच कर एक तंग स्थान में बैठे हुवे थे, ऐसी गरमी में उसकी मां का दम घुट जाया करता था और और उसे हवा की ज़रूरत हुवा करती थी। इस गरमी को देख कर उसके मन में आशंका पैदा हुई कि उसकी मां अब कष्ट में है। उसकी यह आशंका इतनी तीव्र हुई की टॉमस गैरिसन ने किसी मित्र को बच्चा देकर, और अपनी स्त्री को बिना कुछ कहे, एक दम मां के घर की ओर प्रस्थान कर दिया। रेलवे स्टेशन पर पहुंचा तो गाड़ी छूट चुकी थी। वह पैदल ही चल पड़ा और कई घण्टे चलने के बाद रात के ३ बजे अपनी मां के घर पहुंच गया। वहां दरवाज़ा खट-खटाने पर किसी ने कोई जवाब न दिया। वह दरवाज़ा तोड़ कर अन्दर घुस गया और बहिन को जगा कर उसने पूछा, "मां कहां है"? बहिन

---

१. इस घटना के विषय में English Society for Psychical Research ने खोज की थी।

ने कहा. "अपने कमरे में सोई हुई है"। परन्तु टिमस ने उसे उत्तर दिया, "नहीं, मां तो अब मर चुकी है"। दोनों ने बिस्तर पर जाकर देखा तो मां को मरी हुई पाया। मां रात्रि के १० बजे यह कह कर सोई थी कि सवेरे अपने लड़के के पास चलेंगे, उस समय उसकी हालत असाधारणतया अच्छी थी"।

इसका यह अभिप्राय है कि एक ओर तो टॉमस गैरिसन की मां मर रही थीं और दूसरी ओर उसे उसी समय यह आशंका और प्रेरणा हो रही थी कि मां के पास चलना चाहिये। यह आशंका इतनी तीव्र थी कि वह अपनी स्त्री से बिना कुछ कहे और आधी रात के समय २० मील चलकर अपनी मां के पास आ पहुंचा।

इंग्लिस्तान के एक बड़े घराने की लेडी अर्डली नामक स्त्री के विषय में मायर्स[१] लिखता है:—

"जब उस स्त्री की आयु १६ वर्ष की थी तो वह अपने दादा दादी के साथ रहती थी। एक वार उसे खसरा हो गया। जब कुछ अच्छी हुई तो उसे कहा गया कि गरम पानी से नहा लो। वह खुशी २ नहाने के कमरे में गई और कपड़े उतार कर पानी में घुसने को ही थी कि उसे आवाज़ आई, "दरवाज़ा खोल दो"। आवाज स्पष्ट थी परन्तु उसे ऐसा भी प्रतीत होता था मानो उसके अन्दर से आ रही है। उसने चारों ओर देखा तो कोई न था। फिर दूसरी बार जब वही

---

१ Human Personality by Myers

आवाज़ आई तो वह डर गई और उसने अपने मन में कहा कि मैं ज़रूर पागल या बीमार हूं। परन्तु उसे अपना स्वास्थ्य अच्छा प्रतीत होता था, इसलिये वह इस घटना की उपेक्षा करके पानी में घुस गई। तीसरी और चौथी वार फिर वही आवाज़ आई। इस पर उसने छलांग मार कर दरवाजा खोल दिया और दोबारा पानी में घुस गई। परन्तु अबकी बार पानी में घुसते ही उसे ग़श आगया और वह पानी में चित्त गिर पड़ी। गिरते २ अचानक उसका हाथ घण्टी की रस्सी पर पड़ गया, जिससे नौकरानी दौड़ी आई, और उसने देखा कि अर्डली का सिर पानी के नीचे था। नौकरानी उसे उठा कर बाहर ले जा रही थी कि उसका सिर दरवाज़े के साथ टकरा गया और उसे होश आगई। यदि दरवाज़ा खुला न होता तो वह अन्दर डूबकर मर जाती"।

इसी प्रकार का वृत्तान्त कौंस्टैंस[१] नामक फ्रांस के एक बड़े औफ़िसर की स्त्री के विषय में है। उसे एक बार डिप्थीरिया रोग हो गया। डॉक्टर ने कहा कि गले में म्यूरीएटिक एसिड लगाना चाहिए। उस स्त्री की मां ने डॉक्टर को इस एसिड की एक शीशी दी, परन्तु उस स्त्री ने दवा लगवाने से इन्कार कर दिया और कहने लगी, "तुम मुझे मार दोगे"। डाक्टर ने उसे सान्त्वना दी, मगर वह अपनी जिद पर अड़ी रही। उसका शक दूर करने के लिये डॉक्टर ने उस शीशी में एक लम्बी

---

१. Flammarion's Mystery of Death Vol. I

सी लकड़ी की सींख डाली; सींख तत्क्षण काली हो गई। इससे मालूम होगया कि वह गन्धकाम्ल था। यदि वह गले में लगा दिया जाता तो गला जल जाता और उस स्त्री की मृत्यु हो जाती।

कई लोग इस प्रकार की घटनाओं को आकस्मिक कह कर टालना चाहते हैं। यदि ऐसी घटनायें एक दो हों तब तो इन्हें आकस्मिक भी माना जा सकता है। परन्तु इनकी संख्या तो अनगिनत है। ऐसी हालत में इन्हें आकस्मिक मानना जान बूझ कर अपनी आखों को बन्द कर लेना है। ये घटनायें केवल आजकल ही नहीं होतीं, किन्तु इतिहास के सब युगों में और भिन्न देशों में पाई जाती हैं। उदाहरण के लिये हम यहां एक पुरानी ऐतिहासिक घटना देते हैं:—

"सन् १४२६-३१ में इंग्लैण्ड और फ्रांस में युद्ध हो रहा था। इंग्लैण्ड ने फ्रांस को दबाया हुआ था और उसे फ़तह करना ही चाहता था। उस समय फ्रांस की एक लड़की जेन को आवाज़ आई, "तू फ्रांस की सेनानेत्री बन कर लड़"। उसने ऐसा ही किया, और अंगरेजों की सेना को परास्त करके अपने देश से निकाल दिया। इस लड़की के जीवन की कुछ घटनायें निम्नलिखित हैं:— जब वह एक किले के अन्दर प्रवेश करने लगी तो वहां के एक सिपाही ने उसे गाली दी। जबाब में उसने कहा— "तुम गाली देते हो, तुम ईश्वर में विश्वास नहीं करते ? और फिर जब कि तुम्हारी मौत भी

इतनी नज़दीक है" ? उसी शाम को वह सिपाही डूब कर मर गया। जेन स्वयं कहा करती कि थी मुझे भविष्य को सूचित करने वाली आवाजें सुनाई देती हैं। चिगनॉन स्थान पर उसे बादशाह के सामने लाया गया। बादशाह अपने तीन सौ दरबारियों के बीच में वेष बदल कर बैठा हुवा था। जेन ने उसे पहिले कभी नहीं देखा था, लेकिन फिर भी उसने उपर्युक्त आवाज़ के कारण बादशाह को तुरन्त पहिचान लिया, और कहा, "मैं एकान्त में तुमसे बातचीत करना चाहती हूं"। बादशाह को अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिये उसने उसे बताया कि तुमने अभी जो परमात्मा से गुप्त प्रार्थना की थी वह उस आक्षेप के विषय में थी जो तुम्हारे सिंहासन के उचित उत्तराधिकारी होने पर किया जा रहा है। एक वार जब वह थक कर ऑर्लियन्स नामक शहर में सोई हुई थी तो इस आवाज़ से जाग उठी कि 'दुश्मन सेन्टलूई किले पर हमला कर रहा है'। इसी प्रकार की आवाज़ों से उसे पहले ही मालूम था कि ७ मई १४२६ को टौनैलीज़ के आक्रमण में उसे चोट लगेगी। ऑर्लियन्स के घेरे पर उसने लेण्डेल को बता दिया था कि बिना खून बहाये तुम तीन दिन के अन्दर नष्ट हो जाओगे। और वास्तव में वह उस घेरे में एक नदी में डूब कर मर गया।

क्या इस प्रकार की शक्तियों की व्याख्या दिमाग़ अथवा शरीर के किसी गुण के आधार पर हो सकती है ?

क्या शरीर-क्रिया-विज्ञान के नियम बता सकते हैं कि इस प्रकार की भविष्य विषयक सूचना मनुष्य को कैसे मिल जाती है ?

इच्छाशक्ति का प्रभाव

मनुष्य की इच्छाशक्ति भी विचित्र और अद्भुत कार्य कर सकती है। सम्मोहन से आजकल हिस्टीरिया आदि कई रोगों की चिकित्सा की जाती है। सम्मोहनावस्था में सम्मोहन-कर्ता यदि अपने पात्र को यह आदेश दे कि 'तुम्हारा हाथ चेतनाशून्य हो जाए' तो हाथ को जलाने या काटने पर भी पात्र को कोई कष्ट नहीं होता। यह सब सम्मोहन-कर्त्ता की इच्छाशक्ति का परिणाम है। सम्मोहन-कर्त्ता ने अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल बनाया होता है और उसे केन्द्रित करने का अभ्यास किया होता है, इसी लिये वह अपने पात्र की इच्छा को अपनी इच्छा के आधीन कर लेता है, और जैसा चाहता है उससे करवाता है।

फ्लेमेरियन[१] ने सम्मोहन विद्या या मैस्मरेज़्म के आविष्कारक मैस्मर के विषय में एक कथा लिखी है:—'मैस्मर सन् १७७५ में हंग्री देश में कई रोगियों का सम्मोहन द्वारा इलाज कर रहा था। सेफ़र्ट एक विद्वान् था जिसे मैस्मर की बातें दम्भ-मात्र प्रतीत होती थीं। एक दिन सेफ़र्ट अख़बार हाथ में लिये मैस्मर के पास आ पहुंचा और उससे कहा कि अख़बार

१. Mystery of Death-Vol. 1 by Flammarion.

में आपके विषय में जो बातें लिखी हैं उनका मुझे क्रियात्मक प्रमाण दीजिए। मैस्मर रोगी के कमरे के बाहर इस प्रकार खड़ा होगया कि रोगी और वह एक दूसरे को न देख सकते थे। सेफ़र्ट दरवाज़े में इस तरह खड़ा होगया कि उसे रोगी और मैस्मर दोनों दीख सकते थे। मैस्मर ने हाथ की पहली अंगुली से रोगी की ओर आयताकार गति की। रोगी ने पसली पर हाथ रख कर दर्द की शिकायत की। सेफ़र्ट के पूछने पर उसने कहा, "मुझे तकलीफ़ है"। सेफ़र्ट ने रोगी से कहा, "जो कुछ तुम्हें अनुभव होता है उसका ठीक २ वर्णन करो" तो रोगी ने कहा, "मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरे अन्दर सब कुछ दायें से बांई ओर गति कर रहा है"। फिर मैस्मर ने अपनी अंगुली से रोगी की ओर अण्डाकार गति की, इस पर रोगी ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरे अन्दर हर एक चीज़ वृत्ताकार गति कर रही है। मैस्मर ने ज्यों ही गति बन्द करदी, तत्क्षण रोगी ने कहा, "अब कुछ नहीं अनुभव होता"। इस प्रकार मैस्मर जैसा चाहता था वैसा ही अनुभव रोगी में उत्पन्न कर देता था'।

विश्वास मात्र का शरीर पर प्रभाव

कई ईसाई भक्तों के विषय में कहा जाता है कि ईसा के प्रति अत्यन्त भक्ति के कारण उन्हें ईसा का सा कष्ट सहन

करने की और ईसा के से ज़ख्मों की इच्छा होती है, परिणामतया उनके शरीर पर वैसे ही ज़ख्म होजाते हैं जैसे सूली पर चढ़ने से ईसा के शरीर पर हुए थे। उदाहरण के लिये हम फ्लेमेरियन की दी हुई एक कथा संक्षेप में लिखते हैं:— एन[1] कैथेराइन एमरिच ८ सितंबर १७७४ में वैस्टफेलिया में पैदा हुई थी। वह बचपन से ही बड़ी धार्मिक थी। जब वह २४ वर्ष की थी तो एक दिन गिरजे में सलीब के सामने घुटनों के बल खड़ी हुई प्रार्थना में मग्न थी। सहसा उसे प्रतीत हुवा कि ईसामसीह प्रकाश से घिरे हुए एक युवक के रूप में अन्दर आया है। उसके बायें हाथ में फूलों का ताज है और दायें में कांटों का, और वह मुझ से कहता है, "तुम जो चाहो चुनलो"। मैंने कांटों का ताज चुन लिया है जो ईसा ने स्वयं मेरे सिर पर रख दिया है। फिर ईसा दृष्टि से ओझल हो गया है। और मैंने ताज को अपने सिर पर ज़ोर से दबा लिया है। एन के माथे पर वास्तव में दर्द होने लगी। कांटों के से ज़ख्म उसके सिर पर होगये। इन ज़ख्मों से खून बहता था। फिर एन एक मठ में प्रविष्ट होगई। वहां एक दिन वह प्रार्थना में लीन थी, उसे नज़र आया कि ईसामसीह ने आकर उसकी छाती पर सलीब (Cross) का निशान बना दिया है। बाद में देखने पर मालूम हुआ कि सचमुच उसकी

---

१. Mystery of Death Vol. 1 by Flammarion.

छाती पर सलीब का निशान बन गया था। एक दिन वह चुपचाप बैठी थी, उसके हाथ सलीब के आकार में जुड़े हुए थे और वह समाहित चित्त होकर सूली के समय के ईसामसीह का ध्यान कर रही थी और इच्छा कर रही थी कि मुझे भी ऐसा ही कष्ट अनुभव हो। सहसा उसे एक ज्योति दिखाई दी जिसमें ईसामसीह खड़ा था। उसके पांचों ज़ख्म सूर्यों की तरह चमक रहे थे। प्रत्येक ज़ख्म से ऐसी किरणें निकल रही थीं जिनकी नोकें तीरों के समान थीं। एन को प्रतीत हुआ कि इन तीरों से उसकी पसली और हाथ पांव छिद गये हैं। बाद में देखने पर मालूम हुआ कि वस्तुतः एन के शरीर में पांच ज़ख्म होगये थे, इन ज़ख्मों से रक्त भी प्रवाहित हो रहा था। इस घटना को सुन कर सरकारी अफ़सर स्वयं देखने आया। उसने इन ज़ख्मों को राज़ी करने के लिये आठ चिकित्सकों को नियुक्त किया, परन्तु प्रति शुक्रवार फिर जख्म हो जाते थे और उनमें से खून बहता था'।

इस घटना का यह अभिप्राय है कि एन का दृढ़ विश्वास उसके सामने विचित्र दृश्य उत्पन्न कर देता था, और विश्वास से उत्पन्न इस दृश्य का शरीर पर प्रबल प्रभाव पड़ता था। शरीर-क्रिया-विज्ञान इस घटना पर कुछ प्रकाश नहीं डाल सकता। वैज्ञानिक सदा से ऐसी घटनाओं को अविश्वास की दृष्टि से देखते रहे हैं, किन्तु ये शताब्दियों से होती आ रही हैं और आजकल भी

होती हैं, इसलिये इनपर अविश्वास करना प्रत्यक्ष देखी हुई बात की उपेक्षा करना है।

विश्वास चिकित्सा

कई बार देखा जाता है कि कई दुस्साध्य रोग विश्वास मात्र के प्रभाव से अच्छे हो जाते हैं। रोगी विश्वास पूर्वक किसी मन्दिर में या किसी महात्मा के पास जाता है और अच्छा हो जाता है। प्राचीन योरप में एस्क्युलेपियस[१] के मन्दिर और आजकल लॉड्रस[२] के सम्बन्ध में इस प्रकार की घटनायें सुनने में आती हैं। भारतवर्ष में भी इस प्रकार की घटनायें सब समयों में होती रही हैं। आजकल पाश्चात्य देशों में और विशेषतया अमरीका में विश्वास-चिकित्सा का बहुत प्रचार है। रोगी से कहा जाता है कि तुम विश्वास करलो कि तुम्हारा रोग अच्छा होगया है, और तुम शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे। प्रोफ़ेसर जेम्स अपनी एक पुस्तक[३] में लिखता है कि इस चिकित्सा से अंधे लूले और लंगड़े तथा अन्य असाध्य रोगों वाले व्यक्ति स्वस्थ हो गये हैं। इस चिकित्सा की व्याख्या दिमाग़ की किसी क्रिया से नहीं की जा सकती। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य में शरीर से अतिरिक्त कोई ऊंची सत्ता है जिसको शरीर पर

---

१. Aesculapius

२. Loudres

३. Varieties of Religious Experience

पूर्ण अधिकार है और इस लिये उसे निश्चय हो जाने पर शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं।

टैलिपैथी[1] [परचित्तज्ञान]

कई वार यदि किसी मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट हो और इस कष्ट के समय वह अपने किसी इष्ट जन को याद करे तो उसके कष्ट की सूचना मानसिक तौर पर उसके इष्ट जन को मिल जाती है। कष्ट आदि के न होते हुए भी किसी को ज़ोर से याद करने से कई वार उसे सूचना मिल जाती है। इसे अन्तःकरण द्वारा समाचार प्राप्त करना कह सकते हैं। टैलिपेथी की घटनायें हमेशा होती रहती हैं। आजकल तो ऐसी अगणित घटनाओं का संग्रह किया गया है। हम उदाहरण के लिये एक दो घटनाओं का उल्लेख करेंगे।

'फैन्टेज़म्स[2] आफ़ दि लिविंग' नामक पुस्तक में निम्न घटना लिखी है:—

"ऑक्सफ़ोर्ड का एक विद्यार्थी कैनन वारबर्टन अपने विषय में लिखता है कि, 'मैं ऑक्सफ़ोर्ड से एक दो दिन के लिये अपने भाई ऐक्टन वारबर्टन के पास रहने के उद्देश्य से गया। ऐक्टन बैरिस्टर था। जब मैं उसके घर पर पहुंचा तो वह एक नाच में शरीक होने के लिये कहीं गया हुवा था। वह मेरे लिये अपनी मेज़ पर चिट्ठी रख गया था।

---

१. Telepathy.
२. Phantasms of the Livinig.

इसमें लिखा था कि मैं रात्रि के एक बजे आऊँगा। चिट्ठी पढ़ कर मैं एक आराम कुर्सी पर बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। प्रतीक्षा करते २ मेरी आंख लग गई। ठीक एक बजे अचानक मैं उठ बैठा और चिल्लाया, 'वह गिर गया है"। मुझे यह दिखाइ दिया था कि मेरा भाई एक कमरे से बाहर निकल कर ज़ीने पर आया। ज़ीने की पहली ही सीढ़ी पर उसका पांव फंस गया और वह सिर के बल सीढ़ियों से नीचे गिर गया। बड़ी मुश्किल से हाथों और कोहनियों द्वारा उसने अपने आप को रोका। मैंने यह मकान पहिले कभी नहीं देखा था और न ही मुझे मालूम था कि वह कहां है। मैंने यह समझा कि जो कुछ मुझे दिखाइ दिया है वह सब स्वप्न है और मिथ्या है। इसलिये मैंने इसकी उपेक्षा कर दी और फिर सो गया। आधा घण्टा ही हुआ था कि मेरा भाई आ गया, उसने मुझे कहा, "अच्छा तुम आ गये हो, मेरी तो अभी गरदन टूटने से बच गई है। जब मैं नाच घर से बाहर निकला तो मेरा पांव फंस गया और मैं सीधा सिर के बल सीढ़ियों पर नीचे की ओर गिर गया"। कैनन लिखता है कि इससे पहले मुझे ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ था''।

डा० पोयर्सन फ़ैकल्टी ऑफ़ पैरिस का सदस्य था। उसने [1] फ़्लेमेरियन को अपने विषय में कई घटनायें लिखी थीं। इन में से एक यह भी है:—

---

१. Mystery of Death Vol. I

"मैं डाक्टर हूं, इस लिये कई बार लोग मुझे रात्रि को भी बुलाने के लिये आ जाते हैं। मेरे घर के पास से बहुत लोग गुज़रते हैं परन्तु यदि मुझे कोई बुलाने आता है तो वह अभी घर से बीस गज़ की दूरी पर ही होता है कि मेरी नींद खुल जाती है और मुझे ऐसा मालूम होने लगता है कि कोई दरवाज़े की घण्टी बजाने लगा है। पिछले १२ वर्ष में मुझे सैंकड़ों बार यह अनुभव हुआ। परन्तु जब मैं सो रहा होता हूं तभी यह अनुभव होता है। जागते हुऐ मुझे आने वालों की पहले से ख़बर नहीं होती"।

विचार[१] का एक से दूसरे में चले जाना

[२]फ्लेमेरियन ल्युडोविक नामक एक सात वर्ष के बालक के विषय में लिखता है कि उसमें प्रश्न हल करने की असाधारण शक्ति थी, परन्तु वह उसी प्रश्न को हल कर सकता था जिसका हल उसकी मां के मन में अथवा दृष्टि के सामने होता था। बालक स्वयं प्रश्न को देखता तक न था। इससे प्रतीत होता है कि वह केवल अपनी मां के विचार को जान लेता था। उसकी मां यदि किसी पुस्तक के पृष्ठ को देख रही होती थी तो वह उस पृष्ठ की संख्या बता देता था। कितना ही लम्बा वाक्य उसकी मां की दृष्टि के सामने होता, वह उसे बिना देखे आसानी से दोहरा देता था।

---

१. Thought Transference.

२. Mystery of Death Vol. I

इस प्रकार की घटनाओं से सूचित होता है कि मनुष्य के अन्दर शारीरिक शक्तियों से बढ़ कर भी कुछ शक्तियां विद्यमान हैं। विज्ञान इन घटनाओं की जो व्याख्या करता है वह मानने योग्य नहीं। इसके अनुसार विद्युत् की धारा के समान विचार धारा भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती है। परन्तु जैसा हम पहले कह आये हैं विचार की विद्युत् से किसी तरह भी तुलना नहीं की जा सकती। यदि विचार को विद्युत् जैसी चीज़ मान भी लिया जावे तो भी यह समझ में नहीं आता कि, उदाहरण के लिये टैलिपेथी में, विचार ठीक उसी आदमी को जाकर कैसे ढूंढ लेता है जिसके विषय में सोचा जाता है, और फिर वह आदमी चाहे कहीं पर और कितनी ही दूर क्यों न हो। विद्युत् की धारा प्रवाहित होती है, इसके तो कई प्रमाण हैं। टैलिग्राफी में विद्युत् तार द्वारा जाती है और बेतार की धारा को भी रास्ते में विशेष उपकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है। परन्तु क्या विचार की धाराओं के भी इस प्रकार चलने का कोई प्रमाण है ? कम से कम अभी तक तो वैज्ञानिकों को ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ।

+आंखों के बिना देखना (दिव्य दृष्टि)

यदि शरीर ही विचार और अनुभव का एक मात्र आधार हो तो शारीरिक इन्द्रियों के बिना देखना सुनना

+ Clairvoyance.

असम्भव होना चाहिये। परन्तु कई हालतों में देखा गया है कि बिना इन्द्रियों के भी देखना सुनना सम्भव है। प्रमाण-स्वरूप हम एक पुरानी ऐतिहासिक घटना पेश करते हैं:—

'प्राचीन काल का प्रसिद्ध महात्मा ऐपोलोनियस एक दिन अपनी आदत के अनुसार एफ़ेसस शहर के बाहर एक बाग़ में एक गम्भीर दार्शनिक विषय पर व्याख्यान दे रहा था। अचानक भावावेश में आगया। उसकी आवाज़ धीमी पड़ गई। वह बोलता २ बिलकुल रुक गया मानों किसी घटना के परिणाम की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हो। थोड़ी देर बाद वह एकदम ज़ोर से बोल उठा, "एफ़ेसस वासियो! प्रसन्न हो जाओ, ज़ालिम (रोम का सम्राट्) अभी इसी क्षण मारा गया है। अभी तक इस घटना की रोम में ख़बर भी नहीं है"। थोड़ी देर पश्चात् उसने कहा, "अब यह घटना रोम में फैल रही है"। लोगों ने समझा कि एपोलोनियस पाग़ल हो गया है। सब लोग चाहते थे कि ख़बर सच निकले, परन्तु अपनी इच्छा प्रकट करते हुए डरते थे। साथ ही उन्हें भय था कि कहीं एपोलोनियस की इस प्रकार की घोषणा को सुनने के कारण उनके ऊपर शहंशाह की ओर से कोई आपत्ति न आ जावे। किन्तु शीघ्र ही दूत एफ़ेसस पहुंच गये, और उन्होंने बताया कि 'ज़ालिम क़त्ल कर दिया गया है'। उसको उसी समय और उसी तरह क़त्ल किया गया था जब और जैसा एपोलोनियस ने देखा था'।

इसी प्रकार, पोप पायस पञ्चम को अपने महल की खिड़की से यह नज़र आया कि उसकी सेना ने लिपैन्टो की लड़ाई में विजय प्राप्त करली है। यह सेना महल से बहुत दूर थी।

फ्लेमेरियन[1] लिखता है कि फ्रांस के डाक्टर क्लोकैट ने सेन्टिन नामक एक स्त्री का आपरेशन किया। उसे सम्मोहन की अवस्था में लाया गया, जिस से उसे पीड़ा का कुछ भी अनुभव नहीं हुवा। सेन्टिन की लड़की लीगैण्डी को भी सम्मोहनावस्था में लाया गया। इस अवस्था में आकर उसने अपनी मां के शरीर की आन्तरिक बीमारी का पूरा पूरा वर्णन किया, और बताया कि कल मेरी मां मर जाएगी। अगले दिन उसकी मां मर गई। उसके शरीर को चीर फाड़ कर देखा गया तो लड़की का वर्णन सर्वांश में सत्य सिद्ध हुआ। शव को चीरने के समय फिर लड़की को सम्मोहन की अवस्था में लाया गया। उस समय उसने फिर अपनी मां की आन्तरिक दशा के विषय में वही बातें बताई जो पहले दिन बताई थीं। उसकी मां के शरीर को चीरने के समय उसे एक पास के कमरे में बैठा दिया गया ताकि वह कुछ देख न सके। वह वहीं बैठी बताती जाती थी कि चाकू किस भाग पर चलाया जा रहा है, और कहती जाती थी, "चाकू यहां क्यों चला रहे हैं रोग तो अमुक भाग में है"।

---

१. Mystery of Death Vol. I.

एलेकसिस[1] एक बड़ा प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ है। फ्रैमेरियन[2] ने उसकी बातों का वर्णन किया है। एलेकसिस[1] को उसका साथी मार्सिलैट सम्मोहन द्वारा स्वप्नविहार[3] की अवस्था में लाया करता था। इस अवस्था में वह अपरिचित घरों और न देखे हुए दूर के शहरों का वर्णन किया करता था, बन्द लिफ़ाफ़ों में रखे हुवे कागज़ों को पढ़ लेता था। फ़्रांस का प्रसिद्ध लेखक विक्टर ह्यूगो एक बार 'पौलिटिक' (Politique) शब्द लिख कर और उसे कई चीज़ों के अन्दर बन्द करके एलेकसिस के पास लाया। एलेकसिस ने यह शब्द पढ़ दिया। इसी प्रकार विकासवाद के प्रवर्तक प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्फ़रेड वालेस तथा अन्य कई शिक्षित व्यक्तियों के सामने एलेकसिस आंखों पर पट्टी बांध कर ताश खेला, खेलते हुवे वह अपने विरोधी के भी पत्ते बताता जाता था और अपने भी और प्रायः बाज़ी जीत लेता था। वह किसी पुस्तक के खुले हुए पृष्ठ से आगे किसी निर्दिष्ट पृष्ठ पर कोई निर्दिष्ट पंक्तियां पढ़ लेता था। पहले कई लोगों ने इन बातों को मदारी का खेल समझा। तब उस समय के सबसे बड़े मदारी रोबर्ट हौडिन ने भी बड़ी सावधानता से एलेकसिस की आंखों पर पट्टी बांध कर उसके साथ ताश खेला। एलेकसिस उसके और अपने पत्ते बताता जाता था। हौडिन ने एक पुस्तक खोल कर

---

१. Alexis. २. Mystery of Death Vol. I

३. Somnambulism.

एक पृष्ठ निकाला और एलेकसिस से पूछा, "इस पृष्ट से आठ पृष्ठ आगे इस स्थान पर क्या लिखा है" ? एलेकसिस ने स्थान निश्चित करने के लिये वहां से एक पिन गुजार दिया, फिर उसने कई शब्द पढ़े जो कि पृष्ठ खोलने पर देखा गया तो ठीक थे। हौडिन ने लिख दिया कि इस प्रकार की क्रियाओं का मदारी की खेलों से कोई सम्बन्ध नहीं। मोशो प्रिवोस्ट नामक एक मनुष्य का नौकर बहुत सा रुपया लेकर भाग गया। बहुत ढूंढ़ने पर भी उसका कुछ पता न चला। एलेकसिस से जब पूछा गया तो उसने कई वार बता दिया कि चोर वहां है और अमुक २ काम कर रहा है। पीछे दरयाफ़्त करने पर पता चला कि उस की बताई बातें बिल्कुल ठीक थीं।

एलेकसिस की विचित्र कथा उस समय के सब अख़बारों में निकली थीं। अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और बुद्धिमानों की उपस्थिति में उसकी परीक्षा ली गई परन्तु कोई भी व्यक्ति उसकी असाधारण शक्ति पर संदेह न कर सका।

एक[१] और प्रसिद्ध स्वप्नविहारी[२] †केलिस्टे ने ६० अविश्वासी दर्शकों की उपस्थिति में आंखों पर पट्टी बांधकर ताश खेला और वह, खेलते हुए, विरोधियों के पत्ते भी बताता जाता था। कई ताश उसी समय बिल्कुल नये मंगाये गए जिनमें से कोई एक चुन लिया गया।

१. Flammarion's Mystery of Death Vol. I
२. Somnambulist. †Calyste

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन और रीज़

अमरीका के संसारप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन ने अपने साथ बीती हुई एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है:–

'मेरे एक पुराने मित्र ने मेरे पास रीज़ नामक एक व्यक्ति को भेजा और लिखा कि तुम शायद इसकी अद्भुत शक्ति को समझ सको। मैंने रीज़ से मिलने का समय नियत कर लिया। जब वह आया तो मैंने अपने कारखाने के मज़दूरों को परीक्षण के लिये बुलवा लिया। नार्वे निवासी एक व्यक्ति को रीज़ ने कहा, " साथ के कमरे में जाओ और एक काग़ज़ पर अपनी मां का विवाह से पहिला नाम, उसका जन्मस्थान तथा कुछ और बातें लिखो"। उसने लिखकर काग़ज़ को तह करके मुठ्ठी में बन्द कर लिया। रीज़ ने मुठ्ठी में बन्द कागज़ की सब बातें ठीक ठीक बता दीं, और उसे यह भी बताया कि तुम्हारी जेब में इस समय दस क्राउन का एक सिक्का है। रीज़ ने ऐसे ही परीक्षण और मज़दूरों पर भी किये। मैंने (ऐडीसन ने) कहा, "मुझ पर भी कोई परीक्षण करो"। मैंने एक और भवन में जाकर यह शब्द लिखे, "†क्या क्षारीय बैटरी के लिये निकल के उदोषिद से कोई और अधिक अच्छी चीज़ है"? उन दिनों मैं इस विषय पर परीक्षण कर रहा था।

---

† "Is there anything better than hydroxide of nickel for an alkaline battery"?

अपना यह शक दूर करने के लिये कि कहीं रीज़ मेरे विचार को न जानले, मैं ने एक और प्रश्न को लेकर अपना सारा ध्यान उसके हल करने में लगा दिया। तब मैं उस कमरे की ओर चला जिसमें रीज़ था। मैं कमरे में घुसा ही था कि उसने कहा, "नहीं क्षारीय बैटरी के लिये निकल के उदोषिद की अपेक्षा और कोई अधिक अच्छी चीज़ नहीं है"। यह सब देख कर मुझे रीज़ की अद्भुत शक्ति पर पूरा विश्वास हो गया और मुझे आशा है कि भविष्य में ऐसी शक्तियों वाले लोग बड़ी सफलता के साथ वैज्ञानिक अन्वेषण करेंगे। उक्त घटना के दो वर्ष बाद, एक दिन मेरे चपरासी ने मुझे सूचना दी कि बाहर रीज़ खड़ा है और वह आप से मिलना चाहता है। मैंने एक काग़ज़ पर 'कीनो' (Keno) यह शब्द अत्यन्त छोटे अक्षरों में लिखा और काग़ज़ को लपेट कर जेब में रख लिया। रीज़ को अन्दर बुलाकर पूछा, "मेरी जेब में जो काग़ज़ है उस पर क्या लिखा है"? उसने तत्क्षण जवाब दिया, "कीनो"। फिर एक दिन डाक्टर जी० एच० थोमसन ने अपने घर पर बड़े २ वैज्ञानिकों को इकट्ठा करके रीज़ को बुलवाया। तब कई काग़जों पर अपरिचित पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्द लिख कर भिन्न २ गुप्त स्थानों में छिपा दिये गये। रीज़ ने आकर बता दिया कि काग़ज़ों पर क्या लिखा है और उन्हें कहां २ रखा है। जो कुछ उसने बताया सब सत्य था'।

एडिसन ने एक बार चार मनुष्यों के सिरों पर बैटरियां बांधकर उन्हें जोड़ दिया और इस प्रकार एक के विचारों को दूसरे तक पहुंचाने का यत्न किया, लेकिन इस परीक्षण का फल कुछ न निकला। फिर उन मनुष्यों को क्रमशः एक दूसरे के निकट लाया गया, यहां तक कि अन्त में चारों के घुटने आपस में छूने लगे, परन्तु फिर भी एक का विचार दूसरों को ज्ञात न हो सका।

फ्लेमेरियन[1] लिखता है कि 'लौंग्यील नामक एक फ्रांसीसी अपने साथ कैनेडा के एक बहशी को फ्रांस में ले आया। वहां एक दिन वह बहशी रोने लगा। जब लौंग्यील ने बहुत अनुरोध करके उससे कारण पूछा तो उसने बताया, "मुझे अभी खिड़की में से नज़र आया है कि कैनेडा में अमुक स्थान पर तुम्हारे भाई को क़त्ल कर दिया गया है"। यह ख़बर बाद में बिल्कुल सत्य निकली'।

कानों से देखना

फ्लेमेरियन[1] ने एक और घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है:—डॉक्टर लोम्ब्रोसो एक लड़की का इलाज कर रहा था। उस लड़की को प्रायः क्षोभोन्माद(हिस्टीरिया) के दौरे हुआ करते थे। दौरे के समय कभी कभी लड़की को आंखों से दिखाई देना बन्द हो जाता था। परन्तु ऐसे अवसरों पर वह

---

१ Mystery of Death Vol. 1

कानों से देख सकती थी। उसकी आंखों पर पट्टी बांध कर यदि उसके कानों के सामने कोई छपा हुआ पृष्ठ रख दिया जाता तो वह उसे पढ़ लेती थी। एक बार उस के कान और सूर्य के बीच में एक ताल[1] रखा गया तो उसे ऐसा प्रतीत हुवा मानों उसकी आंखें जल रही हों। वह कहने लगी, "तुम मुझे अंधा कर रहे हो"। यह लड़की दौरे की हालत में भविष्य के दौरों के बारे में भी बातें बताया करती थी। एक बार उसने बताया कि एक मास और तीन दिन बाद अमुक समय मुझे काटने की तीव्र इच्छा होगी। डॉक्टर और घर वालों ने उस का ध्यान इस बात से इधर उधर फेरने की बहुत कोशिश की, घड़ियों की सुइयां भी पीछे करदीं; परन्तु उसे ठीक दिन और ठीक समय काटने की प्रबल इच्छा हुई, और कई दस्त कागज़ दांतों से फाड़ने के बाद ही तृप्त हुई। डॉक्टर लौम्ब्रोसो लिखता है कि कान से देखने की शक्ति की व्याख्या शरीर-क्रिया-विज्ञान और रोग–विज्ञान के द्वारा बिल्कुल नहीं हो सकती।

मनुष्य की इस प्रकार की विचित्र शक्तियां संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं कि दर्शन, श्रवण आदि कार्य वस्तुतः इन्द्रियों के नहीं है और इन्द्रियों से अतिरिक्त कोई और चेतन सत्ता है जो इन्द्रियों को देखने सुनने आदि में साधन के तौर

---

१. Lens.

पर काम में लाती है। वह कभी २ साधनों के बिना भी यह कार्य कर लेती है। उस दशा में देखने सुनने आदि की शक्तियां बहुत प्रबल हो जाती हैं. मनुष्य हज़ारों मीलों की दूरी में देखने सुनने लगता है। इससे प्रतीत होता है कि ज्ञानेन्द्रियां उस चेतन सत्ता की शक्ति की साधन होती हुई भी उसकी समस्त शक्ति को प्रकट करने में असमर्थ हैं।

भविष्य का ज्ञान

बहुत वार मनुष्य को भविष्य का ज्ञान हो जाता है। हम यहां फ्लेमेरियन[1] की पुस्तक से एक दो उदाहरण देते हैं:—

'मार्बर्ग विश्वविद्यालय का गणित का उपाध्याय बोहिम एक दिन सायं काल अपने मित्रों के साथ बैठा हुआ था। सहसा उसके दिल में ज़ोर से यह विचार आया कि घर चलना चाहिये। उस समय वह मज़े में चाय पी रहा था इसलिये उसने इस विचार को भुलाने का प्रयत्न किया। परन्तु फिर यही विचार पुनः २ इतने उग्र रूप में आने लगा कि उसे घर जाना ही पड़ा। घर जाकर देखा तो सब कुछ ठीक था। परन्तु उसके मन में आया कि बिस्तर के स्थान को बदल देना चाहिये। यह विचार उसे व्यर्थ मालूम हुआ। परन्तु विचार बड़े ज़ोर से आया अतः उसे इसके अनुसार कार्य करना ही पड़ा। उसने नौकर की सहायता से अपना बिस्तर एक कोने से दूसरे कोने में कर दिया। अब उसके दिल को शान्ति होगई

१ Mystery of Death Vol. I.

और वह लौट कर अपने मित्रों के पास चला गया। वहां से वह दस बजे आकर सोगया। आधी रात के समय अचानक एक धड़ाका हुआ। देखा तो एक शहतीर और थोड़ा सा छत का हिस्सा नीचे गिर गया था। शहतीर ठीक वहीं गिरा था जहां पहले उसका बिस्तर था'।

जर्मनी का प्रसिद्ध विचारक शॉपन हायर लिखता है:—

'एक दिन मैं अंग्रेजी में एक लम्बी चिट्ठी लिख रहा था। चिट्ठी सुखाने के लिये उस पर रेत की डिबिया उलटाने के स्थान पर मैंने दवात उलटा दी। दवात की स्याही काग़ज़ पर और इधर उधर फर्श पर सब जगह गिर गई। मैंने नौकरानी को बुलाया। वह बाल्टी में पानी लाकर फ़र्श धोने लगी। धोते हुवे उसने मुझे बताया, "गत रात्रि को मुझे स्वप्न आया था कि इसी फ़र्श पर इसी प्रकार स्याही के छींटे पड़े हैं, मैं उन्हें इसी प्रकार धो रही हूं, मैनें दूसरी नौकरानी को भी यह स्वप्न बताया था"। दूसरी नौकरानी को अलग बुलाकर पूछने पर उसकी बात की पुष्टि होगई'।

फ़्लेमेरियन[1] ने एक और घटना का वर्णन इस प्रकार किया है:—'विन्सैन्ट सैसरोली नामक एक मनुष्य सारटिएनो शहर में जाकर बस गया। इस शहर में ३४ आदमियों का एक दल बैण्ड बाजा बजाया करता था। सैसरोली इस दल का

---

1 Mystery of Death Vol. 1.

अध्यक्ष नियत होगया। बैण्ड बाजा एक मकान की तीसरी मञ्जिल पर बजाया जाता था। सैसरोली ने पहिले दिन वहां बैण्ड बजवा कर कहा कि यह मकान अमुक दिन अमुक समय पर गिर जायेगा। मकान बिल्कुल पक्का था, इसलिये दल के सदस्य उसकी बात पर मन ही मन खूब हंसे। परन्तु वह अपनी बात पर डटा रहा। इस पर बैंड वालों को सन्देह हुआ कि कहीं सैसरोली पागल तो नहीं होगया। उसकी यह बात शहर में सब जगह फैल गई, सब लोग उस पर हंसने लगे। बैंड के पहले डायरेक्टर ने सैसरोली को जनता की हंसी से बचाने के लिये बड़े २ इञ्जीनियरों को बुला कर मकान के बारे में पूछ ताछ की। उन्होंने मकान की देख भाल कर के कहा कि मकान सर्वथा दुरुस्त है, इसके गिरने की कोई सम्भावना नहीं। परन्तु सैसरोली फिर भी अपनी बात दोहराता गया। जब उसके बताये के अनुसार मकान के गिरने का दिन आया तो सैसरोली ने बैंड वालों को कहा, "आज बैंड नहीं बजाना चाहिये क्यों कि अभी मकान गिरने वाला है, तुम सब यहां से निकल आओ"। सैसरोली बैंड वालों को लेकर मकान से नीचे उतर आया। उतरते हुवे वह कहता जाता था, "धीरे २ उतरो, कहीं मकान तुम्हारे ऊपर न गिर पड़े"। बैंड वाले उसकी इस बात पर मन ही मन हंस रहे थे, वे सोचते थे कि हम इस आदमी के कहने पर एक व्यर्थ और हास्यास्पद काम कर रहे हैं"। परन्तु जब वे नीचे बाजार में जाकर खड़े हुवे तो थोड़ी ही देर में वह मकान

ऊपर से नीचे तक गिर गया। इस घटना की पुष्टि में उस शहर के कई रहने वालों की साक्षियां मौजूद हैं'।

एक[१] और आदमी मैक गॉवन अपने विषय में लिखता है:—"जनवरी १८७७ को मैं ब्रुकलिन 'अमरीका' में था। मेरे दो लड़के जो अपनी छुट्टियों में आये हुए थे मेरे साथ थे। मैंने अपने लड़कों को वचन दिया कि मैं तुम्हें एक दिन थियेटर ले चलूंगा। अगले दिन के लिये मैं थियेटर में अपनी बहिन सहित सबके लिये सीटें रिज़र्व करवा के दाम दे आया। परन्तु जिस दिन थियेटर जाना निश्चित किया था उस दिन प्रातः-काल से ही मेरे अन्दर से बार बार आवाज़ आने लगी कि थियेटर मत जाओ। मैंने इस आवाज़ की उपेक्षा करनी चाही, परन्तु यह और भी ज़ोर से आने लगी। यहां तक कि दोपहर को मैंने अपने लड़कों से कह दिया कि थियेटर नहीं जाएंगे। मेरे मित्रों ने मुझसे कहा, "तुमने अपने लड़कों को वचन दिया हुआ है उन्हें ज़रूर ले जाओ अन्यथा उन्हें निराशा होगी"। परन्तु वह आवाज़ मेरे अन्दर से फिर भी आती रही, इसलिये तमाशा आरम्भ होने के एक घंटा पहले हम थियेटर छोड़ कर न्यूयोर्क की तरफ़, जहां लड़कों ने स्कूल में वापस जाना था, चल पड़े। उसी रात को थियेटर में आग लग गई, ३०५ आदमी मर गये और जिस

१. Mystery of Death Vol. 1 by Flammarion.

सीढ़ी से हमें थियेटर से बाहर आना था उस सीढ़ी से निकलने वाले सब लोग दब कर मर गये। यदि थियेटर जाते तो हम सब भी वहीं मर जाते। मैक गॉवन लिखता है मुझे इस प्रकार की आशंका पहले कभी न हुई थी और बिना पर्याप्त कारण के मैं अपना इरादा भी नहीं बदला करता था"।

उपर्युक्त भविष्य ज्ञान की घटनाओं की व्याख्या दिमाग़ की बड़ी से बड़ी शक्ति से भी नहीं की जा सकती। इसी प्रकार पूर्वोक्त अन्य असाधारण शक्तियां भी दिमाग़ से अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की ओर संकेत करती हैं जो चेतनता और ज्ञान का आधार है और जो शरीर की अपेक्षा बहुत ऊंची शक्तियां रखती है।

चेतनता की व्याख्या के लिये वैज्ञानिकों और विकास वादियों ने दिमाग़ की साधारण क्रिया के अतिरिक्त और भी कल्पनायें की हैं। अगले अध्याय में हम उनकी विस्तृत आलोचना करेंगे।

छठा अध्याय

'मानसिक अणुसमूह' और 'प्रधान कोष्ठ' के सिद्धान्त

(१)

हम देख चुके हैं कि चेतनता दिमाग़ के अणुओं की गति का परिणाम नहीं हो सकती, दिमाग़ द्वारा तो वह केवल बाह्य चीज़ों का ज्ञान प्राप्त करती है और शरीर पर प्रभाव डालती है। भौतिक रूप से सब इन्द्रियां और पट्ठे दिमाग़ के आधीन हैं। दिमाग़ के विकृत हो जाने पर इन्द्रियां और पट्ठे भी अपना समुचित काम करना बन्द कर देते हैं। जाग्रत अवस्था में जब सारा दिमाग़ काम कर रहा होता है, चेतनता पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होती, सम्मोहन और उपचेतनता की अनेक अवस्थाओं में दिमाग़ के पूर्णतया सक्रिय न होते हुवे भी अत्यन्त असाधारण बुद्धि और विचित्र शक्तियां प्रकट होती हैं। इससे यही सूचित होता है कि दिमाग़ सारी चेतनता को

प्रकट नहीं कर सकता, प्रत्युत कई ऊंची शक्तियों के प्रकट होने में एक बाधा का काम करता है। चेतनता की अन्य विशेषतायें—न्यायप्रियता, कर्तव्यपरायणता, आत्मत्याग आदि—भी दिमाग़ के अतिरिक्त किसी अन्य चेतन सत्ता की ओर संकेत करती हैं। इसी प्रकार अनिष्टाशंका, भविष्य ज्ञान, परचित्तज्ञान आदि अद्भुत शक्तियां इस बात की पुष्टि करती हैं कि मनुष्य के अन्दर शरीर से ऊंची एक चेतन सत्ता भी मौजूद है, और यह सत्ता शरीर से अधिक शक्तियों वाली तथा शरीर से स्वतन्त्र है, यद्यपि इसका शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है। यह सत्ता आत्मा ही हो सकती है।

आजकल विकास वाद का युग है। इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बात की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है। विकासवादी आत्मा को मानना नहीं चाहते, परन्तु शरीर द्वारा चेतनता की व्याख्या भी नहीं कर सकते, अतः वह चेतनता की व्याख्या के लिये एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं:—

भौतिक विकासवाद के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति [१]नीहारिका अर्थात् बादल जैसे सूक्ष्म रूप में थी। इस नीहारिका के परमाणुओं के परस्पर समीप आने और विविध प्रकार परस्पर संयुक्त होने के कारण विविध प्रकार की सृष्टि

१. Nebula.

हुई। इन्हीं परमाणुओं के एक विशेष प्रकार के संयोग से दिमाग़ भी उत्पन्न हुए जिनसे चेतनताएँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार संसार की सब वस्तुएं इन परमाणुओं के ही विभिन्न समास हैं। संसार के विकास में कोई ऐसी नई वस्तु या शक्ति प्रकट नहीं हो सकती जिसका आधार ये परमाणु और इन की गतियां न हों। यह विकासवाद का नैरन्तर्य (Continuity) का सिद्धान्त है। यह भौतिक विकासवाद का सिद्धान्त संसार में विद्यमान क्रम और व्यवस्था, वानस्पतिक जगत तथा प्राणी जगत् की सत्ता की सन्तोष जनक व्याख्या नहीं कर सकता। परन्तु केवल परमाणुओं से चेतनता की उत्पत्ति तो सोची भी नहीं जा सकती। चेतनता परमाणुओं से सर्वथा विलक्षण वस्तु प्रतीत होती है। परमाणुओं और चेतनता में इतना अधिक अन्तर है जितना संसार की किन्हीं और दो चीज़ों में नहीं है। प्रोफ़ेसर जेम्स की सम्मति में इनसे अधिक निरर्थक और कोई शब्द नहीं कि 'आण्विक गति चेतनता में परिणत होगई'। स्वयं विकासवादी भी उक्त सिद्धान्त की कमज़ोरियों को अनुभव करते हैं। हर्बर्ट स्पेंसर अपनी 'प्रिन्सिपल्स ऑफ़ साइकोलोजी' नामक पुस्तक में लिखता है:—

"That a unit of feeling has nothing in common with a unit of motion becomes more then ever manifest when we bring the two into juxtaposition"

संक्षेप से इसका अभिप्राय यह है कि भौतिक परमाणुओं की गति और चेतनता सर्वथा भिन्न भिन्न चीज़ें हैं। यदि हम दोनों की तुलना करके देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में परस्पर कोई समानता नहीं है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध वैज्ञानिक टिंडल लिखता है:—

'The passage from the facts of the brain to the corresponding facts of consciousness is unthinkable. Granted that a definite thought and a definite molecular action in the brain occur simultaneously we do not possess the intellectual organ, nor apparently any rudiment of the organ which would enable us to pass by a process of reasoning from one to the other."

इसका संक्षेप में भावार्थ यह है कि दिमाग़ की गतियों से चेतनता का उत्पन्न होना अविचारणीय है। यदि यह मान भी लिया जाय कि एक विशेष विचार और दिमाग़ के अणुओं की एक विशेष गति समकालीन है, तो भी हमारे पास कोई साधन नहीं जिससे हम यह समझ सकें कि दोनों का परस्पर क्या संम्बध है।

विकासवाद के विरोधी उक्त सिद्धान्त के इस कमज़ोर स्थल पर आघात करके इसे सर्वथा निकम्मा सिद्ध करने का यत्न करते हैं; विकासवादी इस आक्षेप का सन्तोषजनक उत्तर

नहीं दे सकते । इस लिए कई बुद्धिमान् विकासवादी यह मानने लगे हैं कि चेतनता आरम्भ से ही विद्यमान थी और नीहारिका[1] में या प्रकृति की प्रारम्भिक अवस्था में एक एक प्राकृतिक अणु के साथ एक एक चेतना का अणु भी लगा हुवा था । जिस प्रकार प्राकृतिक अणुओं के पारस्पारिक संयोग से शरीर और दिमाग़ बन गये हैं, इसी प्रकार मानसिक अथवा चेतना के अणुओं के आपस में मिलने से बड़ी बड़ी चेतनताएं बन गई हैं जिनकी अनुभूति मनुष्यों को अपने अपने अन्दर होती है । विकासवादियों के इस सिद्धान्त को 'मानसिक अणुसमूह का सिद्धान्त[2]' कहते हैं ।

मानसिक-अणुसमूह का सिद्धान्त

मानसिक अणुसमूह के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राकृतिक अणु के साथ एक मानसिक अणु भी लगा हुवा है। इसलिये, जैसे प्राकृतिक अणुओं के भिन्न भिन्न प्रकार से और अधिकाधिक एकत्र होने से उत्तरोत्तर उन्नत शरीर और दिमाग़ बनते जाते हैं, इसी प्रकार मानसिक अणुओं से भी उत्तरोत्तर उन्नत चेतनायें उत्पन्न होती हैं । मानसिक अणुओं के परस्पर मिलने और एकत्र होने के अनेक प्रकार

---

१. Nebula

२. Mind-Stuff or mind-dust Theory.

तथा मात्राएं सम्भव हैं। इसलिये चेतनायें भी अनेक प्रकार की और अनेक दर्जों की होती हैं। किसी मनुष्य का स्थूल दिमाग़ भौतिक अणुओं के मिलने से बना है और उसकी चेतनता उनके साथ लगे हुए चेतनता के अणुओं से। इस प्रकार इस सिद्धान्त को मानने वाले कहते हैं कि अनेक छोटी-छोटी चेतनताएं स्वयं मिलकर बड़ी बड़ी चेतनताओं को बना सकती हैं। इस बात के लिये कई प्रमाण दिये जाते हैं। उनमें से दो एक हम नीचे देते हैं:—

एक गत्ते में छोटा सा छिद्र करके उसे नंगे शरीर पर रख दो जिससे शरीर का बहुत सा भाग ढक जाए और गत्ते के छिद्र जितना भाग नंगा रहे। अब यदि इस नंगे हिस्से को किसी अत्यन्त गरम वस्तु से छूआ जाए, तो मनुष्य निश्चय पूर्वक निर्णय नहीं कर सकता कि वह ताप अनुभव कर रहा है अथवा स्पर्श। यह सन्देह पीठ आदि कई स्थानों पर अधिक होता है, परन्तु हाथ की हथेली आदि पर कम। इसका कारण यह बताया जाता है कि उक्त परीक्षण में ज्ञान-तन्तुओं के बहुत थोड़े सिरे उत्तेजित होते हैं और वे मिलकर इतने अधिक नहीं होते कि स्पष्ट रूप से ताप अथवा स्पर्श की चेतनता बन सके, इसीलिये मनुष्य निश्चय से नहीं बता सकता कि यह ताप है या स्पर्श। पीठ आदि स्थानों में ज्ञान तन्तुओं के सिरों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, इसलिये वहां यह अनुभव और भी अस्पष्ट होता है। प्रत्येक ज्ञान तन्तु के सिरे से चेतनता की

एक इकाई उत्पन्न होती है, इन इकाइयों की संख्या पर ही ताप स्पर्श अथवा अन्य कोई अनुभव निर्भर है। चेतनता की इकाइयों की पर्याप्त संख्या न होने से कोई अनुभव स्पष्ट प्रतीत नहीं होता।

इस सम्बन्ध में हर्बर्ट स्पेन्सर[1] के एक लेखका सार निम्न लिखित है:—

'साधारण परीक्षणों से सिद्ध किया जा सकता है कि यदि सितार आदि की तार पर किसी चीज़ के प्रहार समान अन्तरों पर एक दूसरे के बाद हों और उनकी संख्या एक सैकण्ड में १६ से अधिक न हो तो प्रहार अलग अलग सुनाई देते हैं। यदि उनकी संख्या प्रति सैकण्ड इससे बढ़ जाए तो ये अलग अलग प्रतीत नहीं होते। किन्तु इनके स्थान पर स्वर के रूप में एक निरन्तर ध्वनि सुनाई देती है। इससे सिद्ध होता है कि स्वर के एक होने का अनुभव वस्तुतः अनेक अनुभवों का संयुक्त परिणाम है। यदि प्रहारों की प्रति सैकण्ड संख्या और भी बढ़ा दी जावे तो स्वरों के उतार चढ़ाव अर्थात् 'स' 'रे' आदि में परिवर्तन आ जाता है। यदि प्रहारों की एक शृंखला के साथ अतिगति[2] की एक शृंखला उत्पन्न की जावे तो स्वरों में कई अन्य प्रकार के भेद हो जाते हैं। इन्हीं के कारण सितार का 'स' हारमोनियम के 'स, से भिन्न होता है। इसी

---

१. Principles of Psychology.
२. Overtones

प्रकार, सम्मिलित[1] गान में यद्यपि भिन्न भिन्न बाजे बजाये जाते हैं तो भी आवाज़ एक ही सुनाई देती है। यह आवाज़ किसी एक बाजे की आवाज़ से बहुत कुछ भिन्न होती है। प्रत्येक बाजा यदि अकेला बजाया जाय तो उसका अपना राग सुनाई पड़ता है, यदि सब बाजे इकट्ठे बजाए जाएं तो एक सम्मिलित राग सुनाई देता है। यद्यपि इस राग में सब बाज़ों की आवाज़ सुनाई देती है, तो भी यह भेद नहीं किया जा सकता कि अलग अलग बाजों की आवाज़ कौन सी है। इससे प्रतीत होता है कि सम्मिलित राग की अनुभूति, जो एक मालूम होती है, वह वस्तुतः भिन्न भिन्न बाजों के अनेक रागों की अनुभूति से बनी होती है। इसी युक्ति को और आगे बढ़ाया जा सकता है—अर्थात् किसी बाजे का निरन्तर प्रवाहित होने वाला एक राग का अनुभव भी उस बाजे से उत्पन्न होने वाले अनेक छोटे स्वरों के अनुभवों का समास है। इसी प्रकार, किसी शब्द की अनुभूति या चेतनता उसके अवयव-भूत अक्षरों की अनुभूति से बनी होती है। शब्द के समान, दृष्टि, स्वाद, गंध और स्पर्श की अनुभूतियों को भी इनकी इकाइयों की अनुभूतियों का समास मानना चाहिये। इससे भी कुछ और आगे बढ़ने पर क्या यह मानना सम्भव नहीं कि सब प्रकार की अनुभूतियों अथवा चेतनताओं की इकाइयां या मौलिक अवयव अन्त में एक ही हैं? जिस प्रकार स्वाद अथवा स्पर्श की एक

---

1. Orchestral music

जैसी इकाइयों से भिन्न भिन्न प्रकार के स्वाद अथवा स्पर्श का अनुभव उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि चेतनता की किसी प्रकार की अन्तिम इकाई के भिन्न भिन्न प्रकार और मात्रा में परस्पर समासों से रूप, रस, गन्ध आदि की भिन्न भिन्न प्रकार की चेतनतायें उत्पन्न हो जाएं। चेतनता की यह अन्तिम इकाई किस प्रकार की हो सकती है? क्षणिक शोर का अनुभव एक हलके धक्के के रूप में होता है। यह धक्का शरीर में से बिजली के गुज़र जाने से पैदा होने वाले धक्के के समान है। अकस्मात् यदि आकाश में बिजली चमक जाए या अकस्मात् हलकी चोट लग जाए तो उसका अनुभव भी कुछ इसी प्रकार का होता है। चेतनता की अन्तिम इकाई, मालूम होता है कि इस तरह की ही है। यदि धक्का ज़ोर का हो तो वह इसी प्रकार की इकाइयों का समास होगा। इन इकाइयों को मानसिक अणु कह सकते हैं। मानसिक अणुओं से चेतना उत्पन्न होने के सिद्धान्त को मानसिक-अणु-समास-सिद्धान्त कहते हैं'।

इस सिद्धान्त की आलोचना

मानसिक इकाइयों से चेतनता और छोटी चेतनताओं के समास से बड़ी बड़ी चेतनताओं के बनने का यह सिद्धान्त ऊपर से बहुत रोचक और युक्तियुक्त प्रतीत होता है। संतरे का रंग आंख से दिखाई देता है, उसके स्पर्श और स्वाद की अनुभूति क्रमशः हाथ और जिह्वा से होती है। इस प्रकार

संतरे की अनुभूति, जिसमें उसके रंग, स्पर्श, स्वाद आदि का इकट्ठा ज्ञान होता है, भिन्न भिन्न इन्द्रियों के अनुभवों का समास है। यह सिद्धान्त बहुत सादा और स्पष्ट मालूम होता है। परन्तु ज़रा गहरा सोचने पर इसकी असली स्थिति पता लग जाती है। अनुभूतियां अथवा चेतनताएं परस्पर मिलकर समास नहीं बना सकतीं। इस सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर विलियम [1]जेम्स की युक्तियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्हें हम संक्षेप में नीचे देते हैं:—

समास का यही अर्थ प्रतीत होता है कि उसके अवयव या इकाइयां अपने से अतिरिक्त किसी एक ही सत्ता पर प्रभाव डालती हैं, इस अतिरिक्त सत्ता या माध्यम के बिना समास का कुछ अर्थ नहीं। उदाहरण के लिये, एक समूह इसलिये समूह है कि कोई द्रष्टा उसकी सब इकाइयों को एक साथ देखता या सोचता है। अपने आप में वह व्यक्तियों और इकाइयों के सिवा कुछ नहीं। एक पत्थर की मूर्त्ति अपने आप-में केवल बहुत से पत्थर के ऐसे कण हैं जो परस्पर अत्यन्त निकट हैं। उनमें कोई एकता नहीं है, एकता केवल द्रष्टा के लिये है। उस मूर्त्ति पर रेंगती हुई चिऊंटी की दृष्टि में वह सम्भवतः बहुत से कणों का समूह ही है, यद्यपि एक मनुष्य की दृष्टि में वह एक मूर्ति है। इसी प्रकार, यह भी कहना ठीक नहीं

---

१. Principles of Psychology by W. James Vol. I.

कि उद्रजन और अम्लजन के अणु स्वयं मिलकर पानी बन जाते हैं। वस्तुतः पानी उद्रजन और अम्लजन के अणुओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वेही अणु अब एक नवीन स्थिति (H-O-H) में हैं। परस्पर ज़रा समीप आगये हैं. मिलकर एक नहीं होगये। पानी में जो नये गुण दिखाई देते हैं वे वास्तव में दोनों द्रव्यों के अणुओं का आंख, हाथ, आग, खाण्ड आदि विविध पदार्थों पर इकट्ठा प्रभाव पड़ने के कारण हैं। उन अणुओं के मिलने का अर्थ यह है कि वे हाथ आदि पर इकट्ठा प्रभाव डालते हैं। अपने आप में वे पहले की तरह ही अलग अलग हैं। शक्तियों के मिलने का भी यही अर्थ है कि वे शक्तियां अपने से अतिरिक्त किसी पदार्थ पर इकठ्ठा प्रभाव डालें। कई मनुष्य यदि एक ही चीज़ पर एक साथ ज़ोर लगाएं तो उनकी शक्तियां मिल जाती हैं, अर्थात् एक शक्ति के समान काम करती हैं, परन्तु अपने आप में वे शक्तियां अलग अलग ही हैं। जिसे स्वर या राग कहते हैं वह अपने आप में वायु पर किसी थरथराती हुई चीज़ के अलग अलग प्रहार हैं। लेकिन इन प्रहारों के कान पर इकट्ठे पड़ने का नाम राग है।

इस प्रकार कई चीज़ें या शक्तियां आपस में मिल नहीं जातीं। उनके समास या मिलने का केवल यह अर्थ है कि वह किसी द्रष्टा या किसी अन्य माध्यम पर एक दम प्रभाव डालती हैं। इससे अतिरिक्त, अपने आप में चीजों के मिलकर एक हो जाने का कोई अभिप्राय नहीं। इसी प्रकार

मानसिक क्षेत्र में भी छोटी छोटी चेतनताओं को एक दूसरे के चाहे कितना भी पास पास रख दिया जाए, परन्तु वे कभी मिल कर एक नहीं हो सकतीं। इनके मिलने का केवल यही अर्थ हो सकता है कि ये छोटी छोटी चेतनताएं एक साथ अपने से अतिरिक्त किसी पदार्थ पर प्रभाव डालें। एक पंक्ति में खड़े हुए बारह आदमियों में से प्रत्येक को यदि बारह शब्दों के एक वाक्य का एक एक शब्द बता दिया जाए तो उनमें से किसी में उक्त बारह शब्दों वाले समूचे वाक्य की चेतनता कभी उत्पन्न नहीं होगी, बल्कि प्रत्येक आदमी को अपना एक शब्द ही ज्ञात होगा। इसी तरह यदि एक बहरे के कंधे पर एक अंधा सवार हो जाये तो उन दोनों में से कोई, अथवा वे दोनों मिलकर, शब्द और रूप की तुलना नहीं कर सकते। हमें 'मकर' शब्द का ज्ञान एक शब्द के रूप में होता है, किन्तु यह ज्ञान 'म' 'क' और 'र' की चेतनताओं के स्वयं मिल जाने से पैदा नहीं हो सकता, क्योंकि ये चेतनताएं स्वयं मिल ही नहीं सकतीं। इन के मिलने का केवल यही उपाय है कि ये तीनों एक ज्ञाता (आत्मा) पर एक साथ प्रभाव डालें। इस अवस्था में 'मकर' शब्द का ज्ञान 'म', 'क', 'र' अक्षरों के ज्ञानों के प्रति आत्मा की प्रतिक्रिया का परिणाम होगा। यह एक नया ज्ञान होगा, तीन छोटे ज्ञानों का योग मात्र न होगा। तीनों अक्षरों के ज्ञानों का योग शब्द का ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्द के ज्ञान में जो चेतनता 'म' को जानती है वही साथ-

साथ 'क' और 'र' को भी जानती है, परन्तु 'म' अक्षर की चेतनता केवल 'म' को जानती है, 'क' की 'क' को और 'र' की 'र' को। इन तीनों का योग तीन चेतनताएं या तीन ज्ञान होंगे जो एक एक अक्षर को जानने वाले होंगे। परन्तु शब्द का ज्ञान एक है तीन का संग्रह नहीं। इस प्रकार, 'मकर' शब्द का ज्ञान 'म' 'क' 'र' के ज्ञानों के योग से एक भिन्न ज्ञान है। यह तभी उत्पन्न हो सकता है जब इन तीनों अक्षरों का ज्ञान एक साथ एक ही सत्ता को हो। शब्द का ज्ञान एक चौथा अर्थात् नया ज्ञान होगा जो तीनों ज्ञानों को इकट्ठा जानने के कारण एक ज्ञाता में उत्पन्न होगा। अर्थात् शब्द के ज्ञान की उत्पत्ति के लिये छोटी चेतनताओं से अतिरिक्त एक ज्ञाता की आवश्यकता है, और ऐसा ज्ञाता आत्मा ही हो सकता है।

चेतनताओं के समास के सिद्धान्त को मानने वाले[1] कहते हैं कि चेतनता अपने से छोटी चेतनताओं का समास हैं। 'अ' का ज्ञान और 'ब' का ज्ञान 'अ + ब' के ज्ञान के बराबर है। यह ऐसा ही है जैसे कोई कह दे कि $अ^2 + ब^2 = (अ + ब)^2$ वास्तव में 'अ + ब' का ज्ञान एक अनुभूति है, और 'अ' तथा 'ब' का ज्ञान दो पृथक् अनुभूतियां हैं। 'अ' के ज्ञान में जो चेतनता 'अ' को जानती है वह 'ब' को नहीं जानती। और जो 'ब'

१. Associationist.

को जानती है वह 'अ' को नहीं जानती। परन्तु 'अ + ब' के ज्ञान में इससे विपरीत दशा है, अर्थात् जो चेतनता 'अ' को जानती है वह साथ ही 'ब' को भी जानती है— अर्थात् 'अ' और 'ब' के परस्पर संबन्ध को भी जानती है। इस प्रकार, 'अ + ब' के ज्ञान में 'अ' और 'ब' के ज्ञानों के योग के अतिरिक्त भी कुछ है; 'अ' और 'ब' का ज्ञान 'अ + ब' के ज्ञान के बराबर नहीं है। परन्तु 'अ + ब' का समस्त ज्ञान होता है। रूप, स्पर्श, शब्द आदि का तुलनात्मक ज्ञान भी होता है। संतरे के ज्ञान में उस के रूप, रस, गन्ध आदि का सम्मिलित ज्ञान भी होता है। और स्वयं पृथक् ज्ञान मिलकर समस्त अथवा तुलनात्मक ज्ञान बन नहीं सकते। इसलिये, इस प्रकार के ज्ञान तभी हो सकते हैं यदि अलग अलग वैयक्तिक ज्ञान अपने से अतिरिक्त किसी सत्ता (आत्मा) पर प्रभाव डालें। ऐसी अवस्था में जिसे हम समस्त ज्ञान कहते हैं वह वास्तव में समस्त न होकर एक नया ही ज्ञान है जो उस ज्ञाता में प्रतिक्रिया रूप में उत्पन्न हुवा है। यदि आत्मा की सत्ता को मान लिया जाए तो हम कह सकते हैं कि पृथक् २ ज्ञान अथवा चेतनताएं आत्मा पर इकट्ठा प्रभाव डालती हैं, और इनके प्रति आत्मा की प्रतिक्रिया से एक नवीन ज्ञान उत्पन्न होता है जो उन्हीं चीज़ों को इकट्ठा और परस्पर सम्बद्ध रूप में जानता है। इस ज्ञान को हम प्रायः समास कहते हैं, परन्तु वास्तव में यह

समास नहीं, एक नवीन ज्ञान है[१]। इस प्रकार 'अ' और 'ब' के ज्ञान 'अ + ब' के ज्ञान के घटक नहीं है। इतना ज़रूर हैं कि 'अ + ब' के ज्ञान के उत्पन्न होने के लिये 'अ' और 'ब' के ज्ञानों का आत्मा के प्रति उपस्थित होना आवश्यक है।

प्रोफ़ेसर जेम्स लिखता है कि आत्म-वादियों की उपर्युक्त युक्ति का चेतनताओं के समास मानने वालों ने कभी कोई जवाब नही दिया, इसलिये मानसिक-अणु-समूह का सिद्धान्त युक्ति युक्त नहीं है। मानसिक अणुओं से मिलकर बड़ी चेतनताएं नहीं बन सकतीं। परन्तु बड़ी अथवा बहुत सी चीज़ों को इकट्ठा जानने वाली चेतनताएं होती अवश्य हैं। अतः ये चेतनताएं या अनुभूतियां आत्मा रूपी द्रष्टा की प्रतिक्रिया ही हो सकती हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि संतरे के रूप, रस गंध आदि अलग २ गुणों की चेतनताएं अपने आप ही मिलकर

---

१ "As you tickle a man's face with a feather, and he laughs, so when you tickle his intellectual principle (soul) with a retinal feeling, say, and a musculer feeling at once, it laughs responsively by its category of 'space', but it would be false to treat the space as simply made of these simpler feelings. It is rather a new and unique psychic craeation which their conbined action on the mind is able to evoke." -----'A pluralistic Universe' by Jamse, Page 187 – 188

संतरे की चेतनता के बराबर नहीं हो सकतीं। परन्तु चेतनताओं के समास के सिद्धान्त को मानने वाले अपने पक्ष में एक और युक्ति पेश करते हैं:— बहुत सी चीजों को इकट्ठा जानने वाली अर्थात् बड़ी चेतनता में व्यक्त रूप में घटक चेतनताएं विद्यमान नहीं होतीं परन्तु अव्यक्त रूप में होती हैं। उदाहरण के लिये. संतरे की चेतनता व्यक्त[1] रूप में तो एक नवीन और असमस्त चेतनता प्रतीत होती है—रूप.रस. गन्ध आदि की चेतनता का योग मात्र प्रतीत नहीं होती, परन्तु अव्यक्त[2] रूप में इस में रूप, रस गन्धादि की चेतनताएं पृथक् २ विद्यमान हैं। इस लिए संतरे की चेतनता वास्तव में रूप, रस, गन्धादि की चेतनता का योग ही है यद्यपि व्यक्त रूप में यह भिन्न प्रतीत होती है।

इस युक्ति के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि कोई चेतनता वही है जो वह व्यक्त रूप में अनुभव होती है, अव्यक्त रूप में किसी चीज़ की चेतनता के होने का कोई अर्थ नहीं। चेतनता (चितिसंज्ञाने) का तो अर्थ ही है—"अनुभव होना"। 'अव्यक्त' या 'अनुभव में न आने वाली चेतनता' यह एक शब्द-समूह है जिसका अर्थ कुछ नहीं। ऐसी चेतनता अचिन्तनीय है। एवं, चेतनता के विषय में दो पक्ष हैं—व्यक्ति

---

१. Conscious

२. Unconscious

पक्ष और अव्यक्ति पक्ष। दोनों पक्षों के लिये जो युक्तियां दी जाती हैं उनमें से कुछ हम संक्षेप से यहां देते हैं।

क्या अव्यक्त चेतनता होती है ?

पक्षः—इस सम्बन्ध में लिबिनिज़ की युक्ति प्रसिद्ध है—यदि एक दाना ज़मीन पर फेंक दिया जाए तो उसकी आवाज नहीं आती परन्तु यदि एक बर्तन भर दाने फेंक दिए जाएं तो उनकी आवाज़ आती है। यदि एक दाने की आवाज़ न आये तो बहुत से दानों की भी आवाज़ नहीं आ सकती। इसलिए प्रत्येक दाने की आवाज़ यदि व्यक्त रूप से नहीं आती तो अव्यक्त रूप से आनी चाहिये।

विपक्ष—प्रोफ़ेसर जेम्स लिखता है कि यह युक्ति ऐसी ही है जैसे कोई कहे कि यदि एक सेर बोझ एक तराजू के पलड़े को झुका सकता है तो एक तोला बोझ भी कुछ कम मात्रा में उसी पलड़े को झुका देगा। वस्तुतः तुला के एक पलड़े में रखा हुआ एक तोले का बाट दूसरे पलड़े में रखे हुए एक सेर के बाट को ज़रा भी नहीं हिला सकता। एक सेर के बाट वाले पलड़े का झुकना ही सेर भर के बाट के रखने के बाद से शुरु होता है। परन्तु प्रत्येक तोले का भार पलड़े पर कुछ प्रभाव अवश्य डालता है। जिससे अन्तिम तोला पलड़े को झुका सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक दाने का शब्द तो नहीं

होता परन्तु उसका कुछ ऐसा प्रभाव है कि बहुत से दानों का शब्द सुनाई देता है।

पक्ष—प्रारम्भ में किसी काम को सीखने में बहुत ध्यान लगाना पड़ता है, परन्तु जब मनुष्य काम करने में अभ्यस्त हो जाता है तो बहुत ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती। उदाहरण के लिये, सारा ध्यान बातचीत में अथवा पुस्तक पढ़ने में लगाने पर भी एक निपुण बाजा बजाने वाला बड़ी कुशलता से बाजा बजाता जाता है। लेकिन बाजा बजाने में कुछ न कुछ ध्यान की आवश्यकता तो है ही, इसलिये यद्यपि व्यक्त रूप से इस कार्य में ध्यान न लगा हो, तो भी अव्यक्त रूप से किसी न किसी अंश में ध्यान अवश्य लगा होना चाहिये।

विपक्ष:—अव्यक्त रूप से ध्यान न लगना मान कर भी इस प्रकार के बाजा बजाने की व्याख्या की जा सकती है। यह भी हो सकता है कि ऐसी अवस्था में साधारण व्यक्त चेतना ही कार्य करती हो, परन्तु इतनी शीघ्रता और उदासीनता के साथ कि उसकी तत्क्षण ही विस्मृति हो जाती हो। दूसरी व्याख्या यह है कि इस प्रकार के अभ्यस्त कार्यों को ध्यान तो दिया जाता है परन्तु साधारण चेतनता द्वारा नहीं, अपितु एक पृथक् चेतनता[१] (उपचेतना) द्वारा। 'एकान्तर व्यक्तित्व (Alternate Personality) 'सम्मोहन' (Hypnotism) आदि

---

१. Secondary Consciousness

की हालत में हमें इस पृथक्-भूत चेतनता के कई प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिये, सम्मोहन निद्रा की हालत (Hypnotic state) में सम्मोहन-कर्त्ता द्वारा दिये गये आदेशों (Post-Hypnotic Suggestions) को पात्र (Subject) जाग्रत अवस्था में भी पूरा करता है, यद्यपि इस अवस्था में उस आदेश की कोई स्मृति नहीं रहती। यदि आज्ञा पालन का समय आने से पहिले उसे पुनः सम्मोहन की अवस्था में लाया जाय तो उस अवस्था में उसे आज्ञा की स्पष्ट स्मृति होती है।

पक्ष—कई बार जो सवाल हम से हल नहीं होते, हम उन्हें सोचते हुवे सो जाते हैं, जागने पर हम उन सवालों को हल हुआ पाते हैं। इसी प्रकार, यदि हम दृढ़ संकल्प करके सोएं कि अमुक समय पर जागेंगे, तो ठीक उसी समय नींद खुल जाती है। साधारण चेतना तो इन कार्यों को करती प्रतीत नहीं होती, इसलिये प्रश्न का हल और समय का ध्यान अव्यक्त चेतना द्वारा होते होंगे।

विपक्ष—उपर्युक्त घटनाओं के सम्बन्ध में यह क्यों न समझ लिया जाय कि यह साधारण चेतनता द्वारा ही हो जाती हैं, लेकिन इनकी स्मृति तत्क्षण जाती रहती है। जैसे कई लोगों को अपने स्वप्न ऐसे भूल जाते हैं कि जागने पर उनकी ज़रा भी स्मृति नहीं रहती। इसके अतिरिक्त इन घटनाओं की व्याख्या पृथक् हुई हुई चेतना (उपचेतना) द्वारा भी अच्छी तरह हो सकती है।

पक्ष—कभी कभी हमें मालूम होता है कि कोई मानसिक अवस्था वास्तव में वह नहीं है जो हम इसे समझे हुवे थे, किन्तु उससे भिन्न है। हमें एकदम से पता लगता है कि जिस चीज़ से हम प्रसन्न थे वस्तुतः हम उससे अप्रसन्न हैं, या जिस मनुष्य को हम सिर्फ़ अच्छा समझते थे, असल में उसके साथ हमारा प्रेम है, जिस बात को हम परोपकार के भाव से कर रहे थे वास्तव में उस में स्वार्थ का भाव है। इससे यही परिणाम निकलता है कि अप्रसन्नता, प्रेम और स्वार्थ पहले अव्यक्त रूप में रहे होंगे।

विपक्ष—इन घटनाओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः इनमें कोई मानसिक अवस्था अव्यक्त रूप में न थी, सारी मानसिक अवस्था व्यक्त रूप में थी, लेकिन हम उसे पहले अशुद्ध नाम दे रहे थे, अर्थात् प्रेम को केवल सद्भावना कह रहे थे। अथवा यह कहा जासकता है कि पहले की मानसिक अवस्था कोई और थी, और अब अधिक तीव्र हो जाने के कारण या किसी अन्य कारण से वह भिन्न हो गई है। पहली और दूसरी मानसिक अवस्थाएं दोनों यद्यपि एक ही चीज़ से सम्बद्ध हैं, तथापि वे भिन्न भिन्न हैं। इसलिये यह कहना कि पहले कोई भाव अव्यक्त रूप में था, निरर्थक है।

इस प्रकार से अनेक युक्तियां प्रतियुक्तियां पक्ष और विपक्ष में दी जाती हैं। सारांश यह है कि अव्यक्त चेतनता अथवा मानसिक अवस्था (Unconscious Mental-

states) की कोई सत्ता नहीं है। जो बातें इसे सिद्ध करने के लिये पेश की जाती हैं, उनकी व्याख्या आसानी से किसी और तरह से हो सकती है। इस लिये, यह नहीं हो सकता कि मानसिक अवस्थायें व्यक्त रूप में बहुत सी चीज़ों को इकट्ठा जानने वाली और अव्यक्त रूप में उन्हीं चीज़ों को अलग २ रूप में जानने वाली हों। परन्तु बहुत सी चीज़ों को इकट्ठा जानने वाली चेतनताएं होती अवश्यमेव हैं, किन्तु चेतनताएं स्वयं आपस में मिलकर समास नहीं बना सकतीं। फिर, इकट्ठी चेतनता में अलग अलग चीज़ों की चेतनता के योग की अपेक्षा कुछ अधिक भी होता है- अर्थात् उन चीज़ों के परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान भी होता है। इसलिए, मानना चाहिये कि जिसे समस्त-चेतनता अथवा बहुत सी चीज़ों को इकट्ठा जानने वाली चेतनता कहते हैं वह वास्तव में बहुत सी विभिन्न वैयक्तिक चेतनताओं के प्रति, उन से अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता अर्थात् आत्मा की प्रतिक्रिया का परिणाम है।

२

यद्यपि मानसिक-अणु-समूह का सिद्धान्त युक्ति-विरुद्ध और अनुपादेय है, फिर भी कई लोगों को यह बहुत रोचक प्रतीत होता है। वे इस प्रकार युक्ति करते हैं:— यह माना जाता है कि एक कोष्ठ से बने हुए प्राणियों में भी चेतनता होती है, इसलिये दिमाग़ के कोष्ठों

की भी अलग अलग चेतनता का होना सम्भव है; और यदि ऐसा ही हो तो हमारी चेतनता इन कोष्ठों की अलग अलग चेतनता से मिलकर बनी है। बाह्य वस्तु के रूप, रस गन्ध आदि गुणों का ज्ञान भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा होता है। इन्द्रियों का सम्बन्ध दिमाग़ के विविध हिस्सों से है, इन्हें दृष्टि-केन्द्र श्रवण-केन्द्र आदि नाम दिये जाते हैं। विविध केन्द्रों की भिन्न भिन्न चेतनताओं के मिलने से किसी वस्तु की चेतनता बनती है। जानने योग्य रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि गुण अनेक हैं और जानने वाले अर्थात् दिमाग़ के हिस्से भी बहुत से हैं, इस लिये हमारे ज्ञान के भी नाना भाग होने चाहियें अर्थात् वह छोटे छोटे अनेक ज्ञानों से मिलकर बना हुवा होना चाहिये।

यह सिद्धान्त ऊपर से बड़ा युक्ति-युक्त प्रतीत होता है किन्तु हम परीक्षा करके देख चुके हैं कि यह वस्तुतः मानने योग्य नहीं है। छोटी चेतनताओं अथवा विविध कोष्ठों के भिन्न भिन्न ज्ञानों से मिल कर एक समस्त चेतनता कभी नहीं बन सकती। दृष्टि-केन्द्र या श्रवण-केन्द्र अथवा कोई कोष्ठ भौतिक रूप से एक चीज़ नहीं है, बल्कि पास पास पड़े हुवे बहुत से अणु हैं। ऐसी अवस्था में एक कोष्ठ की एक चेतनता कैसे हो सकती है? यदि प्रत्येक कोष्ठ की पृथक् २ चेतनता मान भी ली जाय तो भी एक केन्द्र में कई कोष्ठों के होने से उतनी ही चेतनताएं माननी पड़ेंगी जितने कोष्ठ हैं, और फिर भी यह प्रश्न बना रहेगा कि एक केन्द्र में अनेक कोष्ठों की

अनेक चेतनताएं मिलकर एक कैसे हो सकती हैं। इस प्रकार की कठिनाइयों के कारण एक और सिद्धान्त पेश किया जाता है जिसे 'प्रधान-कोष्ठ-वाद' कहते हैं।

प्रधान कोष्ठ[1] का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार दिमाग़ के प्रत्येक कोष्ठ की अपनी अपनी अलग चेतनता होती है जो कोष्ठ की भौतिक अवस्था के अनुकूल होती है। किसी कोष्ठ की चेतनता का दूसरे कोष्ठ की चेतनता से सम्बन्ध नहीं। परन्तु साधारण कोष्ठों के अतिरिक्त एक और सबसे बड़ा 'प्रधान कोष्ठ' है। सब कोष्ठ भौतिक रूप से इस प्रधान कोष्ठ पर प्रभाव डालते हैं। अतः, किसी समय प्रधान कोष्ठ की अवस्था सब कोष्ठों के प्रभावों का परिणाम है, सब कोष्ठों की अवस्था मानो उस में प्रतिक्षिप्त हो रही है। इस प्रकार, प्रधान कोष्ठ सब कोष्ठों को मिलाने या समस्त बनाने वाला वह बाह्य माध्यम है जिसके बिना कोई समास बन नहीं सकता, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं। किसी समय प्रधान कोष्ठ की चेतनता अपनी उस भौतिक अवस्था के अनुकूल ही होती है जो उसमें अन्य उपकोष्ठों के प्रभाव से उत्पन्न हुई है। यही मनुष्य की चेतनता है। यह चेतनता उन सब चीज़ों को जानती है जिन्हें छोटे कोष्ठ जानते हैं

---

१. Material-Monad Theory.

क्योंकि छोटे कोष्ठ प्रधान कोष्ठ पर अपना प्रभाव डालते हैं। प्रधान कोष्ठ की चेतनता छोटे कोष्ठों की चेतनता का समास नहीं है, अपितु छोटे कोष्ठों के प्रति प्रधान कोष्ठ की प्रतिक्रिया का परिणाम है, अतः यह एक नवीन और असमस्त चेतनता है। इस प्रकार, यह सिद्धान्त मानसिक अणुसमूह पर होने वाले आक्षेपों से मुक्त प्रतीत होता है।

मानसिक अणुसमूह के सिद्धान्त की तरह इसमें यह नहीं मानना पड़ता कि छोटी छोटी चेतनताएं (कोष्ठों की चेतनताएं) अपने आप मिलकर बड़ी चेतनाएं बन जाती हैं। जैसा हम पहिले कह आये हैं, कई चीजों के मिलकर समस्त होने का अर्थ यह है कि वे चीजें किसी एक चीज़ पर इकट्ठा प्रभाव डालें।

प्रधान-कोष्ठवाद की आलोचना

प्रधान-कोष्ठवाद को मानकर हम बहुत से दोषों से छुटकारा अवश्य पा सकते हैं, परन्तु साथ ही इसमें कई त्रुटियां भी हैं। शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं को दिमाग़ में ऐसा कोई असाधारण प्रधान कोष्ठ अभी तक नहीं मिला जिसे सारे दिमाग़ क केन्द्र कहा जा सके। यदि दिमाग़ में किसी कोष्ठ को प्रधान मान भी लिया जाय तो भौतिक दृष्टि से वह प्रधान कोष्ठ भी एक चीज़ नहीं है। जैसे दिमाग़ बहुत से कोष्ठों का समूह है, ऐसे ही वह प्रधान कोष्ठ भी बहुत से पास पास पड़े हुए

अणुओं का समूह है। इसलिये, यदि कोष्ठ भौतिक रूप से एक नहीं तो उसकी चेतनता भी एक कैसे हो सकती है ? इस अवस्था में, यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक परमाणु या उससे भी छोटी किसी चीज़ की अलग चेतनता होती है, तब तो फिर वही समस्या उत्पन्न हो जायगी जो मानसिक अणुसमूह के विषय में थी : एक कोष्ठ की चेतनता एक नहीं, बल्कि जितने उस कोष्ट में परमाणु हैं उतनी ही उसमें चेतनताएं भी हैं, और परमाणुओं की चेतनताओं से स्वयं मिलकर कोष्ठ की एक चेतनता नहीं बन सकती।

आत्मवाद का सिद्धान्त इन आपत्तियों से सर्वथा मुक्त है। आत्मा को मान लेने पर यह आसानी से समझ में आजाता है कि रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि की चेतनताएं कैसे मिल जाती हैं। हम कह सकते हैं कि भिन्न भिन्न इन्द्रियां दिमाग़ के दृष्टि, श्रवण आदि के विविध केन्द्रों को प्रभावित करती हैं, और ये सब केन्द्र आत्मा पर प्रभाव डालते हैं। किसी वस्तु के रूप, रस, स्पर्श आदि की इकट्ठी चेतनता आत्मा की प्रतिक्रिया है। आत्मा वह माध्यम है जिस पर प्रभाव डालने से दिमाग़ के सब केन्द्रों या अणुओं के प्रभाव आपस में मिल जाते हैं। आत्मा पर डाले गये प्रभावों के प्रति इसकी प्रतिक्रिया आत्मा की चेतनता है। ऐसा मानने से हम इस आक्षेप से बच जाते हैं कि दिमाग़ के अचेतन अणुओं की गति से चेतनता कैसे पैदा हो सकती है क्योंकि,

आत्मवाद के अनुसार, चेतनता आत्मा का स्वरूप है, धर्म है। दिमाग़ के भिन्न २ केन्द्रों की क्रियाएं स्वयं नहीं मिल सकतीं, परन्तु आत्मा पर केन्द्रों का प्रभाव पड़ने से क्रियायों का मिल जाना आसानी से समझ में आ जाता है, क्योंकि मिलने वाली चीज़ों के अपने से अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता पर इकट्ठे प्रभाव का ही नाम मिल जाना है। आत्मा भौतिक नहीं है, अणुओं से बना हुआ नहीं है, प्रत्युत एक तथा निरवयव है। इसलिये भिन्न भिन्न हिस्सों की चेतनता के मिलने का प्रश्न भी नहीं उठता।

सातवां अध्याय

आत्मा की सत्ता के अन्य प्रमाण

पिछले अध्यायों में हमने सिद्ध करने का यत्न किया है कि चेतनता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रकृतिवाद का यह सिद्धान्त कि दिमाग़ की क्रिया से ही चेतनता उत्पन्न होती है, अयुक्ति-युक्त है। इसी प्रकार इस विषय में विकासवादियों द्वारा प्रस्तुत किया हुआ मानसिक-अणु-समूह का सिद्धान्त भी मानने योग्य नहीं। इन सिद्धातों पर किये गये आक्षेपों से बचने के लिये 'प्रधान कोष्ठबाद' का आयोजन किया गया है, परन्तु वह भी दार्शनिक आक्षेपों से बच नहीं सकता। आत्मवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो सब प्रकार के आक्षेपों से मुक्त है। मनुष्य की साधारण तथा असाधारण शक्तियां आत्मवाद के स्वीकार करने से ही समझ में आ सकती हैं।

अब हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि आत्मवाद का सिद्धान्त अपने आप में युक्तियुक्त है और मनुष्य के लिये इसका मूल्य अपरिमित है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य के अन्दर ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न आदि मानसिक शक्तियां हैं। ये शक्तियां क्रियारूप हैं, इनका कोई कर्त्ता अथवा आधार होना चाहिये। यह आधार दिमाग़ या कोई अन्य भौतिक प्राकृतिक वस्तु नहीं हो सकती। ज्ञान,इच्छा तथा प्रयत्न में और प्रकृति से बनी चीज़ों में इतना महान् अन्तर है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जासकती। विचार प्राकृतिक जगत् से इतर पदार्थों का भी होता है। जैसे परमात्मा का, आदर्शका. संख्या का तथा घोड़े आदि जातियों के सामान्य गुणों का। ऐसी अवस्था में दिमाग़ को मानसिक शक्तियों का उद्भवस्थान मानना अत्यन्त असङ्गत है।

दिमाग़ अवयवी है, अवयवों से बना हुआ है, और विभाज्य है, बहुत से हिस्सों में बांटा जा सकता है। इसके विपरीत विचार अथवा चेतनता एक निरयव पदार्थ है। उदाहरण के लिये, लैमनेड का स्वाद मीठे और खट्टे स्वाद का मिश्रण मात्र नहीं है अपितु एक नया ही स्वाद है। मिठास और खटाई इसके अवयव नहीं हैं यद्यपि यह मीठा भी है और खट्टा भी, तथा मीठी और खट्टी वस्तुओं के मिलने से बना है। स्वाद-रूप में यह निराला और निरयव है। इसी

प्रकार सन्तरे की चेतनता या संवेदन रूप, रस, गन्ध आदि के ज्ञान का संमिश्रण नहीं है। यह एक अविभाज्य चेतनता है। क्योंकि चेतनता अविभाज्य और निरयव है इसलिए उसका आधार भी अविभाज्य और निरवयव ही होना चाहिये। यदि दिमाग़ को आधार माना जाय तो उसके अवयवों की क्रियाके अनुकूल चेतनता के भी अवयव होने चाहियें। परन्तु अन्तःप्रेक्षण बताता है कि चेतनता सावयव नहीं है। दिमाग़ की तरह अन्य प्राकृतिक वस्तुएं भी सावयव होती हैं। इसलिये, चेतनता का आधार कोई अप्राकृतिक निरवयव पदार्थ होना चाहिये। इससे अनुमान होता है कि मनुष्य के अन्दर मानसिक जीवन की आधारभूत एक ऐसी सत्ता है जिसकी क्रिया चेतनता अर्थात् ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न आदि हैं। इस प्रकार की सत्ता आत्मा के अतिरिक्त और क्या हो सकती है?

विज्ञान हमें बताता है कि कार्य कारण का नियम प्राकृतिक जगत् में सर्वत्र काम कर रहा है। प्रकृति का कोई ऐसा स्थल नहीं जो इस नियम के बन्धन से मुक्त हो। इसलिये यदि चेतनता दिमाग़ अथवा अन्य किसी प्रकृतिमय पदार्थ का परिणाम हो, तो वह भी कार्यकारण के नियम के सर्वथा आधीन होनी चाहिए। परन्तु क्या चेतनता भी सचमुच कार्य-कारण की बेड़ियों में जकड़ी हुई है? ऐसा कौन व्यक्ति है जो यह अनुभव नहीं करता कि वह स्वतन्त्र है, जो चाहे कर सकता है? इस स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं कि वह

कूदकर ज़मीन से अलग हो जाए, या पहाड़ को उठाले, अथवा दूसरा कोई ऐसा ही असंभव कार्य कर ले। शारीरिक कार्य तो शरीर के बल से ही हो सकते हैं। यदि आदमी का हाथ अर्धाङ्ग रोग होने से निश्चेष्ट हो गया है तो वह यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी उसे न हिला सकेगा। परन्तु यह सब होते हुए भी मनुष्य मानसिक प्रयत्न करने में स्वतन्त्र है, शरीर को कितना भी जकड़ दिया जाय, लेकिन मन को नहीं जकड़ा जा सकता। किसी आदमी को कुछ सोचने से कोई ज़बरदस्ती नहीं रोक सकता। मनुष्य साधारणतया अपनी इच्छा और प्रयत्न के अनुसार अपने शरीर से भी काम करवा सकता है। उसे प्रायः यह अनुभव होता रहता है कि वह जो कुछ कर रहा है अपनी इच्छा से कर रहा है, यदि वह चाहे तो उल्टा भी कर सकता है। प्रायः सब समयों में मनुष्यों का इसी प्रकार का अनुभव होता है।

इस सार्वजनिक अनुभव की साक्षी पर अविश्वास बिल्कुल नहीं किया जा सकता। जो इस साक्षी पर अविश्वास करता है उसे याद रखना चाहिये कि यदि चेतना की ऐसी साक्षी पर अविश्वास किया जाय तो इस तरह की दूसरी साक्षियों पर भी अविश्वास करना पड़ेगा। उदाहरण के लिये, बाह्य जगत् की सत्ता का प्रमाण चेतनता की साक्षी के सिवाय और क्या है? हम इसीलिये तो अपने से बाहर का संसार मानते हैं कि हमें और अन्य सब मनुष्यों को इसका अनुभव

होता है अथवा हमारी चेतनता इसे जानती है। इसी प्रकार किसी अतीत घटना की वास्तविकता का यही प्रमाण होता है कि उस घटना को स्मृति द्वारा हमारी चेतनता अनुभव करती है। यदि किसी एक प्रसंग में चेतनता पर अविश्वास किया जाय तो सर्वत्र ही करना पड़ेगा, किन्तु सर्वत्र चेतनता पर अविश्वास करने को कोई उद्यत न होगा।

सारांश यह है कि मनुष्य प्रयत्न करने में स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि वह कई विकल्पों में से एक को चुन सकता है। कार्य कारण का प्रवाह अनिवार्य रूप से एक ही मार्ग पर बहता है। इस मार्ग को बदला नहीं जा सकता। इसलिए, स्वतन्त्रता और कार्य-कारण-भाव की आधीनता—ये दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएं हैं। प्रकृति सर्वथा कार्यकारण-भाव के आधीन है परन्तु चेतनता इस नियम से स्वतन्त्र है। ऐसी अवस्था में चेतनता का आधार प्रकृति नहीं हो सकती। स्टोइक लोग कहा करते थे—हमारे शरीर को राजा या अन्य कोई शक्तिशाली पुरुष बांध सकता है, लेकिन हमें साक्षात् देवताओं का राजा ज्यूस भी नहीं बांध सकता। एक शहीद अपनी शारीरिक पीड़ा के वश में नहीं होता। यदि उसके अन्दर शरीर से ऊंची चीज़ न हो तो वह शरीर के धर्म के अनुसार पीड़ा के वश में हो जाए। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि मनुष्य के अन्दर एक आत्मा है जो शरीर से स्वतन्त्र है और चेतनता का आधार है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हमारी चेतनता में हर समय 'मैं' का ज्ञान रहता है; विचार का रूप 'यह विचार' ऐसा न होकर 'मेरा विचार' या 'मैं इस चीज़ को जानता हूं' ऐसा होता है। किसी समय की चेतनता में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का ज्ञान होता है। साथ ही हर एक आदमी को यह भी अनुभव होता है कि मैं वही हूं जो पहले था। अस्वस्थता की कई हालतों को छोडकर कभी किसी को इस अनुभव की यथार्थता में सन्देह नहीं हुआ। इस प्रकार मानव चेतना इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य के अन्दर एक ऐसी सत्ता है जिसे वह 'मैं' कहता है. इस 'मैं' से अतिरिक्त दूसरी सब चीजों को वह 'मेरा' 'मेरी' कहकर पुकारता है। विचारों के परिवर्तित होते हुए भी 'मैं' का विचार स्थिर रहता है, चेतनता का ज्ञेय अंश बदलता रहता है, परन्तु ज्ञाता का अंश—अर्थात् 'मैं' की चेतना वैसी की वैसी ही बनी रहती है। बुढ़ापे में भी मनुष्य को यही अनुभव होता है कि मैं वही हूं जो बचपन में था। भूतकाल में अपने किये हुए कार्यों के लिए हमें अब भी गर्व या लज्जा आदि भावों का अनुभव होता है और भविष्य में अपने द्वारा होने वाले कार्यों के लिए हममें डर या उत्साह आदि के भाव पैदा होते हैं। इस प्रकार हम 'मैं' या 'अपने आप' को तीनों कालों में एक ही समझते हैं। इस प्रकार, 'मैं' का ज्ञान एक स्थिर अपरिवर्तनशील चीज़ की ओर संकेत करता है, जो आत्मा ही हो सकती है क्योंकि

शरीर निरन्तर परिवर्तनशील है। शरीर-क्रिया-विज्ञान के अनुसार सात साल पहले का एक भी कोष्ठ इस समय शरीर में नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी भौतिक चीज़ को ज्ञान नहीं हो सकता; वह अपने आपको नहीं जान सकती। यदि प्रकृतिवाद की बात मान भी ली जाय कि दिमाग़ अपने आपको जान सकता है तो भी दिमाग़ को अपने आपको दिमाग़ रूप में ही जानना चाहिए। अपने से सर्वथा भिन्न रूप में दिमाग़ अपने आपको कैसे जान सकता है? क्या कभी किसी आदमी ने अपने आपको दिमाग़ के रूप में अनुभव किया है? कदापि नहीं। आत्मवाद को स्वीकार किये बिना इसकी व्याख्या नहीं हो सकती कि वैयक्तिक एकता का यह भाव क्यों है।

मनुष्य को प्राय: 'मैं' का अनुभव होता है। यह 'मैं' अपने आपको प्रत्येक चीज़ के ज्ञाता के रूप में तथा अपने से अतिरिक्त सब चीज़ों को ज्ञेय के रूप में अनुभव करता है—अर्थात् ज्ञाता अपने आपको शरीर, दिमाग़ आदि बाह्य वस्तुओं से भिन्न समझता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मनुष्य को यह अनुभव होता है कि उसका 'अपना आप' या आत्मा अन्य सब बाहरी वस्तुओं से भिन्न है। यदि कहा जाय कि भिन्नता का यह अनुभव भ्रमात्मक है तो उत्तर यह है कि इसके भ्रमात्मक होने का क्या प्रमाण है? ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता।

मनुष्य के कुछ आदर्श हैं, वह इनका इच्छापूर्वक पालन करता है। वह कार्य करते समय किसी बाह्य पदार्थ से प्रेरित न होकर अपने अन्दर से ही प्रवृत्त होता है। इसके विपरीत, भौतिक वस्तुए केवल बाह्य प्रभाव से ही प्रेरित होती हैं। सिकन्दर में संसार पर विजय पाने की एक प्रबल महत्वाकांक्षा थी, इस महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए उसने निरन्तर प्रयत्न किया, और सदा बेचैन रहा। क्या यह निरन्तर प्रयत्न और बेचैनी बाह्य किसी पदार्थ के प्रभाव का परिणाम मात्र थी ? यदि ऐसा ही है तो वह ऐसा कौनसा पदार्थ है जिसका इतना बड़ा प्रभाव है ? और फिर, उस पदार्थ से केवल सिकन्दर ही क्यों प्रभावित हुवा, अन्य करोड़ों आदमी क्यों नहीं प्रभावित होते ? इससे स्पष्ट है कि यह सिकन्दर का बाह्य प्रकृति से स्वतन्त्र अपना आन्तरिक आदर्श ही है जो उसे संसार विजय जसे महान् कार्य के लिए प्रेरित कर रहा है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता और आत्म प्रेरणा प्रकृति के धर्म के विरुद्ध है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य के अन्दर भौतिक शरीर से अतिरिक्त एक सत्ता है, आदर्श प्रियता और स्वतन्त्र प्रयत्न इसी सत्ता के गुण हैं। इस सत्ता का ही नाम आत्मा है।

हम एक विचार की दूसरे विचार से तुलना करते हैं। इस वर्ष की गर्मी का गत वर्ष की गर्मी से मिलान करते हैं। दो रंगीन चीजों की एक दूसरे से तुलना करके उनके साधर्म्य

और वैधर्म्य का निर्णय करते हैं। परन्तु दो या दो से अधिक चीज़ों की तुलना नहीं हो सकती जब तक कि तुलना करने वाली एक अविभाज्य सत्ता न हो। तुलना के लिए यह आवश्यक है कि एक ही चीज़ पहले 'क' को जाने और फिर वही चीज़ 'ख' को भी जाने और फिर वही इन दोनों की समता तथा विषमता का निश्चय करे। इस प्रकार की तुलना अपने जीवन में हम प्रायः करते रहते हैं। वास्तव में तुलना के बिना ज्ञान ही असम्भव है, ज्ञान बहुत कुछ तुलनात्मक होता है। तुलना का आधार एक अविभाज्य सत्ता होनी चाहिए। यदि इसके भाग या अवयव हों तो 'क' का ज्ञान एक भाग को और 'ख' का ज्ञान दूसरे भाग को होगा, इस अवस्था में दोनों ज्ञानों का इकट्ठा अनुभव न होने से तुलना असम्भव हो जाएगी। इसलिए तुलना का आधार अविभाज्य निरवयव सत्ता होनी चाहिए। ऐसी सत्ता आत्मा ही हो सकती है, शरीर के तो सब अंग अवयवी और विभाज्य हैं।

उपर्युक्त युक्ति का प्रतिपादन प्रसिद्ध दर्शनवेत्ता लोट्ज़े ने किया था। यह युक्ति सर्वथा इसी रूप में न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य में भी मिलती है। इसके विरुद्ध चेतनताओं के समास मानने वाले मिल आदि दार्शनिक कहते हैं कि तुलना के लिये किसी एक आधार की आवश्यकता नहीं। 'क' और 'ख' के अलग अलग ज्ञानों के पास पास होने से तुलना होजायगी। लेकिन हम पहिले ही दिखा चुके हैं कि

'क' और 'ख' का ज्ञान एक दूसरे के कितना भी निकटतम क्यों न हो जाए अपने आप इकट्ठा नहीं होसकता। इसके अतिरिक्त 'क' और 'ख' के सादृश्यका ज्ञान दोनों के ज्ञान से अतिरिक्त एक नया ज्ञान है, दोनों के ज्ञानों का योगमात्र नहीं। यदि क और ख को जानने वाली दो अलग सत्ताएं हों तो यह नया तुलनात्मक ज्ञान किसको होगा। 'क' और 'ख' के ज्ञान यदि एक ही सत्ता को हों तो उस सत्ता की प्रतिक्रिया के रूप में ही यह नया तुलनात्मक ज्ञान उत्पन्न हुआ माना जा सकता है।

(२)

तर्कशास्त्र और विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि यदि किसी सिद्धान्त को मानने से बहुत सी बातें समझ में आजाए और वे सब की सब किसी अन्य सिद्धान्त के मानने से समझ में न आसकती हों, तो उस सिद्धान्त को ठीक समझना चाहिए। इससे आगे हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि आत्मा का सिद्धान्त बहुतसी ऐसी बातों की सन्तोष जनक व्याख्या करता है जिन की व्याख्या किसी अन्य एक सिद्धान्त द्वारा नहीं होसकती।

जीवन (Life)

विकासवाद का दावा है कि विकास की शृंखला अविच्छिन्न है। वही परमाणु जिनसे जड़ जगत् बना है जीवन के भी कारण हैं। विकास के मार्ग में जीवन भी एक

मंज़िल है। परमाणुओं के एक रीति से जुड़ने पर जड़ चीजें बन जाती हैं और उनके ही एक दूसरी रीति से जुड़ने पर जीवित चीज़ें बनती हैं। परमाणुओं से अतिरिक्त किसी अन्य कारण के मानने की आवश्यकता नहीं। तत्त्वों के मिलने से समास बनते हैं, समासों के गुण तत्त्वों से सर्वथा भिन्न होते हैं। अम्लजन और उद्रजन दो गैसें हैं। इनसे मिलकर जल बनता है। जलके गुण दोनों गैसों के गुणों से बिल्कुल भिन्न हैं। इसी प्रकार अम्लजन उद्रजन नत्रजन और कार्बन के मेल से कार्बनिक एसिड गैस (CO_2) जल (H_2O) और एमोनिया (NH_3) बनते हैं तथा इन समासों के ही विशेष अनुपात में मिलने से प्रोटोप्लाज्म या जीवन द्रव्य बनता है।

इस प्रोटोप्लाज्म में जीवन रूपी नवीन गुण है। स्फटिक जो जड़ है वह एक निश्चित आकार को प्राप्त करता हुआ बढ़ता है। इसी प्रकार जीवित वस्तुएं भी एक विशेष आकार में बढ़ती हैं। इस प्रकार केवल परमाणुओं के भिन्न भिन्न रूप में जुड़ने से सब जीवित चीज़ें बन गई हैं।

परन्तु, यदि विचार पूर्वक देखा जाए तो प्रकृतिवादियों द्वारा की गई जीवन की यह व्याख्या अपर्याप्त है। रासायनिक समासों में नये गुण अवश्य उत्पन्न होते हैं। लेकिन जड़ता का जीवन में परिणत होना इतना असाधारण परिवर्तन है कि रासायनिक क्षेत्र में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। जीवित चीज़ों के कुछ इस प्रकार के विशेष गुण हैं जो केवल

रासायनिक परिवर्तनों से उत्पन्न होते दिखाई नहीं देते। यदि ये गुण रासायनिक परिवर्तनों के ही परिणाम हों तो ये रासायनिक जड़ समासों में भी कहीं न कहीं दिखाई देने चाहिएं।

जीवित वस्तुओं के विशेष गुण कौन से हैं? पहला यह कि प्रत्येक जीवित वस्तु एक समष्टि के रूप में काम करती है चाहे उसके कितने ही अवयव हों। दूसरा यह है कि वह अपने आन्तरिक स्वभाव से तथा किसी उद्देश्य के लिए कार्य करती है। मनुष्य या जानवर अपनी इच्छा से कार्य करता है। पौदा भी अपने स्वभाव के अनुसार अपने आन्तरिक प्रभावों से उगता है। किन्तु पत्थर की अपनी कोई इच्छा नहीं है, उसके ऊपर जैसा बाहर से प्रभाव पड़ता है वैसी ही वह क्रिया करता है। जीवित वस्तुओं के कार्यों में आत्म-रक्षा सन्तति-रक्षा आदि उद्देश्य पूरे होते दिखाई देते हैं, परन्तु जड़ वस्तुओं की गति के कोई ऐसे उद्देश्य प्रतीत नहीं होते। किसी वस्तु के पूर्ण घोल में बने स्फटिक में उसके निश्चित ज्यामितिक आकार से अतिरिक्त कोई एकता नहीं होती, किन्तु बनस्पति और जन्तुओं के शरीरों में आकृति की एकता के साथ-साथ अवयव समष्टि पर तथा एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और समष्टि अवयवों पर आश्रित होती है। जानवरों और पौदों की क्रियाएं बहुत अंश में अपने आकार पर आश्रित होती हैं, जैसे आंख की क्रिया देखना आंख की रचना पर

आश्रित है। जीवित चीज़ के भागों में श्रम विभाग होता है। प्रत्येक अंग की अलग क्रिया और प्रत्येक क्रिया के लिए अलग अंग होता है। सम्पूर्ण शरीर प्रत्येक अवयव पर और प्रत्येक अवयव सम्पूर्ण शरीर पर आश्रित होता है। परन्तु, स्फटिक या किसी जड़ वस्तु में यह बात नहीं पाई जाती। स्फटिक की एकता केवल इस बात में है कि उसके भिन्न २ अवयव एक निश्चित ज्यामितिक आकार में जुड़े हुए हैं। जड़ वस्तुएं सर्वथा बाहर की परिस्थितियों के वश में होती हैं। उन्हें भौतिक तथा रासायनिक वाह्य शक्तियों द्वारा ही गति प्राप्त होती है। परन्तु जीवित चीज़ों की गति आन्तरिक प्रभावों और प्रेरणाओं से होती है। जीवित चीज़ों में अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बनाने, (Adaptation to Circumstances) और बाह्य पदार्थों में से मतलब की चीजों को लेकर अपने अन्दर जज्ब कर लेने की योग्यता, तथा वृद्धि चोट आदि की क्षति-पूर्ति, और सन्तान-उत्पत्ति आदि के विशेष गुण रहते हैं। ये योग्यताएं और विशेष गुण किसी जड़ चीज में नहीं होते। प्रत्येक जीवित वस्तु का उद्देश्य वह वस्तु स्वयं होती है अर्थात् उसके सब अवयव और शक्तियां उसके आत्माभिव्यञ्जन और पूर्णता के लिये कार्य करती हैं। किसी भी जड़ चीज़ में इस प्रकार की विशेषता नहीं पाई जाती। इसलिये, यदि जीवित कहलाई जाने वाली वस्तुओं में जड़ पदार्थ के अतिरिक्त कुछ न हो

तो उनमें जीवन की उक्त विशेषताओं के उपस्थित होने का क्या कारण होगा ? यदि जीवित वस्तुएं केवल जड़ तत्त्वों के समास मात्र हों, तो जड़ तत्त्वों के मिलाने से जैसे जड़ समास उत्पन्न होजाते हैं उसी तरह जीवित वस्तुएं और उनके घटक प्रोटोप्लाज्म, रक्त तथा एल्ब्युमिन आदि भी क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते ? आज तक कभी किसी वैज्ञानिक ने केवल जड़ तत्त्वों को मिलाकर कोई जीवित चीज़ नहीं बनाई। इसमें संदेह नहीं कि जब वैज्ञानिक लोग जीवित चीज़ों का विश्लेषण रासायनिक विधि से करते हैं, तो उन्हें भौतिक जड़ तत्वों के सिवाय कुछ नहीं मिलता। परन्तु इससे वे यह क्यों मान लेते हैं कि जीवित चीज़ों में जड़ तत्वों के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। उन्हें केवल यह मानने का अधिकार है कि जीवित चीज़ों में जड़ तत्त्वों के अतिरिक्त कोई ऐसी चीज़ नहीं जिस का पता रासायनिक विधियों से लगाया जा सके। रासायनिक विश्लेषण द्वारा भौतिक वस्तुओं का ही पता लग सकता है, इसलिये इसके द्वारा जड़ के सिवाय किसी चीज़ का परिज्ञान नहीं हो सकता।

हर्बर्ट स्पेन्सर आदि विकास-वादियों का कहना है कि सम्भव है कभी भूतकाल में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई हो जब कि जड़ तत्त्वों के मेल से जीवित चीज़ें बनी हों। एक बार जीवित चीजों के उत्पन्न होने के बाद फिर इन जीवित चीजों से दूसरी जीवित चीजें पैदा होने

लग गई, इस प्रकार जीवन की एक शृंखला चल पड़ी। दुबारा वह पहली परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई, इस लिए अब जड़ तत्त्वों से जीवित समास नहीं बनते। परन्तु यह केवल एक कल्पना है। बिना किसी प्रमाण के इस कल्पना को क्यों मान लिया जाए? और फिर, जीवित तथा जड़ वस्तुओं के परस्पर अत्यन्त भिन्न होने के कारण यह कल्पना बिल्कुल निर्मूल प्रतीत होती है।

यदि यह मान लिया जाय कि जीवन का आधार आत्मा है तो ऊपर कही हुई सब कठिनाइयां हल हो जाती हैं और अन्य कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। आत्मा को मान लेने पर यह कहा जा सकता है कि जीवित वस्तु इसलिये जीवित है क्योंकि उसमें जड़ तत्त्वों के अतिरिक्त एक जीवित पदार्थ आत्मा है। जीवित वस्तुओं का रासायनिक विश्लेषण करने से केवल जड़ या भौतिक पदार्थ ही मिलते हैं। आत्मा इन्द्रिय गोचर नहीं, इसलिये उसे रासायनिक विधि से नहीं जाना जा सकता। जीवित चीज़ों में वृद्धि, उत्पत्ति तथा अपने मतलब की चीज़ों को अपने अन्दर जज़्ब कर लेना आदि क्रियाएं उद्देश्यात्मक हैं, क्योंकि यह एक चेतन आत्मा के अधीन हैं, जीवित वस्तु का उद्देश्य वह वस्तु स्वयं होती है, अर्थात् उसकी क्रियाएं आत्मोन्नति, आत्मरक्षा तथा अपनी शक्तियों के विकास के लिये होती हैं, क्योंकि जीवित वस्तु के अन्दर एक

ऐसी सत्ता है जो चेतन है, जिसके उद्देश्य और संकल्प हैं, जो शरीर का अपने उद्देश्यों के लिये प्रयोग करती है।

वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि जीवन से कोई नई शक्ति उत्पन्न नहीं होती। केवल भोजन आदि से प्राप्त होने वाली शक्ति का प्रयोग होता है। यदि यह मान भी लिया जाए तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि भोजन आदि से उत्पन्न होने वाली शक्ति को एक विशेष रूप से व्यवस्थित करने का कार्य जीवन ही करता है। शरीर की रासायनिक और भौतिक शक्तियां एक विशेष उद्देश्य को पूरा करने में क्यों खर्च होती हैं, आत्मवाद से इस बात की भी स्पष्ट व्याख्या हो जाती है। जीवित वस्तु में शक्ति का उद्देश्यानुकूल प्रयोग आत्मा द्वारा ही होता है, यद्यपि वह शक्ति आती भौतिक तत्त्वों से ही है—जैसे एक ऐंजिन में आग, भाफ़ादि भौतिक तत्वों से शक्ति उत्पन्न होती है, परन्तु उसका उद्देश्यात्मक प्रयोग ड्राइवर के बिना नहीं हो सकता। यद्यपि ड्राइवर की इच्छा का परिणाम ऐंजिन का चलना नहीं होता, किन्तु इस इच्छा के बिना ऐंजिन द्वारा कोई उद्देश्यात्मक कार्य भी नहीं हो सकता।

चेतना, विचार, सुख दुःखादि अन्य गुण

मनुष्य की चेतनता और मानसिक गुणों की व्याख्या भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने से ही हो सकती है। प्रकृतिवादी इन्द्रियानुभव, सुख दुःख, स्मृति, इच्छा, प्रयत्न

आदि मानसिक क्रियाओं की व्याख्या शरीर और दिमाग़ से करने की कोशिश करते हैं। परन्तु, जैसा हम पिछले कई अध्यायों में दिखा चुके हैं, वे इस कोशिश में कभी सफल नहीं हुए। हक्सले टिंडल आदि प्रकृतिवाद को मानने वाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रकृति-वादी लोग यह सिद्ध करने में असमर्थ हैं कि भौतिक परमाणुओं से चेतनता और विचार की उत्पत्ति होती है। प्रकृति-वादियों के पास तो यह जानने का भी कोई साधन नहीं कि किसी मानसिक घटना के समय दिमाग़ में कौनसी क्रिया हो रही होती है। वे केवल कल्पना ही करते हैं कि सम्भवत: दिमाग़ में ऐसा ऐसा होता होगा। परन्तु यह कल्पना तभी की जा सकती है जब यह भली भांति सिद्ध हो जाए कि दिमाग़ वस्तुत: विचार और चेतनता का आधार है और यह बात अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी। आत्मा को मानने से चेतनता और विचार सम्बन्धी सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं। विचार चेतन है क्योंकि आत्मा चेतन है। एक चेतनता के सब विचार परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं, इन विचारों से किसी दूसरी चेतनता के विचार मिल नहीं सकते। दो मनुष्य एक दूसरे के कितना ही पास पास बैठ जाएं, लेकिन उनकी विचार-धाराएं मिलकर एक नहीं हो सकतीं। इसका कारण यह है कि प्रत्येक चेतनता का आधार एक पृथक् आत्मा है, इसलिये उसे केवल अपनी ही चेतनता का अनुभव होता है। प्रत्येक

विचार किसी व्यक्ति की चेतनता का भाग है। किसी विचार धारा से असम्बद्ध कोई विचार कहीं नहीं उपलब्ध होता, क्योंकि विचार आत्मा की क्रिया है, वह किसी आत्मा की विचार-धारा के अन्तर्गत ही हो सकता है। इसी प्रकार, प्रत्येक चेतना के साथ 'मैं' का ज्ञान लगा होता है। चेतनता का रूप इस प्रकार होता है—'मैं इसे जानता हूं'। इसका कारण यह है कि प्रत्येक ज्ञान का अनुभव किसी वैयक्तिक आत्मा को होता है। मनुष्य अपने आपको प्रत्येक चीज़ से, शरीर से भी, अलग अनुभव करता है क्योंकि आत्मा सब चीज़ों से अलग है। किसी चीज़ या व्यक्ति को भिन्न २ अवस्थाओं और स्थितियों में देखने से भी उसकी भिन्न २ स्मृतियां नहीं होतीं क्योंकि ज्ञान केवल ऐसी छाया का नाम नहीं जैसी फ़ोटोग्राफ़ की प्लेट पर पड़ती है, परन्तु आत्मा द्वारा प्राप्त अनुभव का नाम है, और आत्मा वास्तविक चीज़ को पहिचानना चाहता है अतः उसकी सामयिक स्थितियों और अवस्थाओं की उपेक्षा करता है और उन्हें केवल वास्तविक चीज़ के सूचक के रूप में प्रयुक्त करता है। इसी प्रकार, जैसा कि हम छठे अध्याय में देख चुके हैं, कई वस्तुओं या गुणों के इकट्ठे और तुलनात्मक ज्ञान को भी आत्मा की ही प्रतिक्रिया माना जा सकता है।

नैतिक भाव

स्वतन्त्र इच्छा (Free-will) भी तभी सम्भव है यदि आत्मा की सत्ता हो। आत्मा की सत्ता के अभाव में

मनुष्य केवल शरीर होगा, और शरीर भौतिक होने के कारण प्रकृति के नियमों के अर्थात् कार्यकारणभाव के अधीन होगा। कार्यकारणभाव का नियम और स्वतन्त्र इच्छा—ये परस्पर प्रतिकूल हैं। प्रकृति-वादी आत्मा की सत्ता को नहीं मानते, वे मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा से ही इन्कार कर देते हैं। परन्तु ऐसा करने से अन्य कई कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं। उदाहरण के लिये, मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक करता है, वह जानता है कि इन दोनों में से मैं जिसको चाहूं चुन सकता हूं, और इस चुनाव के लिये मैं उत्तरदायी हूं। बुरा काम करने पर लज्जा अनुभव होती है और मनुष्य अपने आप को गिरा हुआ समझता है। इसके लिये प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करता है। इसके विपरीत, अच्छा काम करने पर मनुष्य गौरव और आनन्द का अनुभव करता है। यदि मनुष्य स्वतन्त्र कर्ता न हो तो पाप के लिये लज्जा का भाव और पुण्य के लिये गर्व—ये दोनों निरर्थक और मिथ्या हैं, क्योंकि स्वतन्त्र कर्तृत्व न होने पर मनुष्य ने जो कुछ किया है वह अनिवार्य रूप से हुआ है, अतः वह उसके लिये ज़िम्मेवार भी नहीं है। यदि स्वतन्त्र इच्छा को न माना जाए तो किसी आदमी की प्रशंसा या निन्दा करना तथा किसी को इनाम या सज़ा देना भी अनुचित होगा, क्योंकि उसने जो कुछ किया अनिवार्य रूप में बाधित होकर किया।

स्वतन्त्र-कर्त्तृत्व की तरह मनुष्य में न्याय, आत्मत्याग, तप, संयम, मोक्ष की इच्छा, धैर्य आदि ऐसे गुण हैं जिनकी व्याख्या आत्मा को माने बिना केवल शरीर अथवा दिमाग़ से नहीं हो सकती। शरीर से इस प्रकार के गुण उत्पन्न हो सकते हैं, यह कल्पना भी नहीं की जा सकती। ये गुण शरीर की रासायनिक और यान्त्रिक क्रियाओं से सर्वथा भिन्न हैं।

अमरता—

अमरता का सिद्धान्त संसार में प्रायः सर्वत्र माना जाता है। अमरता में विश्वास मानव हृदय की गहरी आकांक्षाओं का परिणाम है। मनुष्य का जीवन मृत्यु होने पर सर्वथा समाप्त हो जाता है और फिर इसका कोई मूल्य नहीं रहता, यह मानना अत्यन्त असन्तोषजनक है। सब धर्म किसी न किसी रूप में अमरता में विश्वास करना सिखाते हैं, परन्तु अमरता के सिद्धान्त को सत्य मानने के लिये यह आवश्यक है कि आत्मा को माना जाए। मृत्यु के समय शरीर का नाश तो प्रत्यक्ष सिद्ध है, शरीर का कोई एक भाग भी अवयव निर्मित होने से अनश्वर नहीं हो सकता, इसलिये शरीर से अतिरिक्त आत्मा को ही अमर कहा जा सकता है।

पुनर्जन्म और स्वर्ग, नरक

पुराने समय से अब तक पुनर्जन्म का सिद्धान्त माना जाता रहा है। सब लोग जन्म से ही कुछ विशेषताएं लेकर

पैदा होते हैं। कई साधु स्वभाव होते हैं, कइयों में कुप्रकृतियां प्रबल होती हैं। कई जन्म से ही किन्हीं विद्याओं और कलाओं में निपुण होते हैं, कई शुरु से ही भाषाओं को जल्दी सीखने की योग्यता रखते हैं। अनेक वार दो मनुष्यों में परस्पर एक वार देखने मात्र से ही प्रेम या द्वेष उत्पन्न हो जाता है। संसार में मूर्ख अयोग्य और बेईमान लोग सुखी हैं और बहुत से सज्जन तथा योग्य पुरुष दुःख उठा रहे हैं। इस प्रकार की अनेक बातें पुनर्जन्म को मानने से ही भली भांति समझ में आ सकती हैं। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर ये घटनायें किसी पूर्वजन्म के संस्कार और कर्म-फल का परिणाम मानी जा सकती हैं। इन सबकी संतोषजनक व्याख्या किसी और सिद्धान्त से नहीं हो सकती। जो लोग पुनर्जन्म को नहीं मानते वे स्वर्ग नरक या बहिश्त-दोज़ख के सिद्धान्त को मानते हैं—अर्थात्, मृत्यु के पश्चात् कर्म-फल भोगने के लिये मनुष्य स्वर्ग या नरक में जाता है, कर्मफल इस जन्म में न मिलकर आगामी जन्म में स्वर्ग या नरक के रूप में मिलता है। पुनर्जन्म को मानने वाले और स्वर्ग नरक को मानने वाले दोनों प्रकार के लोगों के लिए आत्मा को मानना अनिवार्य है। पुनर्जन्म अथवा स्वर्ग या नरक में जाना तभी सम्भव है यदि शरीर से अतिरिक्त आत्मा भी हो। क्योंकि यहीं नष्ट होने वाले शरीर के बार बार जन्म लेने या स्वर्ग नरक में जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

असम्बद्ध चेतनताएं[1]

आजकल की मनोवैज्ञानिक गवेषणा के अनुसार माना जाता है कि कभी कभी चेतनता के विभाग हो जाते हैं— अर्थात्, उसके कुछ विचार अलग हो जाते हैं, अलग होकर वे एक और चेतनता बना लेते हैं, इस दूसरी चेतनता का एक पृथक् व्यक्तित्व होता है जिसका अलग नाम होता है। इस चेतनता के विचारों का साधारण चेतनता से कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसकी अपनी स्मृतियां हैं, अपने अनुभव हैं, इसका प्रत्येक विचार 'मैं यह जानता हूं' अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय के रूप में होता है। इस दूसरी चेतनता और साधारण चेतनता दोनों का व्यक्तित्व पृथक् पृथक् होता है। लेकिन यह सब होते हुवे भी दोनों एक ही मनुष्य में इकट्ठी रहती हैं। आत्मा के सिद्धान्त से इन पृथक् पृथक् चेतनताओं की भी व्याख्या की जा सकती है। चेतनता-प्रवाह आत्मा की क्रिया है। शरीर इस सम्पूर्ण प्रवाह को एक ही समय प्रकट करने में अशक्त है। अतः इस चेतनता-प्रवाह के खण्ड हो जाते हैं। साधारण जाग्रत् अवस्था में इसका एक भाग प्रकट होता है, और दूसरा भाग सम्मोहन, निद्राविहार, एकान्तर व्यक्तित्वादि अवस्थाओं में प्रकट होता है। परन्तु यह दूसरा भाग साधारण-तया अज्ञात अवस्था में रहता है। वर्तमान मनोविज्ञान इसे

---

१. Multiple Personality उदाहरण के लिए देखो पृष्ट ४१.

उपचेतनता का नाम देता है। आत्मा को न मान कर मनुष्य में दो असम्बद्ध चेतनताओं का रहना समझ में नहीं आ सकता।

सार्वजनिक और त्रिकालाबाधित नियमों[1] का ज्ञान

अनुभवैक-वाद[2] के अनुसार ज्ञान का स्रोत केवल अनुभव है, मनुष्य का मन (mind) एक साफ़ स्लेट के समान है, और उस पर जो भी कुछ लिखा जाता है वह अनुभव की तूलिका द्वारा ही लिखा जाता है। परन्तु वास्तव में मनुष्य-ज्ञान की इस प्रकार व्याख्या नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, मनुष्य को पूरा निश्चय है कि प्रत्येक आरम्भ होने वाली चीज़ का कोई कारण अवश्य होना चाहिये। किसी मनुष्य ने अपने जीवन में इस नियम के कुछ ही दृष्टान्त देखे होंगे और वे भी भूत काल में। इन दृष्टान्तों के आधार पर कोई सार्वजनिक और त्रिकालाबाधित नियम कैसे बनाया जा सकता है? केवल यही कहा जा सकता है कि भूतकाल में कुछ दृष्टान्तों में हमने आरम्भ होने वाली चीज़ों को कारण-पूर्वक देखा है। यह सब होते हुवे भी हमें निश्चय यही होता है कि यह नियम सार्वत्रिक और त्रिकालाबाधित है, इस निश्चय का आधार अनुभव

---

१. Necessary and Universal Truths.

२. Empiricism

से अतिरिक्त कुछ होना चाहिये । ऐसा कोई आधार बाह्यपरिस्थिति में तो प्रतीत होता नहीं, अतः वह मनुष्य के अन्दर ही होना चाहिये । आत्मा की सत्ता को मानकर ऐसे त्रिकालाबाधित ज्ञान की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है— आत्मा नित्य है और ज्ञान उसका स्वभाव है । अतः कई प्रकार का त्रिकाल-सत्य-ज्ञान उसमें सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान होता है । जिन सत्यों के उदाहरण अनुभव में आजाते हैं वे सत्य उद्बुद्ध या व्यक्त हो जाते हैं, शेष अव्यक्त रहते हैं । ज्ञानात्मक आत्मा को न मानकर शरीर की किसी ज्ञात-शक्ति को इनका आधार नहीं माना जा सकता ।

इस प्रकार, आत्मवाद से उन बहुत सी बातों की व्याख्या हो जाती हैं जिनका किसी अन्य सिद्धान्त द्वारा इतना सरल, स्पष्ट और संतोषजनक समाधान नहीं हो सकता ।

आठवां अध्याय

भारतीय दर्शनों में आत्मवाद

भारतीय दर्शनों में से कुछ आस्तिक और कुछ नास्तिक हैं। इनका यहां काल क्रम से उल्लेख नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभी तक यह अनिश्चित है कि कौनसा दर्शन कब प्रचलित हुआ। हम इनका उल्लेख विषय क्रम से करेंगे। सब से पहले हम नास्तिक दर्शनों को लेते हैं। नास्तिक दर्शनों में मुख्यतम चार्वाक दर्शन है।

चार्वाक दर्शन

इसके अनुसार आत्मा और परमात्मा की सत्ता नहीं है। पृथिवी, जल, तेज, और वायु ये चार ही सृष्टि के मूल तत्त्व हैं। इन चारों के परमाणु नित्य हैं, इनके विविध अनुपातों में संयोग और विभाग से संसार के विविध और अनेक पदार्थों की उत्पत्ति और नाश होता है। यह

सिद्धान्त वर्तमान विज्ञान से कुछ मिलता जुलता है । वर्तमान विज्ञान के अनुसार भी संसार के सब पदार्थ थोड़े से तत्त्वों के परमाणुओं के भिन्न भिन्न अनुपातों में मिलने से बनते हैं । उदाहरण के लिए, पानी और हाईड्रोजन-परोक्साइड दोनों ही आक्सिजन और हाइड्रोजन के मिलने से बनते हैं । दोनों के भेद का कारण इन में तत्त्वों के अनुपात का भिन्न २ होना है । उपर्युक्त चार प्रकार के परमाणुओं के विशेष अनुपात में मिलने से शरीर की भी उत्पत्ति होती है । जिस प्रकार परमाणुओं के किसी विशेष अनुपात से शराब में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार उनके किसी और विशेष अनुपात से अर्थात् परमाणुओं के मनुष्य शरीर के रूप में मिलने से एक नया गुण चेतनता भी उत्पन्न हो जाता है । यह चेतनता परमाणुओं का विभाग होने पर नष्ट हो जाती है । मृत्यु के बाद मनुष्य सर्वथा नष्ट हो जाता है । परलोक, कर्म्म-फल, स्वर्ग, नरक, मुक्ति आदि सब बातें कपोल कल्पित हैं । इसलिए, इस जीवन में जैसे तैसे सुखभोग करना चाहिये । चार्वाकों की प्रसिद्ध उक्ति है—

'यावज्जीवेत् सुखं जीवेद्
ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्
भस्मी भूतस्य देहस्य
पुनरागमनं कुतः ?'

चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष से अतिरिक्त अनुमानादि किसी प्रमाण को नहीं माना जाता। अन्य दर्शनों ने इस केवल प्रत्यक्षवाद की पर्याप्त आलोचना की है। हम यहां इस दर्शन के केवल चेतनता और आत्मा विषयक सिद्धान्तों की ही समीक्षा करेंगे:— मनुष्य का शरीर ही आत्मा है, शरीर को स्वादिष्ट और पौष्टिक पदार्थों से हृष्टपुष्ट बनाना ही आत्मोन्नति है। साधारण बोल-चाल में भी शरीर को ही आत्मा या अपना आप समझा जाता है। मैं जाता हूं, मैं गोरा हूं इत्यादि वाक्य शरीर पर लागू होते हैं। उपनिषदें भी इस सिद्धान्त को प्रमाणित करती हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है—

"विज्ञानघन एवैतेभ्योभूतेभ्य: समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति"।

अर्थात्, चेतनता इन भूतों से–पृथिवी, जल, तेज, वायु से-उत्पन्न होती है और इनके नष्ट होने पर यह भी साथ ही नष्ट हो जाती है।

चार्वाक की इन युक्तियों का खण्डन न्याय, वेदान्त आदि दर्शनों ने निम्न प्रकार से किया है—

(१) यदि शरीर ही आत्मा हो तो स्मृति का आधार भी शरीर होना चाहिये। शरीर बदलता रहता है, बचपन का शरीर जवानी में और जवानी का बुढ़ापे में नहीं रहता। चार्वाक के अनुसार भी बाल्यकालिक-शरीर-परिमाण के यौवनकालीन शरीर-परिमाण में परिवर्तित होने के लिए यह आवश्यक है

कि बाल्यकालीन शरीर का परिमाण नष्ट हो। जब युवावस्था का शरीर बचपन के शरीर से भिन्न है तो यौवनकाल में बचपन की स्मृति नहीं रहनी चाहिए। स्मृति के लिए आवश्यक है कि जिसने किसी चीज़ को देखा या सुना हो वही उस चीज़ का स्मरण करे। राम द्वारा दृष्ट काश्मीर का स्मरण कृष्ण को नहीं हो सकता। मनुष्य पूर्व दृष्ट काश्मीर को देखकर कहता है—इसे मैंने पहिले भी देखा हुआ है और अब मैं वही हूं जिसने पहले देखा था। इस प्रत्यभिज्ञा और स्मृति का आधार कोई स्थिर सत्ता ही हो सकती है। शरीर इस प्रकार की स्थिर सत्ता नहीं है, इसलिए शरीर से अतिरिक्त आत्मा ही स्मृति और प्रत्यभिज्ञा का स्थिर और अपरिवर्तनशील आधार माना जा सकता है।

(२) हम देखते हैं कि शरीर के जितने रूप आदि अपने गुण हैं वे तब तक विद्यमान रहते हैं जब तक कि उनका गुणी शरीर विद्यमान रहता है। आदमी के मर जाने पर भी जब तक उसके मुर्दा शरीर को जला नहीं दिया जाता तब तक शरीर के रूपादि अपने गुण नष्ट नहीं होते। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि यदि चेतनता भी शरीर का ही गुण हो तो उसे भी तब तक विद्यमान रहना चाहिए जब तक शरीर रहता है। पर हम देखते हैं कि मुर्दा शरीर

में चेतनता नष्ट हो जाती है। अतः चेतनता शरीर का गुण नहीं है[1]।

(३) हमें यह मालूम है कि जितने शरीर के अपने गुण हैं वे सारे शरीर में व्याप्त हैं। परिणामतः यदि चेतनता भी शरीर का गुण होती तो वह भी सारे शरीर में व्याप्त होती। सारे शरीर में व्याप्त होने का यह अर्थ है कि शरीर के सावयव होने से शरीर का प्रत्येक अवयव अलग २ चेतन है। इसका अर्थ यह है कि शरीर में एक चेतन मालिक न होकर नाना चेतन शरीर के सञ्चालक हैं। शरीर की क्रिया के नाना चेतनों के आधीन होने का स्वाभाविक परिणाम यह है कि, परस्पर विरोधी अभिप्रायों की सम्भावना होने से, या तो शरीर उन्मथित हो जाय— गड़बड़ी में पड़ जाय— या उसमें कोई क्रिया ही उत्पन्न न हो। अतः, आत्मा की सत्ता शरीर से पृथक् होनी चाहिए। शरीर को ही आत्मा स्वीकार नहीं किया जा सकता[2]।

(४) शरीर के गुणों का यदि हम विश्लेषण करें तो हम उन्हें दो श्रेणियों में बांट सकते हैं। १. शरीर के कई गुण तो अप्रत्यक्ष हैं, यथा— गुरुत्व अर्थात् भार। भार का प्रत्यक्ष नहीं होता। २. दूसरे प्रकार के

---

१. यावच्छरीरभावित्वाद् रूपादीनाम् (न्या० द० ३। २। ४८)

२. शरीरव्यापित्वात् (न्या० द० ३। २। ५१)

वे गुण हैं जो बाह्य इन्द्रियों से गृहीत होते हैं, यथा—रूप, रस आदि। परन्तु चेतनता इन दोनों श्रेणियों में नहीं आती। न तो यह अप्रत्यक्ष है, क्योंकि यह अनुभव में आती है और न ही यह इन्द्रियग्राह्य है, क्योंकि इसकी तो मानसिक अनुभूति होती है। अतः चेतनता शरीर का धर्म नहीं हो सकती [1]।

(५) योगी पुरुषों का आत्मा दूसरों के शरीरों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर उन शरीरों के द्वारा प्राप्त अनुभवों की स्मृतियां लेकर फिर अपने शरीर से सम्बद्ध हो जाता है। [2]श्री शंकराचार्य ने, शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की पत्नी के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये, अपनी आत्मा का मृत राजा अमरूक के शरीर के साथ संबन्ध कर लिया।

---

१. शरीरगुणवैधर्म्यात् (न्या० द० ३ । २ । ४४)

२. श्री शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हरा दिया था। इस पर मण्डन मिश्र की पत्नी कहने लगी, "मैं अपने पति की अर्धाङ्गिनी हूँ, जब तक तुम मुझे नहीं हराते तब तक हमारी हार नहीं हो सकती। मण्डन मिश्र की पत्नी ने शंकराचार्य से गृहस्थ सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। शंकराचार्य आजन्म ब्रह्मचारी थे, वे उन प्रश्नों का उत्तर कैसे दे सकते थे? इसलिए, उन्होंने तुरन्त ही एक मृत राजा के शरीर के साथ अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़कर उसे जिला दिया। इस शरीर के साथ उनकी आत्मा का छः मास तक संबन्ध रहा। फिर अपने शरीर से संबन्ध जोड़कर प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने मण्डन मिश्र की पत्नी को हराया।

उसके द्वारा गृहस्थ सम्बन्धी कुछ अनुभव प्राप्त करके वे पुनः अपने उसी शरीर में लौट आए और उसके बाद उन्होंने पुनः शास्त्रार्थ किया। यदि शरीर ही स्मृति का आधार हो और आत्मा की पृथक् सत्ता न मानी जाय तो मृत राजा के शरीर के द्वारा शंकराचार्य की आत्मा ने जो अनुभव प्राप्त किया उसकी उन्हें अपने शरीर द्वारा स्मृति नहीं होनी चाहिये। इसलिए, अनुभव और स्मरण करने वाली कोई वस्तु इस शरीर से अतिरिक्त होनी चाहिये जो उस अनुभव और स्मृति दोनों का आधार हो।

(६) चार्वाकों की यह युक्ति कि 'मैं जाता हूं' 'मैं गोरा हूं' इत्यादि वाक्यों में देहात्मवाद की प्रतीति होती है, बिल्कुल भ्रम-मूलक है। आत्मा की शरीर के साथ सामयिक अभेदोपाधि होने से ही यह प्रयोग होता है—अर्थात् आत्मा सामयिक तौर पर अपने आपको शरीर के साथ एक समझ लेता है।

बौद्धमत

इस मत के आधारभूत चार सिद्धान्त हैं:—

१. सब वस्तुएं क्षणिक अर्थात् निरन्तर परिवर्तनशील हैं।

२. सब दुःख ही दुःख है, संसार दुःख है, दुःख का स्थान है और दुःख का साधन है, आवागमन या जन्म मरण का चक्कर दुःखमय है, सत्यज्ञान अर्थात् संसार के स्वभाव के सम्बन्ध

में वास्तविक ज्ञान द्वारा ही दुःख की निवृत्ति हो सकती है। ३. संसार में सब वस्तुएं पृथक् पृथक् हैं, सामान्य या जाति की सत्ता नहीं है—अर्थात् अलग अलग गउएं तो हैं, किन्तु उनमें 'गऊपन' नामक कोई ऐसा एक [1]सामान्य धर्म नहीं है, जिस के कारण ही सब गउएं गऊ कहलाती हैं। ४. सब शून्य है, सम्पूर्ण जगत् का आधार रूप कोई स्थिर सत्ता नहीं है। जिस प्रकार स्वप्न में दिखाई देने वाले पदार्थ वास्तविक सत्ता नहीं रखते, निराधार होते हैं, इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के पदार्थ भी अवास्तविक निराधार हैं, अपने अन्दर हमें जिस चेतनता का अनुभव होता है उसका भी कोई स्थिर आधार नहीं है, अर्थात् आत्मा नहीं है। इस प्रकार बौद्धों के सिद्धान्तानुसार क्षणिक विज्ञानधारा के अतिरिक्त आत्मा की कोई सत्ता नहीं।

---

१. दो गौओं में समानता का निर्देश भी इस प्रकार किया जा सकता है कि 'यह गऊ इस गऊ जैसी है'। पर यह निर्देश तभी हो सकता है जब कि इस समानता का ज्ञान रखने वाला ज्ञाता कम से कम दो क्षणों तक तक तो रहे। पर बौद्धों के यहां प्रत्येक पदार्थ के क्षणिक होने से ज्ञाता भी क्षणिक है। अतः इस सामान्य धर्म को कहा ही नहीं जा सकता।

बौद्धों का आत्म विषयक यह सिद्धान्त ठीक नहीं प्रतीत होता। इसके खण्डन के लिए हम जैन दर्शन में प्रदर्शित निम्न श्लोक उद्धृत करते हैं—

'कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषात्
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो महासाहसिकः परोऽसौ॥

(वी० स्तु० १८)

१. कृतप्रणाश—यदि क्षणिक विज्ञान को ही आत्मा माना जाय तो जिस क्षणिक विज्ञान ने कर्म किया है, उसका तो अगले क्षण में नाश हो जायगा। उसके विनाश के साथ कर्म का भी विनाश होने से वह अपने कर्म का फल नहीं भोग सकेगा, जो कि उचित नहीं प्रतीत होता।

२. अकृतकर्मभोग—जिस क्षणिक विज्ञान को फल मिलेगा वह उसके अपने किये कर्म का फल नहीं होगा। यह अव्यवस्था भी स्वीकार्य नहीं है।

३. भवभङ्ग—संसार सदा अपने पूर्वजन्म में किए कर्मों के अनुसार ही होता है। पर यदि क्षणिक विज्ञान को ही आत्मा माना जाय तो पूर्वजन्म और इस जन्म तक स्थायी आत्मा के न होने से संसार भी समझ में नहीं आ सकता।

४. प्रमोक्षभङ्ग—कर्मों के बन्धन से छूटने का ही नाम मोक्ष है। यदि आत्मा को क्षणिक माना जाय तो यह मोक्ष भी समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि आत्मा के स्थिर न होने से कौन मर कर सुखी होने का प्रयत्न करेगा?

५. स्मृतिभङ्ग—स्मृति सदा अनुभूत किए पदार्थ की होती है। पर यदि आत्मा क्षणिक होगा तो अनुभव करने वाला तो क्षणिक है, स्मृति किसे होगी। दूसरे की देखी बात को दूसरा तो स्मरण कर ही नहीं सकता।

इस प्रकार के अन्य कतिपय दोष भी बौद्धों के आत्मवाद पर आ सकते हैं। जिनका विस्तार भय से यहां लिखना उचित प्रतीत नहीं होता।

जैन दर्शन

इसके अनुसार आत्मा कर्मफल का भोक्ता है, इस लिए वह नित्य है। आत्मा बोध स्वरूप है, अर्थात् बोध या चेतनता ही आत्मा है। आत्मा जिस शरीर में होता है, वह उसी के परिमाण वाला होजाता है। बचपन से जवानी में तथा एक योनि से दूसरी योनि में जाने पर शरीर के साथ-साथ आत्मा का परिमाण भी घटता बढ़ता रहता है। आत्मा तीन प्रकार के होते हैं। १. बद्ध आत्मा—ये संसार में कर्म करते हैं और कर्म्मफल द्वारा संसार-चक्र में बंधे हुए हैं। २. मुक्त आत्मा—ये संसार चक्र से अर्थात् आवागमन से मुक्त हो गये हैं। ३. नित्य-सिद्ध आत्मा, ये सदैव मुक्त हैं। कई दार्शनिक केवल पहले दो प्रकारों को ही मानते हैं। आत्मा का परिमाण न अणु या बहुत छोटा है और न विभु अर्थात् अत्यन्त बड़ा और सर्वत्र व्यापक है। यदि वह विभु हो तो

उसे सब स्थानों का इकट्ठा ज्ञान होना चाहिए। यदि अणु हो तो एक समय में सारे शरीर का अनुभव नहीं हो सकता, एक समय में शरीर के एक छोटे से भाग का ही अनुभव होना चाहिए। स्नान करते हुए सारा शरीर आनन्दित होता है, यह न होना चाहिए, परन्तु ऐसा होता है। इससे प्रतीत होता है कि आत्मा का परिमाण अणु नहीं है। विभु परिमाण में भी दोष है। इस लिए, मध्यम परिमाण सब से अधिक युक्ति-युक्त है। सम्यग्दर्शन (श्रद्धा), सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य (चरित्र शुद्धि) ये तीनों इकट्ठे मिलकर मोक्ष के साधन हैं। संसार में दो प्रकार के आत्मा पाए जाते हैं, जड़ जगत् में जो आत्मा हैं उन के साथ मन नहीं है, चेतन जगत् के आत्माओं के साथ मन है। चेतन जगत् के भी उन आत्माओं के साथ मन हैं जो दूसरों के उपदेश को ग्रहण कर सकते हैं। कई विचारकों की सम्मति है कि इन्द्रिय-जन्य ज्ञान का ज्ञाता ही आत्मा है, जड़ वस्तुओं में क्योंकि इन्द्रिय-जन्य ज्ञान नहीं होता इसलिए आत्मा भी नहीं होता। ईश्वर सृष्टि कर्ता नहीं, संसार नित्य है। कर्मफल भोगने के लिए आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाते रहते हैं अर्थात् पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। आत्मा को कर्मफल भोगने के लिए बाधित करने को ईश्वर की आवश्यकता नहीं, कर्म स्वयं पर्याप्त है।

जैन दर्शन की आलोचना

अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों ने जैनियों के इन सिद्धान्तों की आलोचना इस प्रकार की है— यदि आत्मा का परिमाण शरीर के परिमाण के साथ २ परिवर्तित होता हो तो यह प्रतिक्षण बदलता रहे क्योंकि शरीर प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। परिवर्तनशील होने से आत्मा नित्य नहीं हो सकता। बदलने वाली चीज़ थोड़े ही समय में वह नहीं रहती जो पहले थी, तब वह नित्य कैसे हो सकती है ? नित्यता और परिवर्तनशीलता परस्पर विरुद्ध हैं। परन्तु जैनी लोग आत्मा को नित्य मानते हैं।

सप्त भंगी न्याय

'सप्तभङ्गी न्याय' जैन दर्शन का एक विशेष सिद्धान्त है। इस के अनुसार प्रत्येक वस्तु के विषय में सात बातें कही जा सकती हैं। (१) कथञ्चित् (एक दृष्टि से) है। (२) कथञ्चित् नहीं है। (३) कथञ्चित् है, और नहीं है। (४) कथञ्चित् यह अवक्तव्य है, अर्थात् इस के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। (५) कथञ्चित् यह है तो परन्तु अवक्तव्य है। (६) कथञ्चित् यह नहीं है और अवक्तव्य है। (७) कथञ्चित् यह है, कथञ्चित् नहीं है, और अवक्तव्य है[1]।

---

१. स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्तिच, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति सप्तभङ्गी नयः।

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा के विषय में भी ये सातों बातें कही जा सकती हैं। परन्तु ये आपस में एक दूसरे का विरोध कर देती हैं। एक ही पदार्थ के विषय में कैसे कहा जा सकता है कि यह है भी और नहीं भी। इसीलिये, शंकराचार्य ने जैनों के नित्य सिद्ध आत्मा के विषय में आपत्ति की है कि कथञ्चित् यह आत्मा भी नित्य सिद्ध है, और कथञ्चित् नित्य सिद्ध नहीं है। स्वयं जैन लोग भी आत्मा की नित्यता तथा उसके अन्य गुणों के सम्बन्ध में अनेक बातें कहते हैं। वे कहते हैं कि इस का मध्यम परिमाण है यह नित्य है, पुनर्जन्म में जाता है इत्यादि। ऐसी अवस्था में यह अवक्तव्य (जिसके विषय में कुछ न कहा जा सके) कैसे हो सकता है ?

आत्मा का परिमाण

आत्मा शरीर के अनुसार परिमाण धारण करता है- यह भी माना नहीं जा सकता। शङ्कराचार्य इस विषय में निम्न युक्तियां देते हैं— एक ही आत्मा कभी हाथी के शरीर जितना विशाल और कभी चींटी के शरीर जितना छोटा कैसे हो सकता हैं ? यदि यह कहा जाए कि आत्मा के अनन्त भाग हैं तो ये अनन्त भाग एक ही स्थान में रह सकते हैं या नहीं ? यदि ये एक ही स्थान में रह सकते हैं तब तो आत्मा का परिमाण अत्यन्त छोटा अर्थात् अणु ही हो सकता है, परन्तु जैन-सिद्धान्त में आत्मा का परिमाण मध्यम अर्थात् शरीर

के बराबर है, अणु या विभु नहीं । यदि अनन्त भाग एक स्थान में नहीं रह सकते तो आत्मा का परिमाण घट नहीं सकता और इस अवस्था में बड़े शरीर का आत्मा छोटे शरीर में नहीं जा सकता। यदि कहा जाए कि समग्र आत्मा शरीर में प्रविष्ट नहीं होता, अपितु शरीर के बराबर ही आत्मा का भाग शरीर में प्रविष्ट होता है, तब आत्मा सावयव हो जाएगा। इस अवस्था में वह नित्य नहीं हो सकता । और अपने सब भागों में एक जैसा भी नहीं हो सकता। जैसे शरीर के अवयव परस्पर भिन्न होते हैं ऐसे ही आत्मा के भी होंगे। आत्मा यदि नित्य न हो तो उसकी मुक्ति का भी कोई अर्थ नहीं। एक तरफ़ तो जैन-सिद्धान्त आत्मा को नित्य मानता है और दूसरी तरफ़ वह यह भी कहता है कि छोटे शरीर में आत्मा के कुछ अवयव बाहिर चले जाते हैं और बड़े शरीर में वे फिर अन्दर आजाते हैं। यदि आत्मा नित्य है तो कम से कम आने जाने वाले अवयव आत्मा नहीं होंगे, वे शरीर की तरह ही अनात्मा होंगे । परिणामतः यही स्वीकार करना होगा कि उन आने जाने वाले (आगमापाय-धर्म वाले) अवयवों से अतिरिक्त कोई अवयव ही आत्मा है। जैन सिद्धान्त उस एक अवयव आत्मा के विषय में कुछ नहीं बता सकता कि वह क्या है ? इसका अर्थ यह है कि उसका स्वरूप नहीं जाना जा सकता। इस प्रकार आत्मस्वरूप का ज्ञान न होने से मोक्षप्राप्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि आत्मा के स्वरूप का ज्ञान ही तो मोक्ष का कारण है ।

एक और प्रश्न यह है कि छोटे शरीर में से आत्मा के अवयव निकल कर कहां विलीन हो जाते हैं ? और बड़े शरीर में पुनः कहां से निकल कर आते हैं ? यह तो कहा नहीं जा सकता कि वे आत्मा के अवयव बाह्य भूतों से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं में विलीन होजाते हैं। क्योंकि आत्मा तो अभौतिक पदार्थ है, जैन सिद्धान्त भी ऐसा ही स्वीकार करता है। परिणामतः आत्मा के अवयवों की उत्पत्ति भी भूतों से नहीं होती और लय भी भूतों में नहीं होता। और प्रत्येक आत्मा का कोई अपना असाधारण या सर्वसाधारण आधार है नहीं जहां से उसके अवयव उत्पन्न होते हैं या जहां वह लीन हो जाते हैं।

जैन सिद्धान्त के अनुसार जिस शरीर से आत्मा मुक्त होता है उस अन्तिम शरीर का परिमाण ही आत्मा का नित्य परिमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि पहिले के शरीरों में भी आत्मा इसी परिमाण को लेकर रहता था, क्योंकि यह उसका नित्य परिमाण है। यदि आत्मा का परिमाण शरीर के बराबर ही हो तो इसका अर्थ यह है कि मुक्त होने तक आत्मा ने जितने शरीरों को धारण किया है उन सब का एक ही परिमाण होगा। यह शायद जैन सिद्धान्त को अभीष्ट न हो। यदि यह कहें कि मुक्तावस्था का जीव का परिमाण कोई सा एक होना चाहिए, तो वह परिमाण अणु होगा या विभु होगा।

अतः यह सिद्धान्त सत्य नहीं होगा कि आत्मा का वही परिमाण होता है जो शरीर का होता है।

विशिष्टाद्वैत

विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज थे। इनके अनुसार संसार की अन्तिम सत्ता एक भी है और अनेक भी। जगत् ईश्वर से भिन्न भी है और अभिन्न भी। इसीलिए इसे 'विशिष्टाद्वैत'[1] कहते हैं। संसार की अन्तिम सत्ता ईश्वर है, परन्तु यह ईश्वर शाङ्कर-वेदान्त के ब्रह्म के समान निर्गुण नहीं है। इस ईश्वर में भिन्नता भी है। यह भिन्नता आत्मा और प्रकृति के रूप में है। आत्मा और प्रकृति का ईश्वर से वही सम्बन्ध है जो गुणों का गुणी या द्रव्य (Substance) से होता है। आत्मा और प्रकृति 'प्रकार[2]' मात्र हैं तथा 'नियाम्य' हैं। ईश्वर प्रकारी अर्थात् प्रकारों वाला और नियन्ता है। आत्मा और प्रकृति नित्य तथा वास्तविक हैं, यद्यपि इनकी सत्ता ईश्वर के आधीन है। ईश्वर का जीवात्माओं और प्रकृति से वही सम्बन्ध है जो सम्बन्ध किसी व्यक्ति के आत्मा का अपने शरीर से होता है। जैसे शरीर की सत्ता आत्मा से अतिरिक्त नहीं हो सकती और शरीर की गतियां आत्मा की इच्छा के आधीन होती हैं, ऐसे ही

---

१. Qualified Monism.

२. Modes

जगत् अर्थात् जीवात्माओं और प्रकृति की सत्ता ईश्वर से स्वतन्त्र नहीं हो सकती; जगत् सर्वथा ईश्वर के आधीन है। जीवात्मा ईश्वर का अन्तरीय शरीर और प्रकृति बाह्य शरीर है। जीव और प्रकृति ईश्वर के गुण हैं, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वे स्वयं द्रव्य ही नहीं हैं। जैसे व्यक्ति का शरीर आत्मा पर आश्रित होते हुए भी एक पृथक् द्रव्य है, इसी प्रकार जीव और प्रकृति ईश्वर पर आश्रित होते हुए भी स्वयं द्रव्य हैं जिनके अपने विशेष गुण हैं। जीव और प्रकृति के लिए 'गुण' शब्द का व्यवहार ईश्वर पर आश्रित होने की ही दृष्टि से है। रूपादि को भी तो इसीलिए गुण कहा जाता है क्योंकि वे द्रव्य पर आश्रित होते हैं। ईश्वर जीव और प्रकृति अपने स्वाभाविक भेदों के कारण भिन्न हैं, और अभिन्न इसलिये हैं क्योंकि उनकी एक दूसरे से पृथक् होकर सत्ता सम्भव नहीं।

जीव चेतन, निरवयव, अपरिवर्तनशील और इन्द्रियों से अगोचर तथा अणु है। निद्रा में भी चेतनता का भङ्ग नहीं होता। जीव यद्यपि अणु है तथापि सारे शरीर में सुख दुःख का अनुभव कर सकता है। जिस प्रकार दीपक की छोटी सी ज्वाला बहुत सी चीजों को प्रकाशित कर सकती है, और उसका प्रकाश फैल तथा सिकुड़ सकता है, उसी प्रकार अणु जीव अपने से दूर की चीजों को भी अनुभव करता है। इसका ज्ञान फैल और सिकुड़ सकता है। इस ज्ञान के फैलने और सिकुड़ने की दृष्टि से ही ज्ञान की उत्पत्ति और विनाश का

प्रयोग हो जाता है। जीवत्मा का ज्ञान वस्तुतः नित्य और सर्व-विषयक है, परन्तु भूतकाल के कर्मों आदि से परिमित हो जाता है। जीवात्मा का अपने ज्ञान के साथ वही सम्बन्ध है जो किसी भी तैजस पदार्थ का अपनी 'प्रभा' से सम्बन्ध होता है। तैजस पदार्थ तेजःस्वरूप (प्रभास्वरूप) होता हुआ भी प्रभावान् है। प्रभा उसका ऐसा गुण नहीं है जैसा कि किसी पदार्थ का गुण 'रूप' होता है। प्रभा भी एक द्रव्य है। यदि तैजस पदार्थ सूर्य में रहने वाली 'प्रभा' द्रव्य न होती, अपितु नैयायिक के अर्थों में गुण होती तो अपने आश्रय सूर्य को छोड़कर दूर तक कैसे जाती, क्योंकि गुण गुणी को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता ? यह कल्पना तो बहुत क्लिष्ट है कि सूर्य या दीपक के अवयव ही टूट २ कर दूर २ तक जाते हैं। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानस्वरूप होता हुआ ज्ञानवान् भी है। अर्थात् स्वरूपभूत ज्ञान और गुणभूत ज्ञान में भेद है। ज्ञान में गुण शब्द का व्यवहार तो केवल आत्मा पर आश्रित होने की दृष्टि से है। संसार में बहुत से आत्माओं के होने का प्रमाण यह है कि विविध व्यक्तियों के सुख दुःख भिन्न २ होते हैं। मुक्ति होने से पहिले तक जीव प्रकृति के बन्धन में होता है, तब प्रकृति इसका वाहन होती है, जैसे सवार का वाहन घोड़ा। प्राकृतिक बन्धन के कारण आत्मा को परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता। जब तक मुक्ति नहीं हो जाती, यह जन्म मरण के चक्कर में से गुजरता है, और अपने

पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार अगले अगले जन्म धारण करता रहता है। जन्म मरण के इस चक्कर में रहते हुए भी आत्मा के वास्तविक स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं होता। प्रलयकाल में भी आत्मा नष्ट नहीं होता, पुनः सृष्टि होने पर अपने कर्मों के अनुसार फिर जन्म लेता है।

जीव तीन प्रकार के हैं— १. नित्य—इनके शरीर और कर्म होते ही नहीं, ये सदा बैकुण्ठ में रहते हैं। २. मुक्त—इन्होंने ज्ञान और भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त करली है। ३. बद्ध—ये अज्ञान और स्वार्थ के कारण संसारचक्र में फंसे हुए हैं।

विशिष्टाद्वैत की आलोचना

रामानुजाचार्य के दर्शन में सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें ब्रह्म और संसार की एकता तथा अनेकता दोनों मानी जाती हैं। अनन्त जीव जो एक दूसरे से पृथक् हैं, प्रकृति और उससे बनी हुई वस्तुएं जो जीवों से भिन्न हैं, तथा ब्रह्म जो जीवों और प्रकृति से भिन्न है— ये तीनों मिलकर एक कैसे हो सकते हैं ? किसी व्यक्ति के शरीर और आत्मा के घनिष्ट सम्बन्ध के होते हुए भी उन्हें एक नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, संसार और ईश्वर भी—जिनका सम्बन्ध विशिष्टाद्वैत के अनुसार शरीर और शरीरी का है–एक कैसे कहे जा सकते हैं ? जो वस्तुएं स्वयं द्रव्य हैं और जिनके अपने गुण हैं, उन्हें किसी अन्य पदार्थ का गुण कैसे कहा जा सकता है ?

यदि जीव और प्रकृति ईश्वर के अन्तर्गत गुण हैं तो वे स्वयं अपने आप में द्रव्य नहीं हो सकते।

पाशुपत दर्शन

यह भी अनेक वैयक्तिक आत्माओं को मानता है। इस दर्शन में आत्मा को 'पशु' कहा जाता है और परमात्मा पशुपति है। परमात्मा जीवों के कर्मों के अनुसार संसार को नहीं बनाता। परन्तु कर्मों को फलने के लिए परमात्मा की सहायता की अपेक्षा होती है, जैसे बादलों को बरसने के लिए बीज की अपेक्षा नहीं होती, परन्तु बीज को अंकुरोत्पत्ति के लिए बादलों की सहायता की अपेक्षा होती है। जब आत्मा यथावत् तत्त्वों का ज्ञान कर लेता है तो परमात्मा के सदृश उसके भी गुण हो जाते हैं। अर्थात् परमैश्वर्य की प्राप्ति और दुःख का विनाश होता है। उस समय परमात्मा के साथ एकता हो जाती है। यही मोक्ष है।

शैव दर्शन

पाशुपत दर्शन पर शैव दर्शन का यह आक्षेप है कि यदि सृष्टि आत्माओं के कर्मों के अनुसार और उन्हें कर्मफल देने के लिए नहीं है तो जो विषमता प्राणियों में देखी जाती है उसके कारण परमात्मा पक्षपाती और अन्याय करने वाला सिद्ध होता है। शैव दर्शन के अनुसार तीन प्रकार की सत्ताएं

हैं— पति=परमात्मा, पशु=आत्मा, और पाश=संसार। शिव ही परमात्मा है। आत्मा अनेक हैं। आत्मा सब तरह से परमात्मा की आज्ञा का पालन करती हैं। आत्मा विभु है, जैन सिद्धान्त की तरह इसमें मध्यम परिमाण अर्थात् परिमित आकार नहीं है। बौद्धसिद्धान्त की तरह यह क्षणिक नहीं है। शाङ्कर वेदान्त की तरह यह परमात्मा से अभिन्न और सांख्य के सम्मत आत्मा की तरह यह निष्क्रिय तथा साक्षी-मात्र भी नहीं है। इस दर्शन के अनुसार आत्मा की तीन अवस्थाएं होती हैं—

१. प्रलयावस्था में आत्मा कर्म नहीं करती इसे 'प्रलयाकल' अवस्था कहते हैं।

२. सृष्टि-काल में आत्मा संसार में कर्म करती है यह 'सकल' अवस्था है।

३. परमात्मा का ज्ञान होने पर जब कर्म बन्द होजाता है तो उसे 'विज्ञानाकल' अवस्था कहते हैं।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन

आत्माओं को अनेक और विभु मानने में यह आपत्ति होती है कि अनेक सर्वव्यापक पदार्थ एक साथ कैसे रह सकते हैं? जब एक वस्तु सर्वत्र फैली हुई है तो दूसरी वस्तुएं उसके साथ कैसे रह सकती हैं? इसलिए प्रत्यभिज्ञा दर्शन मानता है कि केवल एक ही आत्मा है और वह शिव है। पृथक् पृथक वैयक्तिक आत्माओं की सत्ता नहीं है। एक ही आत्मा के

साथ अनेक मनों के संयोग होने के कारण वैयक्तिक आत्माओं की प्रतीति होती है। अज्ञान के कारण मनुष्य अपने आपको शिव या परमात्मा से अलग समझता है। ज्ञान होने पर मनुष्य का आत्मा पहचान लेता है कि मैं परमात्मा से अलग नहीं हूं। यथार्थ ज्ञान से आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा या पहचान होजाती है। इसी लिए इस दर्शन को 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' कहते हैं। जब तक आत्मा अपने अज्ञान के कारण संसार में है तब तक ज्ञान इच्छा आदि मानसिक गुण इस में बने रहते हैं।

रसेश्वर दर्शन

इस दर्शन का सम्बन्ध आयुर्वेद से है। इस का उद्देश्य किसी विशेष दार्शनिक सिद्धान्त का निरूपण करना नहीं है। इसके अनुसार शिव परमात्मा है, और पारद या पारा शिव का वीर्य है। पारद के सेवन से मनुष्य अमर हो सकता है।

रसेश्वर वादी यह कहते हैं कि शेष माहेश्वर अर्थात् पाशुपत, शैव तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुयायी तो यह मानते हैं कि मोक्षावस्था में जीव और परमात्मा एक हो जाते हैं, पर हमारे विचार में यह एकता भी सम्भव है और मनुष्य जीवित अवस्था में अर्थात् जब वह शरीर धारण किए रहता है तब भी जीवन्मुक्त हो सकता है। ये लोग जीवन्मुक्ति भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार यह दर्शन भी आत्मा की अलग सत्ता स्वीकार करता है।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन ईश्वर, अनेक आत्माओं, चार प्रकार के परमाणुओं, आकाश, काल तथा दिशा की सत्ता को स्वीकार करता है। सम्पूर्ण भौतिक जगत् पृथिवी, जल, वायु और अग्नि इन चार प्रकार के परमाणुओं से बना है। आकाश व्यापक है। परन्तु संसार के कुछ अंश ऐसे भी हैं जो इन परमाणुओं का परिणाम नहीं हैं— जैसे मनुष्य की चेतनता, ज्ञान इच्छा सुख दुःख आदि। इन गुणों का आधार आत्मा है। संसार में अनेक आत्माएं हैं, प्रत्येक प्राणी की अलग २ आत्मा है। आत्माओं से अतिरिक्त परमात्मा है जो आत्माओं को कर्मफल देता है। कर्मफल देने के लिए ही वह सृष्टि निर्माण और प्रलय करता है। यह सृष्टि आत्माओं के पूर्व-जन्मों के कर्मों के अनुकूल परमात्मा की इच्छा और शक्ति का परिणाम है।

आत्म-सिद्धि के लिए युक्तियां

आत्मा की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए न्याय-दर्शन निम्न लिखित युक्तियां देता है— मनुष्य के अन्दर स्थित चेतनता से इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, ज्ञान आदि का अनुभव होता रहता है। इस अनुभव का कोई आधार होना चाहिए; वह आधार आत्मा है। मनुष्य की चेतनता अपना आधार

स्वयं नहीं हो सकती क्योंकि इस की प्रत्येक अवस्था क्षणिक और परिवर्तनशील है। चेतनता की कोई दो अवस्थाएं एक जैसी नहीं होतीं, इन अस्थिर चेतनताओं का कोई स्थिर आधार होना चाहिए। यदि आधार भी ज्ञान, इच्छा आदि की तरह ही अस्थिर और परिवर्तनशील मान लिया जाए तो ऐसे आधार को मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

विविध इन्द्रियों से हमें भिन्न भिन्न गुणों का ज्ञान होता है—आंख से रूप का, त्वचा से स्पर्श का, इत्यादि। परन्तु किसी पदार्थ के ज्ञान में भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान इकट्ठा हो जाता है। जैसे, जिस घड़े को मैं आंख से देख रहा हूं उसे ही हाथ से छू रहा हूं। इस लिए, इन्द्रियों द्वारा प्राप्त इन ज्ञानों का संग्रह करने वाला कोई अतिरिक्त पदार्थ होना चाहिए। यह पदार्थ वही हो सकता है जो इन्द्रियों के पृथक् पृथक् ज्ञान का और सम्मिलित ज्ञान का भी आधार हो। मन भी यह कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि मन अपने आप एक इन्द्रिय है जो सुख दुःख आदि की चेतनताओं का साधन है। किसी वस्तु के ज्ञान में उससे उत्पन्न होने वाले सुख दुःख का ज्ञान भी सम्मिलित होता है। इसलिए विविध इन्द्रियों के इन ज्ञानों को मिलाने वाला मन नहीं हो सकता, यह आत्मा ही है। इसके अतिरिक्त, हम भिन्न भिन्न इन्द्रियों से आने वाले ज्ञानों की परस्पर तुलना

करते हैं। किसी चीज़ के रूप को उस के स्पर्श से सर्वथा भिन्न कहते हैं।

हम एक इन्द्रिय से उपलब्ध वस्तु को दूसरी इन्द्रिय से पहिचानते हैं। किसी संगमरमर की मेज़ को यदि हमने आंख द्वारा दूर से देखा है तो उसे हम अंधेरे में छूकर भी पहिचान लेते हैं और हमें निश्चय होजाता है कि यह वही मेज़ है। इस प्रकार की पहिचान तभी हो सकती है यदि सभी इन्द्रियों के ज्ञानों का ज्ञाता कोई एक ही हो।

स्मृति के लिए भी एक स्थिर आधार की आवश्यकता है। यदि अनुभव और स्मरण करने वाला एक ही न हो तो स्मृति कैसे हो सकती है? चेतनता इस प्रकार का स्थिर आधार नहीं हो सकती, क्योंकि जो चेतनता अनुभव काल में थी वह स्मरण काल में नहीं रहती। शरीर भी परिवर्तनशील होने से स्मृति का आधार नहीं हो सकता। इन्द्रियां भी स्मृति का आधार नहीं हो सकतीं क्योंकि उनके नष्ट होने पर भी उनके द्वारा प्राप्त अनुभव की स्मृति रहती है— जैसे यदि कोई व्यक्ति अपने यौवन काल में अन्धा होजाय तो भी यौवन काल तक आंख द्वारा प्राप्त अनुभवों की स्मृतियां बनी रहती हैं। जिस वस्तु से भूतकाल में हमें अरुचिकर अनुभव हुआ है उसके देखने या स्मरण करने पर अब भी अरुचि पैदा होती है। यह तभी सम्भव है यदि भूत और वर्तमान दोनों कालों का ज्ञाता एक ही हो। प्रयत्न के लिए भी

एक अपरिवर्तनशील स्थिर सत्ता की आवश्यकता है। एक आदमी फल को देखकर उसे तोड़ने का प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न तभी हो सकता है यदि उसे यह याद आजाय कि यह फल है और इसे तोड़ा जा सकता है इत्यादि। परन्तु याद आने के लिये आवश्यक है कि पहले अनुभव करने वाला और अब अनुभव करने वाला एक ही हो। यह एक, स्थिर, अनुभवकर्ता आत्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।

मनुष्य का शरीर प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। यदि इसमें निवास करने वाली कोई भी स्थिर सत्ता न हो तो कर्मफल का भोक्ता कौन हो सकता है? प्रशंसा और निन्दा किसकी की जा सकती है? जिसने कर्म किया था वह और है तथा जिसे फल मिलना है वह और है। आत्मा को न मानकर आगामी जन्मों में भी इस जन्म के कर्मों का फल नहीं मिल सकता, क्योंकि शरीर का नाश तो मृत्यु के समय प्रत्यक्ष ही है। आत्मा के अभाव में पुनर्जन्म का भी कोई अर्थ नहीं है।

हम किसी वस्तु को दोनों आंखों से देखते हैं तो वह दोनों से एक ही दिखाई देती है। यह तभी हो सकता है जब दोनों आंखों के ज्ञान को मिलाने वाला कोई एक पदार्थ हो। यह भी नहीं कहा जा सकता कि दोनों आंखें शारीरिक रचना की दृष्टि से वस्तुतः एक ही हैं, क्योंकि एक आंख के नष्ट होने पर भी दूसरी काम करती रहती है।

कभी कभी हम एक इन्द्रिय के ज्ञान से दूसरी इन्द्रिय को प्रभावित होती देखते हैं। उदाहरणार्थ, पके हुए आम को आंख देखती है तो जीभ से लार टपकने लगती है। यदि जीभ और आंख में सम्बन्ध जोड़ने वाला कोई एक पदार्थ हो तभी ऐसा होना सम्भव है। इस सम्बन्ध को जोड़ने वाला मन नहीं हो सकता। मन स्वयं एक साधन है जो सुख दुःख आदि आन्तरिक अवस्थाओं को अनुभव कराता है। इसके अतिरिक्त, आत्मा किसी इन्द्रिय द्वारा तभी ज्ञान प्राप्त कर सकती है, जब मन का इन्द्रिय के साथ संयोग हो। मन एक समय में एक ही इन्द्रिय के साथ संयुक्त हो सकता है इसलिये एक से अधिक इन्द्रियों के विषयों की ओर हमारा ध्यान एक समय में नहीं जा सकता। यही कारण है कि हमारा ध्यान कहीं स्थिर न होकर बदलता रहता है, और बहुत सी चीज़ों पर एक साथ नहीं ठहरता। इस प्रकार, मन इन्द्रियों के ज्ञानों को जोड़ने वाला नहीं हो सकता। यदि जोड़ने का कार्य मन ही करे तो कल्पना आदि मानसिक ज्ञानों तथा अन्य इन्द्रियों के ज्ञानों को जोड़ने वाला एक और पदार्थ मानना पड़ेगा। इसलिए, स्वीकार करना पड़ता है कि इन्द्रियों और मन से अतिरिक्त आत्मा की सत्ता है।

एक नवजात शिशु में भी सुख, दुःख, भय, शोक आदि के चिन्ह दिखाई देते हैं। इस जन्म में उसने ऐसे अनुभव प्राप्त नहीं किए जिनके परिणाम ये भाव हों। इसलिए, पूर्वजन्म

की घटनाओं की स्मृति ही इन भावों का कारण हो सकती है। पूर्वजन्म और उसकी स्मृति, दोनों के लिए एक स्थिर आत्मा का होना आवश्यक है। इसी प्रकार, बच्चा पैदा होते ही माता का स्तन चूसने लगता है, यह अभ्यास पूर्वजन्म का ही हो सकता है, यह भी नहीं कहा जा सकता कि बच्चा मां के स्तनों की ओर इसी तरह आकृष्ट होता है जिस तरह लोहा चुम्बक की ओर। यदि ऐसा ही हो तो यह समझ में नहीं आता कि बच्चा मां के स्तनों की ओर ही क्यों आकृष्ट होता है, शरीर के किसी अन्य भाग की ओर क्यों नहीं।

मनुष्यों में कुछ स्वाभाविक जन्मागत रुचियां और प्रवृत्तियां होती हैं। बाल्यकाल में ही वे ऐसी योग्यताएं प्रदर्शित करते हैं, जो इस जन्म के अभ्यास का परिणाम नहीं हो सकतीं। कई बच्चे जन्म से ही शान्त होते हैं, कई चञ्चल, कइयों को आरम्भ से ही गणित में रुचि होती है, कइयों को साहित्य में। इस प्रकार की जन्मागत विशेषताएं इस जन्म के अभ्यासों का परिणाम न होकर अवश्य किसी पूर्वजन्म के संस्कारों का परिणाम ही होनी चाहिएं।

प्रसिद्ध नैय्यायिक उद्योतकर के मतानुसार मनुष्य को आत्मा का अनुभव भी होता है। चेतना की प्रत्येक अवस्था में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का ज्ञान सम्मिलित होता है। 'मैं' रूप में जिस चीज़ का ज्ञान होता है वह आत्मा है। चेतनता की परिवर्तित होती हुई सब अवस्थाओं के विषय में अनुभव

होता रहता है कि ये मेरी हैं। यह आत्मा की स्थिरता का प्रमाण है।

मनुष्य किसी पदार्थ को जानना चाहता है, उस पदार्थ के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वह उस पर विचार करता है और उसे जान लेता है। जिसे जिज्ञासा हुई, जिसने विचार किया और जिसे ज्ञान हुआ, वह एक ही चीज़ है। इससे प्रतीत होता है कि चेतनता की भिन्न २ अवस्थाओं का आधार एक है। इसी प्रकार, हम किसी फूल को देखते हैं, उसकी ओर आकर्षित होते हैं, उसे लेने का प्रयत्न करते हैं, यहां भी भिन्न भिन्न मानसिक अवस्थाओं का आधार एक आत्मा है।

किसी मनुष्य की चेतनता दूसरे मनुष्य की चेतनता से मिल नहीं सकती। साधारण अवस्था में एक मनुष्य दूसरे के अनुभवों को अपना कभी नहीं समझ सकता। इसका क्या कारण है? केवल ज्ञान, सुख, दुःख आदि की दृष्टि से तो सब चेतनताएं एक जैसी हैं, इनमें भेद यही हो सकता है कि इनका विविध आत्माओं से सम्बन्ध हो।

प्रत्येक मनुष्य की पृथक् चेतनता आत्मा की सत्ता को प्रमाणित करती है क्योंकि यह शरीर का गुण नहीं है। यदि यह शरीर का गुण हो तो शरीर के प्रत्येक अंग में होनी चाहिए। ऐसी हालत में मनुष्य की चेतनता शरीर के भिन्न २ अंगों की चेतनता का समास होगी। इसके अतिरिक्त, यदि शरीर में

चेतनता हो तो परमाणुओं में भी होनी चाहिए, क्योंकि शरीर परमाणुओं से बना हुआ है और इसलिए वह परमाणुओं से बनी हुई अन्य चीज़ों में भी होनी चाहिए। यदि चेतनता शरीर का गुण हो तो कोई भी शरीर चेतनता से रिक्त न होना चाहिए, परन्तु हम देखते हैं कि मृत और मूर्छित शरीरों में चेतनता नहीं होती। शरीर के अन्य गुण—रूप आदि ऐसे हैं जो उससे कदापि पृथक् नहीं हो सकते, चेतनता को भी ऐसा ही होना चाहिए। यदि यह कहा जाय कि चेतनता शरीर का नित्य गुण नहीं तो शरीर में इसके उत्पन्न होने का कोई कारण होना चाहिए। यह कारण शरीर से अतिरिक्त ही हो सकता है। किसी आदमी के शरीर के गुणों—रूप गन्ध, स्पर्श आदि का अनुभव अन्य पुरुषों को भी होता है। यदि चेतनता शरीर का गुण हो तो उसका अनुभव भी सबको होना चाहिए परन्तु एक की चेतनता का अनुभव दूसरे को होता दिखाई नहीं देता।

आत्मा इन्द्रियों से भी अलग है, वह सब इन्द्रियों के ज्ञान का ज्ञाता और उनके अनुभवों को संगृहीत रूप में देखने वाला है। न आंख शब्द को सुन सकती है, न कान रूप को देख सकता है। यदि आत्मा इन्द्रियों से अलग और उनसे ऊपर न हो तो इस प्रकार का अनुभव नहीं हो सकता कि मैं पहले जिस चीज़ का शब्द सुन चुका हूं उसे ही अब देख रहा हूं। इन्द्रियां शरीर के भाग हैं और भौतिक परमाणुओं से

बनी हुई हैं, इसलिए उन में चेतनता नहीं हो सकती। दृश्य वस्तु और इन्द्रिय दोनों के नष्ट होने पर भी यह ज्ञान रहता है कि मैंने इस वस्तु को देखा हुआ है, इसलिए इस ज्ञान का आधार इन्द्रिय नहीं हो सकती। मन को भी चेतनता का आधार नहीं कहा जा सकता। योगी पुरुषों को एक ही काल में अनेक प्रकार का ज्ञान होता रहता है और मन अणु है। मन द्वारा ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता, अतः ज्ञान का आधार मन से अतिरिक्त कुछ और होना चाहिए।

आत्मा का स्वरूप

आत्मा अवयवी नहीं, अवयवों से बना हुआ पदार्थ नित्य नहीं हो सकता। अवयवों का अलग अलग होजाना ही नाश है, अतः आत्मा, जो निरयव है, उसका नाश नहीं हो सकता, वह नित्य है। आत्मा का परिमाण विभु है। यदि इसे अणु माना जाय तो इसे सारे शरीर का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि आत्मा अणु अर्थात् अत्यन्त छोटी हो तो ज्ञान इच्छा इत्यादि इस के गुणों का भी अनुभव नहीं होना चाहिए। यदि इसका परिमाण मध्यम माना जाए तो प्रश्न होगा कि वह शरीर से छोटी है या बड़ी? यदि छोटी है तो सारे शरीर में व्याप्त नहीं हो सकती, यदि बड़ी है तो शरीर से बाहर रह जायगी। यदि इस का परिमाण शरीर जितना

हो तो शरीर के बढ़ने पर यह छोटी रह जाएगी। इसके अतिरिक्त विविध जन्मों में भिन्न भिन्न शरीर मिलने पर इसका परिमाण सब शरीरों के अनुकूल कैसे हो सकेगा? इसलिए आत्मा विभु है।

प्रत्येक व्यक्ति की एक अलग आत्मा है। संसार में आत्माओं की संख्या अनन्त है। यदि सब की आत्माएं अलग अलग न हों तो प्रत्येक मनुष्य को दूसरे के विचारों और मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान हो जाना चाहिए। एक आदमी को सुख या दुःख होने पर उसका अनुभव सब को होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता, इससे प्रतीत होता है कि सब में एक ही आत्मा नहीं है।

आत्मा अनेक जन्मों में से गुज़रती है। प्रत्येक जन्म में इसे पिछले कर्मों के अनुसार शरीर और मां-बाप मिलते हैं। मां-बाप को भी अपने पिछले कर्मों के अनुसार पुत्र प्राप्त होता है। जब इच्छा के अभाव में प्रयत्न नहीं रहता और प्रयत्न के न रहने से कर्म नहीं होता और पूर्व जन्म के संस्कार समाप्त हो जाते हैं—दूसरे शब्दों में, जब आत्मा अपने सब कर्मों का फल भोग चुकती है, और आगे कर्म नहीं करती या किसी अन्य उपाय से उसके कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं, तब आत्मा की मुक्ति हो जाती है। मुक्तावस्था में सुख नहीं होता परन्तु दुःख का आत्यन्तिक अभाव होता है। इस अवस्था में ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा आदि किसी प्रकार की चेतनता

नहीं रहती। यह एक गाढ़ निद्रा की सी अवस्था होती है जो एक बार प्राप्त होजाने पर सदा बनी रहती है। इस प्रकार, चेतनता आत्मा का नित्य गुण नहीं है। आत्मा वस्तुतः स्वरूप से अचेतन है यद्यपि वह चेतनता का कारण है। चेतनता भी आत्मा से अतिरिक्त कहीं नहीं रह सकती, जैसे ज्वाला का प्रकाश उस से अलग नहीं रह सकता।

वैशेषिक दर्शन

आत्मा के संबन्ध में वैशेषिक दर्शन के लगभग वे ही सिद्धान्त हैं जो न्याय के हैं। आत्मा की सिद्धि के लिए भी प्रायः वे ही युक्तियां हैं। चेतनता का आधार शरीर मन या इन्द्रियां नहीं हो सकतीं। इसलिये, इन से अतिरिक्त किसी चीज़ अर्थात् आत्मा की सत्ता होनी चाहिये। सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न, मनन आदि के अतिरिक्त श्वास-प्रश्वास, आंखों के निमेषोन्मेष, शरीर के घावों का भरना तथा मन और इन्द्रियों की क्रियाएं भी आत्मा के अस्तित्व में प्रमाण हैं। हम अपनी इच्छा के अनुसार श्वास को घटा बढ़ा सकते हैं। पलकों की गतियां भी कुछ अंश में हमारी इच्छा के आधीन हैं। इन्द्रियों से सम्बद्ध होने के लिए आत्मा से प्रेरित किया हुआ मन भी इसी तरह आत्मा के आधीन है जैसे बच्चे के आधीन उसके खेलने की गोलियां। स्मृति तथा भिन्न २

इन्द्रियों के ज्ञानों का मिल जाना भी आत्मा की सत्ता को प्रमाणित करता है।

जब हम कहते हैं कि "मैं सुखी हूं" तो हमारा अभिप्राय शरीर या इन्द्रियों से नहीं होता। यदि 'मैं' शब्द का प्रयोग शरीर और इन्द्रियों के लिए होता तो यह प्रयोग सब शरीरों और इन्द्रियों के लिए हो सकना चाहिए था, जिस प्रकार अपने शरीर और इन्द्रियों को 'मेरा' कह सकते हैं उसी प्रकार दूसरों के शरीर तथा इन्द्रियों को भी 'मेरा' कह सकना चाहिए था। परन्तु अपने ही शरीर तथा इन्द्रियों के लिए 'मेरा' शब्द प्रयुक्त होता है। इसलिए, 'मैं' शब्द शरीर, इन्द्रियों या उनके किसी गुण के लिए नहीं हो सकता क्योंकि शरीर तथा इन्द्रियां सब मनुष्यों की समान हैं।

किसी वस्तु का गुण उस सारी वस्तु में पाया जाता है, यदि पीड़ा आदि शरीर का गुण हो तो उसका अनुभव शरीर के किसी एक भाग में न होकर सारे शरीर में होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि पीड़ा शरीर का गुण हो तो वह शरीर में सदा रहनी चाहिए, गुण अपने गुणी में सदा रहते हैं। मनुष्य के उद्देश्य और आदर्श भी आत्मा को सिद्ध करते हैं क्योंकि ये शरीर में नहीं रह सकते

चेतनता आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है, प्रलय काल में आत्मा ज्ञान रहित हो जाती है, आत्मा का मन के साथ संयोग होने से उसमें चेतनता आती है। मन द्वारा

आत्मा न केवल बाह्य पदार्थों को ही, अपितु अपने गुणों को भी जानती है। यद्यपि आत्मा विभु है तो भी इसके ज्ञान इच्छा प्रयत्न आदि अपने शरीर की सीमाओं तक ही परिमित हैं। आत्मा अनेक हैं, प्रत्येक व्यक्ति की एक अलग आत्मा है। यदि ऐसा न होता तो सब मनुष्यों का स्वभाव एक जैसा होता। एक को सुख दुःख होने पर दूसरे को भी वे होते। प्रत्येक मनुष्य अपने ही कर्मों का फल भोगता है। इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा अनेक हैं। कर्मों के समाप्त होने पर आत्मा मुक्त हो जाती है। आत्माओं के मुक्त होने से संसार समाप्त होने की आशंका नहीं है क्योंकि आत्माओं की संख्या अनन्त है। प्रत्येक आत्मा दूसरी आत्माओं से कुछ विशेष है, परन्तु हम नहीं जानते कि यह विशेषता क्या है? क्रियात्मक दृष्टि से तो संसार में मनोभेद से आत्माओं में भेद होता है। मन जन्म जन्मान्तरों में भी अपनी विशेष आत्मा के साथ रहता है। मन के साथ रहने से मनुष्य का शील और स्वभाव भी साथ २ जाता है।

मीमांसा दर्शन

आत्मा के सम्बन्ध में मीमांसा दर्शन की युक्तियां न्याय और वैशेषिक से मिलती जुलती हैं। संसार में आत्मा अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पृथक् आत्मा है। वह शरीर, इन्द्रिय और चेतनता से भिन्न है। सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतनता आदि शरीर के गुण नहीं हो सकते। यदि शरीर के

गुण होते तो ये मृत शरीर में भी होने चाहिएं थे। किसी वस्तु के गुण या तो विरोधी गुणों के आजाने से नष्ट होते हैं जैसे सर्दी आने से गरमी, या उस वस्तु के स्वयं नष्ट होने से। मृत शरीर में इन दोनों विकल्पों में से कोई भी लागू नहीं होता। ऐसी अवस्था में यदि चेतनता शरीर का गुण हो तो वह मृत शरीर में भी होनी चाहिए।

इन्द्रियों के विषयों की स्मृति उन इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी रहती है, इससे प्रतीत होता है कि इस स्मृति का अधिष्ठान इन्द्रियों से अलग है। इन्द्रियों के ज्ञान को मिलाने के लिए भी आत्मा की आवश्यकता है। किसी व्यक्ति के शरीर के गुणों को दूसरे व्यक्ति अनुभव कर सकते हैं, किन्तु सुख, दुःख, चेतनता आदि ऐसे गुण हैं जिन्हें दूसरे व्यक्ति अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए, इन्हें शरीर से अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ का गुण मानना चाहिए। यह पदार्थ आत्मा ही हो सकती है।

किसी वस्तु के गुण उसके कारणों पर आश्रित होते हैं। शरीर परमाणुओं से बना है, जब परमाणुओं में चेतनता नहीं तो शरीर में वह कहां से आ सकती है ?

बौद्धों की तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि ज्ञान ही आत्मा है। गाढ़ निद्रा में ज्ञान नहीं रहता तब भी आत्मा रहती है। आत्मा के कारण ही निद्रा से पहले की और निद्रावस्था की स्मृति रह सकती है तथा मनुष्य नींद से उठने

पर यह कह सकता है कि आज मैं बहुत अच्छा सोया। यदि बौद्धों की तरह ज्ञान प्रवाह के अतिरिक्त इस प्रवाह का आधार कोई पदार्थ न माना जाए तो कर्मफल का अधिकारी कौन होगा ? बौद्ध कर्मफल के सिद्धान्त को तो मानते हैं परन्तु उनके मत में चेतनता अस्थायी और परिवर्तनशील है। यदि सूक्ष्म शरीर माना जाय तो भी काम नहीं चल सकता। शरीर के साथ चेतनता का गुण–गुणी-भाव सम्बन्ध समझ में नहीं आता। केवल चेतनता की एक निरन्तर धारा अथवा शृङ्खला मानने से स्मृति, इच्छा, सुख दुःख आदि की भी व्याख्या नहीं हो सकती। इनके लिए एक स्थिर आधार की ही आवश्यकता है।

आत्मा अणु नहीं हो सकती क्यों कि वह शरीर के भिन्न भिन्न भागों में परिवर्तनों को अनुभव करती है। वह विभु है और स्वर्ग-प्राप्ति से पहले पहले नाना शरीरों में अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेती रहती है। शरीर की क्रियाओं का कारण भी आत्मा ही है।

आत्मा अनेक हैं। यदि सब शरीरों में एक ही आत्मा हो तो सब के सुख दुःख एक समान होने चाहिएं। जिस प्रकार हमारे कार्यों का कारण हमारी आत्मा है, उसी प्रकार दूसरों के कार्यों का कारण दूसरों की आत्माएं होनी चाहिएं। यदि अनेक आत्मा न हों तो धर्माधर्म अर्थात् पाप पुण्य के भेद नहीं हो सकते।

वेदान्त दर्शन केवल एक ही आत्मा को मानता है और कहता है कि आत्माओं की अनेकता भ्रम-भूलक है। जैसे एक ही सूर्य अनेक पदार्थों में प्रतिक्षिप्त होकर अनेक, और विविध गुणों से युक्त प्रतीत होता है, ऐसे ही एक आत्मा भिन्न भिन्न शरीरों में प्रतिक्षिप्त होकर संख्या में अनेक और विविध गुणों वाली प्रतीत होती है। यदि इस उपमा को स्वीकार कर लिया जाए तो यह भी मानना पड़ेगा कि प्रतीयमान अनेकता और गुणों का वैविध्य प्रतिक्षेपक माध्यम अर्थात् शरीर के कारण है, आत्मा का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सुख दुःख आदि गुण आत्मा के ही हैं, शरीर के नहीं।

प्रभाकर मीमांसा दर्शन का एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ है। उसके अनुसार आत्मा का साक्षात् प्रत्यक्ष नहीं होता, प्रत्युत स्मृति और प्रत्यभिज्ञा से इसका अनुमान किया जा सकता है। आत्मा ज्ञान का ज्ञाता है। आत्मा विभु और नित्य है, परन्तु स्वभाव से चेतन नहीं। पूर्वजन्म के अनुसार-प्राप्त-शरीर में ही इसकी चेतनता सीमित है। आत्मा अनादि है अतः उस का नाश भी नहीं हो सकता। मुक्तावस्था में आत्मा को सुख दुःख नहीं होते, परन्तु सब वस्तुओं का एक साथ ज्ञान अवश्य होता है।

कुमारिल भट्ट के अनुसार आत्मा स्वभाव से चेतन है। ज्ञान में जो "मैं" की प्रतीति होती है, उससे आत्मा का

अनुमान किया जा सकता है। आत्मा का प्रत्यक्ष भी हो सकता है। उस प्रत्यक्ष के समय आत्मा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हो जाता है। इस पर यह आक्षेप नहीं हो सकता कि आत्मा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों कैसे हो सकता है, क्योंकि आत्मा का बोध ज्ञाता और द्रव्य आत्मा ज्ञेय होता है।

सांख्य और योग

इन दोनों के सिद्धान्तों में बहुत थोड़ा अन्तर है। आत्मा के सम्बन्ध में तो दोनों के सिद्धान्त प्रायः बिलकुल ही एक जैसे हैं। सांख्य के अनुसार संसार में पुरुष और प्रकृति ये दो प्रकार की सत्ताएं हैं। प्रकृति सत्व रज और तम इन तीनों तत्त्वों की समान अवस्था का नाम है। इन तीन तत्त्वों को गुण अर्थात् रस्सी भी कहते हैं, क्योंकि ये पुरुष रूपी पशु को बांधते हैं। भौतिक संसार की समस्त वस्तुएं प्रकृति का परिणाम हैं और प्रकृति के विकास से बनी हैं। परन्तु यह विकास तभी होता है जब प्रकृति पुरुष की दृष्टि के नीचे हो। पुरुष भ्रम से अपने आप को प्रकृतिमय शरीर के साथ एक समझ लेता है। जब तक उसे यह भ्रम रहता है तब तक वह आवागमन के चक्कर में—जन्म जन्मान्तरों—में घूमता है। भ्रम दूर होने पर जब उसे प्रकृति और शरीर से अपने पृथक् होने का ज्ञान हो जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है।

योग दर्शन का भी यही सिद्धान्त है। भेद केवल इतना है कि यह पुरुष और प्रकृति से अतिरिक्त परमेश्वर को भी मानता है। संसार के आदि में पुरुषों को वेद रूपी ज्ञान परमेश्वर ने दिया। परमेश्वर प्रकृति का विकास पुरुषों के हित के अनुसार करता है और पुरुषों को अपने उद्देश्य तक पहुं-चाने में सहायक होता है। सांख्य और योग के नाम क्रमशः निरीश्वर सांख्य और सेश्वर सांख्य भी हैं। विज्ञान भिक्षु की सम्मति है कि निरीश्वर सांख्य कोई नहीं है, सांख्य भी ईश्वर को मानता है।

सांख्य का आत्मा के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक जीवित वस्तु में एक अलग आत्मा या पुरुष है। सब आत्माएं स्वभाव से एक जैसी होती हैं, इन में अन्तर केवल शरीर-भेद के कारण है। आत्मा अविकारी तथा ज्ञान स्वरूप है। न्याय और वैशेषिक के अनुसार इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख आदि आत्मा के गुण हैं। परन्तु सांख्य इन्हें प्रकृति-जन्य बुद्धि के गुण मानता है। आत्मा स्वयं कर्ता या भोक्ता नहीं है, केवल चित है, साक्षी अकर्ता और निर्गुण है।

आत्मा की सिद्धि के लिए सांख्य में निम्नलिखित युक्तियां दी गई हैं—

भिन्न भिन्न अवयवों के योग से निर्मित पदार्थ किसी और के उपयोग के लिए होते हैं—जैसे बिस्तर, जो कि तन्तुओं के संघात अर्थात् मेल से बना हुआ है, मनुष्य के सोने के

लिए है। इसी प्रकार, पञ्चभूतों के संघात से बना हुआ संसार भी किसी और के प्रयोजन के लिए होना चाहिए, और शरीर भी जिस में बुद्धि आदि हैं किसी और के लिए होना चाहिए। ये सब जिसके लिए हैं वह आत्मा है। आत्मा भी अवयव-निर्मित हो तो वह भी किसी और के उपयोग के लिए होगी, और वह दूसरी भी फिर किसी और के लिए। इस प्रकार अनवस्था दोष हो जायगा। इस अनवस्था से बचने के लिए हमें एक सत्ता माननी पड़ती है जो अवयव निर्मित नहीं और जिस के प्रयोजन के लिए ही ये प्रकृति-जन्य अवयवी चीज़ें हैं। वही आत्मा है।

(२) सब ज्ञेय पदार्थ त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व रज और तम इन तीन तत्त्वों (गुणों) से बने हुए हैं। त्रिगुणात्मक पदार्थों का ज्ञाता उन से भिन्न अर्थात् अत्रिगुणात्मक या दूसरे शब्दों में प्रकृति से बना हुआ नहीं होना चाहिए। ऐसा ज्ञाता आत्मा ही संभव है।

(३) सब त्रिगुणात्मक पदार्थों को किसी नियन्ता या प्रेरक की आवश्यकता होती है। शरीर में स्थित अहंकार बुद्धि आदि त्रिगुणात्मक हैं, इनका कोई नियन्ता या प्रेरक होना चाहिए। यदि वह भी त्रिगुणात्मक हो तो उस का कोई और नियन्ता या प्रेरक होना चाहिए, और फिर उसका भी कोई और। इस प्रकार, अनवस्था दोष आजायेगा। अतः

अहंकार बुद्धि आदि का नियन्ता या प्रेरक अत्रिगुणात्मक मानना पड़ेगा, वह आत्मा ही हो सकती है।

(४) प्रकृति अचेतन है, इससे बने हुए पदार्थों का ज्ञाता इनसे भिन्न कोई पदार्थ होना चाहिए। सुख, दुःख और मोह अपना अनुभव स्वयं नहीं कर सकते। इनको अनुभव करने वाला इन से भिन्न होना चाहिए, यह पुरुष अर्थात् आत्मा ही है।

(५) शास्त्रों में मोक्ष-प्राप्ति का आदेश है, महर्षि लोग मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं, मोक्ष प्रकृति के बन्धन से मुक्त होने का नाम है, परन्तु प्रकृति का अपने ही बन्धन से मुक्त होने का तो कुछ अर्थ नहीं, इसलिए प्रकृति से अतिरिक्त कोई पदार्थ होना चाहिये जो प्रकृति के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा रखता है। इस प्रकार, मोक्ष की इच्छा आत्मा की सत्ता की सूचक है।

शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार आदि अचेतन हैं, इन से पुरुष भिन्न है। वह भिन्न भिन्न समयों के अनुभवों को मिलाता है। पुरुष नित्य हैं और संख्या में अनन्त हैं क्योंकि अनुभव से प्रतीत होता है कि प्रत्येक मनुष्य का शरीर, आचार और विचार भिन्न हैं। प्रत्येक मनुष्य संसार को अपने ही दृष्टि-कोण से देखता है, और प्रत्येक के आन्तरिक तथा बाह्य अनुभव भिन्न भिन्न होते हैं। इन भेदों का कारण प्रकृति नहीं हो सकती, इस लिए पुरुषों की अनेकता मानना आवश्यक

है। प्रत्येक मनुष्य की चेतनता एक होती है परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की चेतनताएं अलग अलग होती हैं, यह भी आत्माओं की अनेकता का प्रमाण है। यदि एक ही आत्मा हो तो किसी एक मनुष्य के मोक्ष प्राप्त करने पर सब मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त हो जाना चाहिए। यदि पुरुष या ज्ञाता एक ही हो तो यह कैसे हो सकता है कि एक स्वर्ग को जाए और एक नरक को? पुरुष या आत्मा प्रकृति से विपरीत है। प्रकृति एक है तो पुरुष अनेक होने चाहिएं।

पुरुष का परिमाण विभु है। यदि उसे मध्यम परिमाण का मानें तो वह अवयवी हो जायेगा, और अवयवी होने से वह नित्य और अविनाशी नहीं हो सकेगा। यदि वह अणु हो तो उसे अपने सारे शरीर का ज्ञान नहीं हो सकेगा।

सांख्य के अनुसार पुरुष निर्गुण हैं, यदि सुख, दुःख, इच्छादि इनके गुण होते तो ये सदा इन में रहते और इस प्रकार पुरुषों का मोक्ष कभी न हो सकता।

शाङ्कर वेदान्त

शङ्कर के वेदान्त के अनुसार, संसार में एक ही सत्ता है और वह ब्रह्म है। अनेक आत्माओं और नानारूप संसार की प्रतीति माया या अज्ञान के कारण होती है। यह प्रतीति यथार्थ नहीं मिथ्या है। संसार की केवल व्यावहारिक सत्ता है। भिन्न भिन्न मनों का होना भी माया का ही परिणाम है।

विविध जलों में प्रतिक्षिप्त होने से जैसे सूर्य अनेक प्रतीत होते हैं, ऐसे ही विविध मनों में ब्रह्म के प्रतिक्षिप्त होने से अनेक वैयक्तिक आत्माओं की प्रतीति होती है। जब ज्ञान प्राप्त होने पर माया का नाश हो जाता है, दूसरे शब्दों में व्यक्ति का मन नष्ट हो जाता है, तो वैयक्तिक आत्मा को ब्रह्म के साथ अपने अभेद का ज्ञान हो जाता है, यही मुक्ति है। विशुद्ध आत्मा निर्गुण, अपरिच्छिन्न (असीमित) और अखण्ड (निरवयव) है। व्यावहारिक दृष्टि से, जीवात्मा कर्म करती है और कर्मफल भोगने के लिए अनेक जन्मों में से गुज़रती है । व्यावहारिक अवस्था में आत्मा का स्वरूप चेतनता ही है। इस चेतनता में 'मैं वही हूं जो पहले था' इस प्रकार की एकता का अनुभव होता रहता है। इसे कर्मफल भी मिलता है। शङ्कराचार्य की दृष्टि में व्यावहारिक अवस्था में यह आत्मा की स्थिरता का प्रमाण है।

शङ्कराचार्य ने दूसरों के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये युक्ति और तर्क का आश्रय लिया है, परन्तु अपना सिद्धान्त, युक्ति से नहीं, श्रुति से ही पुष्ट किया है। उसके अनुसार, अद्वैतमत का ही श्रुति में प्रतिपादन है। इसलिए वही सत्य और प्रामाणिक है।

यहां हमारा प्रयोजन शङ्कराचार्य के केवल आत्मा-सम्बन्धी सिद्धान्तों से ही है। इसमें कई दोष दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, हमें अपने सम्बन्ध में इस प्रकार का अनुभव

नहीं होता कि मैं अनुभव या ज्ञान हूं, अपितु यह कि मैं अनुभवकर्ता या ज्ञाता हूं। दूसरा दोष यह है कि यदि एक ही अद्वितीय आत्मा हो तो सब मनुष्यों के विचार एक होने चाहिएं, एक के मुक्त होने पर सबको मुक्त हो जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, एक आत्मा अनेक कैसे प्रतीत हो सकती है ? यदि कहा जाय कि अज्ञान के कारण, तो यह अज्ञान कहां रहता है ? यदि ब्रह्म में रहता है तो ब्रह्म निर्दोष नहीं रहेगा। यदि ब्रह्म से अतिरिक्त है तो ब्रह्म अद्वैत नहीं रहेगा। यदि अज्ञान वैयक्तिक आत्मा में माना जाय तो अन्योन्याश्रय दोष आजाएगा, क्योंकि वेदान्त में वैयक्तिक आत्मा की सत्ता का आधार ही अज्ञान है। अज्ञान का आधार वैयक्तिक आत्मा और वैयक्तिक आत्मा का आधार अज्ञान, यह कहना ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि पृथिवी कछुए पर खड़ी है और कछुआ पृथ्वी पर।

नवां अध्याय

भारत से भिन्न देशों में आत्मवाद

पिछले अध्याय में हमने दिखाया है कि भारतवर्ष के दार्शनिक सम्प्रदायों में आत्मवाद का कितना व्यापक और महत्वपूर्ण स्थान है। अब हम इस अध्याय में यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि भारत से बाहर भी आत्मा का सिद्धान्त पर्याप्त रूप में प्रचलित रहा है।

मिश्र

संसार के इतिहास में हिन्दुओं के समान मिश्रवासियों की जाति भी बहुत पुरानी है। प्राचीन मिश्रवासी आत्मा को मानते थे। उनका विश्वास था कि आत्मा अमर है, जब कोई व्यक्ति मरता है तो उसकी आत्मा उसके शरीर से निकलकर किसी दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है जो उसे ग्रहण करने

के लिए तैयार हो। आत्मा पृथिवी, जल और वायु में रहने वाले प्राणियों के शरीरों में से गुज़रती है। यह चक्र तीन हज़ार वर्ष में पूरा होता है। इस चक्र को पूरा करने के बाद आत्मा फिर मनुष्य के शरीर में आती है।

मिश्र के लोगों का यह भी विश्वास था कि जब तक शरीर नष्ट न हो तब तक आत्मा का इससे सम्बन्ध रहता है। इसीलिए ये लोग आत्मा को पशु-योनि में जाने से रोकने के लिए मृत शरीर को विशेष प्रकार के मसाले लगाकर सुरक्षित रखते थे, इससे मृत शरीर हज़ारों वर्ष तक ख़राब न होता था।

कैल्डिया और फ़ारस

मेजाई लोग—कैल्डिया के प्राचीन निवासी आत्मा को मानते थे। प्राचीन फ़ारस के लोगों का भी आत्मा के अस्तित्व में विश्वास था। इनके पुरोहित मेजाई लोग जो कि रहस्यमय विद्याएं जानते थे, आत्मा के कई भाग मानते थे। वे कहते थे कि आत्मा के कुछ भाग तो शरीर के साथ नष्ट हो जाते हैं और शेष कई जन्मों में से गुज़र कर इतने शुद्ध हो जाते हैं कि उन्हें फिर जन्म लेने की आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्था में आकर आत्मा सदा के लिए अवर्णनीय आनन्द में मग्न रहती है। इस अवस्था को प्राप्त करने से पहले आत्मा अपने सब पूर्वजन्मों को देख सकती है, इनके परस्पर सम्बन्ध को

भी जान लेती है, और अनेक जन्मों के अपने विस्तृत अनुभव के द्वारा वह इस लोक में आने वाली आगामी सन्ततियों की सहायता भी कर सकती है।

चीन

लाउट्ज़े और च्वाङ्ट्ज़े—प्राचीन चीन निवासी आत्मवादी थे। प्रसिद्ध चीनी विचारक लाउट्ज़े और च्वाङ्ट्ज़े आत्मा की सत्ता में विश्वास रखते थे। आरम्भ में टॉइज़्म के अनुयायी भी आत्मा, पुनर्जन्म तथा कर्मफल इत्यादि सिद्धान्तों को मानते थे। कई चीनी दार्शनिक आत्मा के तीन विभाग मानते थे:—

(१) 'क्यूई'—यह पेट में रहता है और शरीर के साथ ही मर जाता है।

(२) 'लिङ्ग'—यह हृदय और छाती में रहता है, मृत्यु के पश्चात् कुछ काल तक रहकर नष्ट हो जाता है।

(३) 'ह्वून'—यह दिमाग़ में रहता है और मृत्यु के पश्चात् अनेक जन्मों में से गुज़रता है।

इंग्लैण्ड फ्रांस और जर्मनी

ड्रूइड लोग—इंग्लैण्ड फ्रांस और जर्मनी के प्रदेशों में भी प्राचीन काल में आत्मा और पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रचलित था। इन देशों में अध्यात्म विद्या के जानने वालों को ड्रूइड (Druid) कहते थे। ये ड्रूइड लोग आत्मा, अमरता तथा

पुनर्जन्म आदि में विश्वास रखते थे। इनमें यह प्रथा थी कि अपराधी को प्राणदण्ड देने से पूर्व पांच वर्ष का अवसर इसलिए दिया जाता था कि वह ज्ञान ध्यान द्वारा अगले जन्म की तैयारी करले, जिससे एक दूषित आत्मा नये जन्म में न चली जाए।

यूनान

पाइथेगोरस, सुक़रात, अफ़लातून—प्राचीन काल में यूनान में भी आत्मवाद का प्रचार था। आर्फ़िक[1] धर्म आत्मा और पुनर्जन्म को मानता था। एक यूनानी उपनिवेश का विख्यात दार्शनिक पाइथेगोरस आत्मा और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता था। उसे अपने पहले कई जन्मों के वृत्तान्त याद थे। यूनान का प्रसिद्ध विचारक सुकरात भी आत्मा और उसकी अमरता में और पुनर्जन्म में विश्वास रखता था। उसके दुश्मनों ने उस पर झूठे इलज़ाम लगाये। उसे प्राणदण्ड मिला और ज़हर का प्याला पीना पड़ा। उसे मरते देख उसके शिष्य रोते थे परन्तु उसे आत्मा की अमरता में इतना दृढ़ विश्वास था कि वह मृत्यु के समय तक सर्वथा शान्त था। वह अपने शिष्यों को आत्मा की अमरता की शिक्षा देता हुआ मरा। सुक़रात का शिष्य अफ़लातून भी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता था। वह मानता था कि आत्मा के तीन भाग हैं। पहला

---

१. Orphic Religion.

जिगर में है, इसमें वासनाएं और प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं। दूसरा छाती में है, इसमें बल उत्साह और शक्ति रहती हैं। तीसरा भाग दिमाग़ में है, इसमें बुद्धि निवास करती है। वस्तुतः यह तीसरा भाग ही आत्मा है, यही अमर है और यही अनेक जन्मों को धारण करता है। साधारणतया पूर्व-जन्मों का स्मरण नहीं होता, परन्तु कभी कभी पूर्वजन्मों की कुछ बातें याद आ भी जाती हैं। अफ़लातून का यह भी मन्तव्य था कि आत्मा में कुछ ऐसा ज्ञान भी है जो इस जन्म के अनुभव का परिणाम न होकर किसी पहले जन्म में और किसी दूसरे लोक[1] में प्राप्त किया हुआ होता है। इस ज्ञान की सहायता से आत्मा इस जन्म के अनुभव को यथार्थ रूप में समझती है। मृत्यु होने पर आत्मा शरीर से पृथक् होजाती है। जो आत्मा शुद्ध होती है वह परमानन्द की अवस्था में चली जाती है। उसका परमात्मा से मेल हो जाता है। अपवित्र आत्माओं का संशोधन होता है। मध्यम श्रेणी की आत्माओं को भावी जन्म परम्परा में डाल दिया जाता है जिससे वे फिर मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न शील हों।

आत्मा को अमर सिद्ध करने के लिए अफ़लातून ने बहुत सी युक्तियां दी हैं:—आत्मा स्वयं गतिशील है, इसलिए इसका आरम्भ और अन्त नहीं हो सकता—अर्थात् यह अमर

---

१. World of Ideas.

है। दूसरी युक्ति यह है कि कोई वस्तु अपनी आन्तरिक व्याधि से ही नष्ट हो सकती है। कोई बाह्य चीज़ भी उस वस्तु में आन्तरिक व्याधि उत्पन्न करके ही उसे नष्ट कर सकती है। उदाहरण के लिए, बुरा भोजन शरीर में अस्वस्थता उत्पन्न करने से ही उसे नष्ट कर सकता है। इसी प्रकार आत्मा भी यदि नष्ट हो सकती है तो असत्य, अन्याय, भीरुता, असंयम आदि अपनी आन्तरिक व्याधियों द्वारा ही नष्ट हो सकती है। कोई बाह्य वस्तु भी उसका नाश इस प्रकार की व्याधियां उत्पन्न कर के ही कर सकेगी। परन्तु हम जानते हैं कि आत्मा को असत्य, अन्याय आदि उसकी आन्तरिक व्याधियां नष्ट नहीं करतीं। यदि वे करतीं तो अपराधी की दूषित आत्मा स्वयं ही मर जाती और अपराधी को मारने के लिए जल्लाद की आवश्यकता न होती। आन्तरिक व्याधियों के अतिरिक्त कोई चीज़ आत्मा को मार ही नहीं सकती। इसप्रकार, आत्मा अमर है। अमर होने के कारण आत्माओं की संख्या न घट सकती है न बढ़ सकती है, क्योंकि अमर चीज़ों की वृद्धि नश्वर चीजों में से ही हो सकती है। परन्तु नश्वर चीज़ों का अमर बनना असम्भव है। आत्मा परिवर्तनशील भी नहीं है। अमर पदार्थ निरवयव होना चाहिये और निरवयव पदार्थ में परिवर्तन नहीं हो सकता। आत्मा जब दार्शनिक विचारों में मग्न होकर नित्य पदार्थों में विचरण कर रही होती है तब वह अपने विशुद्ध

रूप में विराजमान होती है। साधारण अवस्था में वह शरीर और संसार के सम्पर्क से दूषित रहती हैं।

स्टोइक सम्प्रदाय के लोग भी आत्मा की सत्ता को मानते थे। ये लोग अद्वैतवादी हैं। इनके अनुसार, मनुष्यों में अलग अलग आत्माएं है परन्तु ये आत्माएं परमात्मा की अंश हैं। ये आत्माएं अन्त में परमात्मा ही में विलीन हो जाती है।

प्लॉटिनस, पोरफ़री

अफ़लातून के अनुयायी प्लॉटिनस, पोरफ़री तथा इनके सम्प्रदाय (नव-प्लेटोवाद) के अन्य विचारक भी आत्मा और पुनर्जन्म को स्वीकार करते थे। इनके अनुसार परमात्मा और आत्मा का परस्पर वही संबन्ध है जो दीपक और प्रकाश का है। अन्त में आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

रोमन तथा यहूदी विचारक

प्राचीन रोम में सिसरो और ओविड जैसे विद्वानों का आत्मा और पुनर्जन्म में विश्वास था। पुराने यहूदी लोग भी प्रत्येक मनुष्य में शरीर से अतिरिक्त एक आत्मा मानते थे। यहूदियों की धर्मपुस्तक में आत्मा और पुनर्जन्म का वर्णन है। आत्मा परमात्मा से निकली हुई है। आत्मा अनेक जन्मों में से गुज़र कर उन्नति करती हुई अन्त में परमात्मा में

लीन हो जाती है। जब तक पूर्णतया इस योग्य नहीं हो जाती तब तक भिन्न भिन्न जन्मों में चक्कर काटती है और शुद्ध होती रहती है।

यहूदियों का 'ऐसीनीज़' (Essenes) सम्प्रदाय मिस्र के रहस्यमय सिद्धान्तों के साथ साथ पाइथेगोरस और अफ़लातून के सिद्धान्तों को भी मानता था। इस सम्प्रदाय ने यहूदियों में आत्मवाद और पुनर्जन्म का बहुत प्रचार किया। प्रारम्भिक ईसाइयत पर इनके विचारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

अरब-इस्लाम

इस्लाम से पहले अरब में आत्मा और पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रचलित था। इस्लाम पुनर्जन्म से इन्कार करता है, परन्तु आत्मा को मानता है। इस्लाम के अनुसार, आत्माओं को परमात्मा ने पैदा किया है और इस जन्म के कर्मों के अनुस.र उन्हें स्वर्ग अथवा नरक में भेजा जायगा जहां वे हमेशा के लिये रहेंगी। इस प्रकार, आत्मा अनादि तो नहीं, परन्तु अनन्त और अनश्वर अवश्य है।

ईसाइयत

ईसाई धर्म भी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। इसके अनुसार, आत्माओं को परमात्मा ने पैदा किया है। परन्तु अब एक बार पैदा होने के अनन्तर आत्मा नष्ट नहीं हो सकती।

यदि परमात्मा की इच्छा हो तो वह चमत्कार (Miracle) द्वारा आत्माओं को नष्ट भी कर सकता है। मृत्यु के पश्चात् आत्माएं अपने अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग अथवा नरक में भेज दी जाती हैं और फिर वे सदा के लिये वहीं रहती हैं। कहते हैं कि आरम्भ में ईसाइयत के कुछ गुप्त सिद्धान्त भी थे जो केवल विशेष अन्तरङ्ग व्यक्तियों को ही बताए जाते थे, साधारण जनता उनसे अपरिचित थी। उन गुप्त सिद्धान्तों में से एक पुनर्जन्म भी था—अर्थात् आत्मा मृत्यु के बाद किसी दूसरे मनुष्य के शरीर में जन्म धारण कर लेती है। ईसाइयों का ग्नॉस्टिक सम्प्रदाय (Gnosticism) इस सिद्धान्त को खुले तौर पर मानता था। औरिजिन, जस्टिन मार्टर, आगस्टाइन आदि ईसाइयत के आरम्भिक विचारक भी इस सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। जॉन दी बैप्टिस्ट के विषय में न केवल विद्वानों का अपितु सर्वसाधारण का भी यह विश्वास था कि वह पूर्वजन्म में 'इलियास' था।

ईसाई विचारकों का आत्म-विषयक मतभेद

आरम्भ में ईसाई विचारकों में आत्मा के स्वरूप के विषय में मतभेद था। टरटुलियन और हिलेरी आत्मा को भौतिक और प्राकृतिक मानते थे। इसके विरुद्ध, ग्रेगोरी ऑफ़ निस्सा, क्लॉडिएनस और सैमरटस इसे अभौतिक तथा आध्यात्मिक मानते थे। ग्रैगोरी ऑफ़ निस्सा कहा करता था कि

आत्मा शरीर के अन्तर्गत नहीं है, प्रत्युत शरीर आत्मा के अन्तर्गत है, क्योंकि आत्मा के कारण ही शरीर की एकता होती है और बनी रहती है। सबसे पहले सेण्ट ऑगस्टाइन ने ईसाइयत का आत्म-विषयक सिद्धान्त स्थिर किया। ऑगस्टाइन के बाद से उसी की युक्तियां दोहराई जाने लगीं। ऑगस्टाइन के अनुसार, आत्मा भौतिक और प्राकृतिक नहीं, प्रत्युत आध्यात्मिक और सूक्ष्म है, क्योंकि यह विचार प्रवाह का ज्ञाता है, और विचार अचेतन या जड़ भौतिक पदार्थ का गुण नहीं हो सकता। आत्मा को अपने अन्दर प्रयत्न, स्मृति, ज्ञान आदि आध्यात्मिक क्रियाओं का ही अनुभव होता है। यदि आत्मा भौतिक होता तो इसे अपने भौतिक गुणों का भी अनुभव होना चाहिये था। आत्मा में विचार करने की शक्ति है। शरीर का एक ही आकार होता है, यह किसी अन्य शरीर के आकार को धारण नहीं कर सकता। परन्तु आत्मा अपने आपको तथा अपने से अतिरिक्त दूसरों को जान सकता है और उनसे प्रेम भी कर सकता है। एवं आत्मा की क्रियाएं और गुण प्रकृति से भिन्न हैं।

विलियम ऑफ़ औवर्ग

तेरहवीं शताब्दी में विलियम आफ़ औवर्ग कहा करता था कि आत्मा की सत्ता से इन्कार करना आत्म-विरोध है। जो आत्मा की सत्ता से इन्कार करता है वह इन्कार करता हुआ

भी सोचता है क्योंकि इन्कार भी विचार है और विचार आत्मा की सत्ता का प्रमाण है, क्योंकि यदि विचार है तो कोई विचारक भी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, हमें अपने आत्मा का साक्षात् अनुभव भी होता है और दूसरों के आत्माओं का उनके शरीर की क्रियाओं द्वारा अनुमान किया जा सकता है। कल्पना करो कि एक मनुष्य वायु में स्थित है और उसका शरीर इस तरह ढका हुआ है कि वह अपनी किसी इन्द्रिय का प्रयोग नहीं कर सकता। यह सब कुछ होते हुए भी वह मनुष्य विचार करने में समर्थ होगा। यह बात आत्मा के शरीर से स्वतन्त्र होने का प्रमाण है।

फ़िसिनो, सीजेल्पीनस और डेकार्ट

युरोप में विद्या के पुनरुत्थान (Renaissance) के समय में फ़िसिनो और सीजेल्पीनस जैसे विचारक मानते थे कि विस्तार प्रकृति का और विचार आत्मा का आवश्यक गुण है। डेकार्ट का भी ऐसा ही विचार था। डेकार्ट आधुनिक दर्शन का सर्वप्रथम विचारक समझा जाता है। वह कहता था कि हम अन्य सब चीज़ों पर अविश्वास कर सकते हैं, परमात्मा संसार तथा अपने शरीर की सत्ता में सन्देह कर सकते हैं, परन्तु अपनी चेतनता अथवा विचार-प्रवाह में कदापि सन्देह नहीं कर सकते। सन्देह करते हुए भी कम से कम सन्देह की सत्ता तो अवश्य है, और सन्देह भी एक

प्रकार का विचार है। इस प्रकार, विचार की सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। विचार होता है, इसलिए विचारक की सत्ता होनी चाहिए। मैं विचार करता हूँ, इसलिये मेरी सत्ता है। यह 'मैं' एक ऐसी सत्ता है जो विचार करती है, युक्ति करती है, सन्देह करती है, विश्वास करती है तथा प्रेम और घृणा इत्यादि क्रियाएं करती है। यह सत्ता आत्मा है। इस प्रकार आत्मा की सत्ता को सिद्ध करके डेकार्टे उसके आधार पर परमात्मा तथा बाह्य जगत् की सत्ता को सिद्ध करता है। डेकार्टे के अनुसार, प्रत्येक मनुष्य की अलग आत्मा है, आत्मा का गुण विचार है। संसार की शेष वस्तुएं प्रकृति से बनी हैं। संसार का स्रष्टा और आधार परमात्मा है।

लीबनिज़

लीबनिज़ जर्मनी का एक प्रसिद्ध विचारक था। उसके अनुसार, संसार की सब भौतिक चीजें विस्तार रहित शक्ति-केन्द्रों (Monads) से बनी हैं। ये शक्ति-केन्द्र जड़ नहीं, अपितु चेतन हैं। इनकी चेतनता के अनेक दर्जे हैं। कई शक्ति-केन्द्रों की चेतनता अस्पष्ट है। ये मिल कर सब भौतिक चीजों को बनाते हैं। इस प्रकार, भौतिक पदार्थों में जो विस्तार दिखाई देता है, वह प्रतीति मात्र है। जिन शक्ति-परमाणुओं की चेतनता अच्छी तरह से स्पष्ट होती है वे आत्मा हैं, जिन आत्माओं में चेतनता और भी स्पष्ट है वे देवता (Spirits) हैं। दूसरे शब्दों

म यह कहा जा सकता है कि संसार आत्माओं से बना हुआ है। कई आत्माएं सुषुप्त सी अवस्था में हैं, और कई जाग्रत् अवस्था में। जाग्रत् अवस्था के भी कई दर्जे हैं। प्रत्येक जीवित पदार्थ में एक जाग्रत् आत्मा है। जाग्रत् आत्मा के अतिरिक्त इसमें कई सुषुप्त आत्माएं भी हैं। ये जीवित पदार्थ के शरीर को बनाती हैं।

जाग्रत् आत्माओं को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों म विभक्त किया जा सकता है:—क. वे जो बनस्पतियों में हैं, ख. वे जो जानवरों में हैं, ग. वे जो मनुष्यों और देवताओं में हैं। इस तीसरी श्रेणी की आत्माओं में ही आत्मज्ञान, त्रिकाल-सत्य और बुद्धि की शक्तिएं रहती हैं। ये अन्तिम शक्ति-परमाणु या आत्माएं एक दूसरे पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं, परन्तु इनमें से प्रत्येक का अपने आन्तरिक स्वभाव के अनुसार इस प्रकार विकास होता है मानो दूसरे सब शक्ति-परमाणु या आत्मा इस पर प्रभाव डाल रहे हों। इसका कारण यह है कि सब शक्ति-परमाणुओं या आत्माओं को परमात्मा ने उत्पन्न किया है और इनमें पहले से ही अनुकूलता स्थापित कर दी है जिस से प्रत्येक शक्ति केन्द्र किसी और से न प्रभावित होता हुआ भी अन्य सब के विकास को प्रतिक्षिप्त करता है। इसे पारिभाषिक तौर पर 'पूर्व व्यवस्थित अनुकूलता' (Pre-established Harmony) कहते

हैं। अन्तिम शक्ति-परमाणु या आत्माएं परमात्मा के अद्भुत चमत्कार के बिना नष्ट नहीं हो सकतीं।

लौक, बर्कले, ह्यूम, मिल

इंग्लैण्ड का दार्शनिक लौक लीबनिज का समकालीन था। इसके अनुसार भी मनुष्य के अन्दर एक चेतन ज्ञाता है जिसे आत्म-प्रेम, सुख, दुःख तथा अपनी एकता का अनुभव होता है, और जो चेतनता का आधार है। परन्तु लौक इस विषय में चुप है कि यह सत्ता भौतिक है या आध्यात्मिक। लौक के अनुयायी बर्कले और ह्यूम थे। बर्कले आत्मा को मानता था और इसे आध्यात्मिक समझता था, परन्तु ह्यूम केवल चेतना-प्रवाह को ही मानता था। ह्यूम के अनुसार, चेतनता की अवस्थाएं एक के बाद दूसरी प्रवाह रूप से आती जाती हैं। इनका कोई अधिष्ठान अथवा आधारभूत सत्ता नहीं है। भारतवर्ष के योगाचार बौद्धों का भी यही सिद्धान्त था। इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिल भी ऐसा ही मानता था, परन्तु उसे स्वयं इस सिद्धान्त को मानने में बड़ी कठिनाई अनुभव होती थी— अर्थात् यदि मनुष्य की चेतनता का कोई आधार न हो, और केवल मात्र चेतन अवस्थाओं की श्रृंखला हो, तो इस श्रृंखला को अपनी भूत और भविष्य की अवस्थाओं का ज्ञान और अपना श्रृंखला होने का ज्ञान कैसे हो सकता है? इसलिये, या तो हमें यह मानना

पड़ेगा कि चेतनता का कोई ज्ञाता है जो इसे शृंखला के रूप में अनुभव करता है, अथवा यह मानना पड़ेगा कि चेतनता की शृंखला अपने आपको स्वयं शृंखला के रूप में जानती है। परन्तु यह पिछली बात समझ में नहीं आ सकती। जब शृंखला की प्रत्येक अवस्था किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं रखती तो यह सामूहिक ज्ञान किस को और कैसे होगा कि यह शृंखला है ? इसके अतिरिक्त, इस सिद्धान्त से यह भी समझ में नही आ सकता कि स्मृति, अपनी एकता का अनुभव, दो वस्तुओं की तुलना तथा विविध इन्द्रियों के ज्ञानांशों से मिल कर एक वस्तु का समूचा ज्ञान कैसे हो सकता है ?

'सामान्य बुद्धि सम्प्रदाय' (Common-sense School)

स्कॉटलैण्ड का एक सम्प्रदाय सामान्य बुद्धि के अनुसार विचारकरने वाला था। इसके प्रवर्तक रीड ने ह्यूम के अविश्वास-वाद का खण्डन किया। रीड सामान्य बुद्धि का आश्रय लेकर कहता है कि जिन विचारों को मैं अनुभव या स्मरण करता हूं वे एक ज्ञाता के विचार हैं जिसे मैं अपना आप या आत्मा कहता हूं। प्रत्येक क्रिया का कोई कर्त्ता होना चाहिये और प्रत्येक गुण का कोई धारण करने वाला होना चाहिये। मनुष्य विचार, बुद्धि अथवा इच्छा को आत्मा नहीं समझते। परन्तु इन गुणों के धारण करने वाले को आत्मा मानते हैं। जब तक अविभाज्य आत्मा की सत्ता न हो जिसे मैं अपना आप कहता

हूं तब तक मेरी एकता नहीं हो सकती, यह प्रतीति नहीं हो सकती कि मैं वही हूं जो पहिले था।

रीड के सिद्धान्तों का फ़ान्स के कई विचारकों पर भी असर पड़ा। रोयर कोलार्ड ने रीड के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। मेन-डि-बिरान का विचार था कि हमें अपना अर्थात् आत्मा का तो प्रत्यक्ष होता रहता है, परन्तु बाहर की चीज़ों का ज्ञान चेतनता द्वारा होता है। हमें आत्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष तो नहीं होता परन्तु इतना ज़रूर मालूम होता है कि वह कारण है और वह अपने आप में तथा चेतनता में भेद करती है। प्रयत्न करती हुई आत्मा अपने आपको अन्य सब चीज़ों की तुलना में पृथक् अनुभव करती है, अन्य चीज़ों के विरोध में अपनी पृथक् सत्ता का प्रमाण देती है।

जॉफ़्राय पहले तो रीड की तरह मानता था कि चेतनता से आत्मा का अनुमान किया जा सकता है परन्तु अन्त में वह इस विचार का होगया कि अन्तर्दृष्टि (Intuitive Reflection) द्वारा ही हमें आत्मा का ज्ञान हो सकता है। मि० रेवैसोन (M. Ravaisson) के अनुसार, हमें आत्मा का अनुभव तो नहीं होता, परन्तु उसके आन्तरिक गुणों का अनुभव होता है। आन्तरिक गुण पहले शक्ति है जो अन्तमें प्रेम का रूप धारण कर लेती है क्योंकि शक्ति में भी एक झुकाव होता है। यह डेकार्टे की दो प्रकार की सत्ताओं (प्रकृति और

आत्मा) के स्थान पर लीबनिज़ की तरह केवल एक प्रकार की सत्ता को स्वीकार करता था।

प्रकृतिवाद

१८ वीं शताब्दी में फ्रान्स में और १६वीं शताब्दी में जर्मनी में प्रकृतिवाद प्रचलित रहा। इससे पूर्व भी कई विचारक प्रकृतिवाद के समर्थक हो चुके थे। लगभग डेकार्टे के समय में इंग्लैण्ड का विचारक हॉब्स प्रकृतिवादी था। यह शरीर से अतिरिक्त आत्मा की सत्ता नहीं मानता था और चेतनता को भी शरीर की गतियों का एक परिणाम समझता था। इसी प्रकार, फ़ान्स और जर्मनी के प्रकृतिवादी भी शरीर से अतिरिक्त आत्मा की सत्ता नहीं मानते थे। वे कहते थे कि चेतनता का उद्भव दिमाग़ की रासायनिक क्रियाओं और सूक्ष्म गतियों से होता है। इनके समय से ही मनोविज्ञान प्रकृतिवाद के प्रभाव के नीचे रहा है। आजकल के कई मनोवैज्ञानिक भी चेतनता की सब अवस्थाओं की व्याख्या दिमाग़ की रासायनिक क्रियाओं और सूक्ष्म गतियों से ही करते हैं, परन्तु इन मनोवैज्ञानिकों के मौलिक सूत्र वे ही हैं जो १८वीं शताब्दी के प्रकृतिवादियों के थे। ये सूत्र इस प्रकार हैं:—चेतनता दिमाग़ की एक क्रिया है, विचार का दिमाग़ से वही सम्बन्ध है जो पित्त का यकृत् से इत्यादि। पिछले अध्यायों में हम ऐसे सिद्धान्तों के पर्याप्त दोष दिखा चुके हैं, उन्हें यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं।

कान्ट (Kant)

१८वीं शताब्दी में, जर्मनी में साहित्य और दार्शनिक विचार के एक अपूर्व काल का आरम्भ हुआ। इस समय का एक विचारक जगद्विख्यात दार्शनिक काण्ट था। काण्ट के अनुसार, युक्ति और विचार से आत्मा की सिद्धि नहीं हो सकती। विचार से सिर्फ़ इतना ही मालूम होता है कि सर्वत्र कार्य-कारण-भाव का राज्य है, अतः आत्मा जैसे स्वतन्त्र कर्त्ता के लिये कोई स्थान नहीं। चेतनता में भी आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता। चेतनता में जो ज्ञाता या 'मैं' का अंश है वह चेतनता का ही एक भाग है, इससे आत्मा रूपी किसी पृथक् पदार्थ का भान नहीं होता, इतना ज़रूर मालूम होता है कि चेतनता सदा ज्ञाता और ज्ञेय के सम्बन्ध के रूप में होती है। काण्ट का यह भी विचार है कि युक्ति द्वारा परमात्मा और संसार की सत्ता भी सिद्ध नहीं की जा सकती। इनके विषय में तर्क के अनुसार विचार करने पर ऐसी युक्तियां (Antinomies) आ खड़ी होती हैं जिनसे परस्पर विरोधी बातें सिद्ध हो जाती हैं। परन्तु जिन पदार्थों की सिद्धि युक्ति और तर्क से नहीं हो सकती क्रियात्मक बुद्धि (Practical Reason) उन्हें आसानी से सिद्ध कर देती है। मनुष्य में कर्तव्य का भाव है, वह अनुभव करता है कि मुझे ऐसा करना चाहिए। इस 'ऐसा करना चाहिये' (Ought)

का कुछ अर्थ नहीं जब तक कि मनुष्य में ऐसा या वैसा करने का सामर्थ्य (Can) न हो। यदि संसार में सर्वत्र कार्य-कारण-भाव का ही राज्य हो और इसलिये मनुष्य के सब कार्य निश्चित कारणों के परिणाम हों अर्थात् मनुष्य स्वतन्त्र कर्त्ता न हो तो इसका अभिप्राय यह है कि उसमें अपनी इच्छा या उद्देश्य के अनुसार कार्य करने का सामर्थ्य बिल्कुल नहीं है। इस हालत में, मनुष्य के अन्दर स्थित यह भाव कि 'मुझे ऐसा करना चाहिये' निरर्थक और भ्रमात्मक होगा। परन्तु मनुष्य की क्रियात्मक बुद्धि अपने इस कर्तव्य भाव को निरर्थक नहीं समझ सकती, इसका यह अनुरोध है कि कर्त्तव्य भाव सार्थक है। इसलिये मनुष्य स्वतन्त्र कर्ता है। कर्त्तव्य-बुद्धि इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य का स्थान कार्य-कारण-भाव के संसार से ऊपर किसी ऊंचे और वास्तविक संसार में भी है जहां स्वतंत्र कर्तृत्व सम्भव है। स्वतन्त्रता के लिये आवश्यक है कि कोई स्वतन्त्र सत्ता भी हो। इसलिये प्रत्येक मनुष्य में कर्त्तव्य भाव की आधारभूत एक स्वतन्त्र आत्मा है।

कर्त्तव्य-पालन से सुख की प्राप्ति होनी चाहिये, परन्तु इस संसार में तो हम देखते हैं कि कर्त्तव्य-पालन करने से आवश्यक नहीं कि सुख की प्राप्ति हो। इसके अतिरिक्त, मनुष्य अपने एक परिमित जीवन में अपने आदर्शों को प्राप्त नहीं कर सकता, इन आदर्शों को फिर किसी जीवन में प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिये और कोई ऐसा क्षेत्र तथा

आगामी जीवन होना चाहिये जहां कर्तव्य-पालन और सुख प्राप्ति का सम्बन्ध जुड़ सके। यह सब तभी हो सकता है जब आत्मा की सत्ता हो और आत्मा अमर हो। एक ऐसी सत्ता भी होनी चाहिये जो सुख-प्राप्ति और कर्तव्य पालन में संबन्ध जोड़ सके। इसलिये, हमें परमात्मा की सत्ता भी माननी चाहिये। इस प्रकार, काण्ट नैतिकता और क्रियात्मिक बुद्धि के आधार पर आत्मा और परमात्मा को सिद्ध करता है। उसके अनुसार, युक्ति अथवा तर्क से इनकी सिद्धि नहीं हो सकती।

अद्वैतवाद

(१) स्पाइनोज़ा

काण्ट के अनुयायी एकसत्तावादको मानते थे। इनसे पहले डेकार्टे का अनुयायी स्पाइनोज़ा भी एकसत्तावाद को स्वीकार करता था। काण्ट के अनुयायियों पर काण्ट के अतिरिक्त स्पाइनोज़ा का भी प्रभाव था। स्पाइनोज़ा के अनुसार, संसार में केवल एक ही सत्ता है और वह परमात्मा है। इसके दो गुण (Attributes) हैं— विस्तार (Extension) और विचार (Thought)। सब भौतिक वस्तुएं विस्तार के रूपान्तर (Modes) हैं, सब आत्माएं विचार के रूपान्तर हैं। परन्तु किसी भी पदार्थ की परमात्मा से स्वतन्त्र और अतिरिक्त सत्ता नहीं है।

(२) फ़िश्टे (Fichte)

काण्ट का एक प्रसिद्ध अनुयायी फ़िश्टे था। इसके अनुसार, संसार में एक आध्यात्मिक सत्ता है, इसे आत्मा (Ego.) कह सकते हैं। यह स्वभाव से ही आदर्श के लिए प्रयत्नशील तथा नैतिक है। नैतिकता के लिये प्रयत्न आवश्यक है, प्रयत्न के लिए कोई बाधा चाहिये जिसका दमन किया जा सके, परन्तु जब आत्मा से अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं तो बाधा कहां से होगी? इसलिए, आत्मा अपने विरोध में एक संसार की स्थापना कर लेती है जिससे वह प्रयत्न करके इसे (संसार को) दमन करती हुई फिर अपनी स्वाभाविक नैतिकता का ज्ञान प्राप्त कर सके। संसार रूपी बाधा का दमन करने के लिए आत्मा अपने आपको अनेक वैयक्तिक और स्वतन्त्र आत्माओं में विभक्त कर लेती है। परन्तु वस्तुतः एक वास्तविक आत्मा के अतिरिक्त अन्य सत्ताएं प्रतीतिमात्र हैं।

(३) शेलिंग (Schelling)

फ़िश्टे का अनुयायी शेलिंग संसार को अवास्तविक न मानता था। उसका सिद्धान्त है कि आधारभूत सत्ता एक ही है, जिसका नाम निरपेक्ष (Absolute) सत्ता है। यह अपने आपमें अनिर्वचनीय है। प्राकृतिक संसार और आत्माओं का उद्भव इसी से हुआ है। यह सिद्धान्त कुछ अंशों में स्पाइनोज़ा के सिद्धान्त से सादृश्य रखता है।

(४) हेगल

काण्ट के उत्तरवर्ती विचारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान हेगल का है। हेगल कहता है कि शेलिंग के निरपेक्ष से संसार की ज़रा भी व्याख्या नहीं हो सकती। यह समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के अनिर्वचनीय पदार्थ से प्रकृति और आत्माओं की उत्पत्ति कैसे हो सकती है। हेगल के अनुसार, निरपेक्ष स्वयं ही आत्मा और प्रकृति है, वह इनका उत्पत्ति स्थान नहीं। निरपेक्ष सत्ता बुद्धि (Reason) या ज्ञान (Idea) है। यह निरपेक्ष आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहता है, इसलिये विकास की शृंखला में से गुज़रता है। इस विकास की शृंखला का ही नाम संसार है। यह विकास बुद्धि का होता है इसलिये तर्क शास्त्र के नियमों के अनुसार होता है। इस विकास से क्रमशः पृथिवी तथा अन्य आकाशीय पिण्ड, वनस्पति, पशु और मनुष्य पैदा होते हैं। फिर मनुष्य का मानसिक विकास होने पर समाज का निर्माण होता है, समाज के क्रमिक विकास में कला, धर्म और दर्शन का आगमन होता है। दार्शनिक विचार द्वारा जगत् की आधार-भूत बुद्धि आत्म-परिचय प्राप्त करती है। हेगल के अनुसार, संसार के विकास का यही उद्देश्य है। इस विकास की परम्परा में वैयक्तिक आत्मा भी एक मंज़िल है। अन्य वस्तुओं की तरह यह भी आधार-भूत बुद्धि का एक रूप है।

शॉपनहायर

हेगल का समकालीन शॉपनहायर बुद्धि के स्थान पर संकल्प-शक्ति (Will) को जगत् की अन्तिम सत्ता स्वीकार करता है। संकल्प-शक्ति सर्वत्र अपने आपको गति और शक्ति के रूप में प्रकट करती है, समस्त संसार इसी का विकास है। नदी का प्रवाह, आंधी का वेग तथा अन्य सब सांसारिक घटनाएं इसी संकल्प-शक्ति से आविष्कृत होती हैं। यह इच्छा शक्ति स्वभाव से बुद्धि विहीन है। अतः संसार की सब घटनाएं निरुद्देश्य हैं परन्तु मनुष्य में आकर यह शक्ति अपने लिये विचार और चेतनता रूपी एक दीपक जला लेती है। अन्य सब वस्तुओं की भांति आत्माएं भी इस शक्ति के रूपान्तर हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, जीवन दुःखमय है। जब तक जीवन है किसी प्रकार भी सुख नहीं मिल सकता। आत्म हत्या से भी सुख-प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि यदि इच्छा-शक्ति शान्त न हो तो व्यक्ति फिर किसी शरीर में जन्म ले लेता है। इच्छा-शक्ति शान्त होने पर और मनुष्य के व्यक्तित्व के नष्ट होने पर ही निर्वाण लाभ होता है। निर्वाण से दुःख की निवृत्ति हो जाती है।

कोएट और प्रत्यक्षवाद (Positivism)

उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में ऑगस्ट कोएट (Auguste-Comte) ने एक प्रत्यक्षवादी दार्शनिक सम्प्रदाय की स्थापना

की। इसके अनुसार, मनुष्य को केवल इन्द्रियगोचर प्रतीतियों (Phenomena) का ही ज्ञान हो सकता है, आधारभूत पदार्थों और कारणों का नहीं। इसलिये, आत्मा, परमात्मा तथा कार्य-कारण-भाव इत्यादि के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। प्रतीतियों के विषय में हम इतना ही जान सकते हैं कि वे परस्पर सहवर्ती, या पूर्वोत्तरवर्ती हैं अथवा सदृश या असदृश हैं। उनमें कार्यकारण-भाव के किसी सम्बन्ध का हमें ज्ञान नहीं हो सकता। अपनी चेतनता का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, परन्तु चेतनता के आधारभूत किसी आत्मा की सत्ता के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। यदि यह सिद्धान्त ठीक हो तो हम प्रकृति को भी नहीं जान सकते। इन्द्रियों से तो हमें प्रकृति का भी प्रत्यक्ष नहीं होता। प्रकृति के प्रभाव से हमारी चेतनता में जो परिवर्तन होते हैं हम केवल उन्हीं को जान सकते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी इस सम्प्रदाय के विचारक प्रतीतियों को प्राकृतिक या भौतिक मानते हैं।

रॉबर्ट फ़्लिण्ट इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की आलोचना करता हुआ लिखता है कि पौज़िटिविज़्म के सिद्धान्तों को यदि ठीक मान लिया जाय तो हम यह भी नहीं कह सकेंगे कि कोण्ट अपनी पुस्तकों का कारण अर्थात् रचयिता है क्योंकि हमें कारणों का ज्ञान नहीं हो सकता। कोण्ट के विचारों का प्रभाव

इंग्लैण्ड में भी पड़ा। मिल, स्पेन्सर आदि प्रसिद्ध विचारक कोण्ट से बहुत अंश में प्रभावित थे।

विकासवाद

विकासवाद १६वीं शताब्दी में योरुप का एक प्रमुख सिद्धान्त था। पाश्चात्य संसार में यह इतना प्रचलित हुआ है कि वर्त्तमान विज्ञान विचार के प्रायः सब क्षेत्रों में इसे एक आधारभूत सिद्धान्त समझता है। विकासवाद के मानने वालों में कई प्रकृतिवादी हैं। विकासवाद का महान् आचार्य हर्बर्टस्पैंसर शक्ति की तरह के एक पदार्थ को संसार की अन्तिम सत्ता मानता है, यद्यपि उसकी दृष्टि में वह अन्तिम पदार्थ मनुष्य की बुद्धि द्वारा सम्यक्तया ज्ञेय नहीं। इस अन्तिम पदार्थ से संसार की सब चीज़ों का विकास हुआ है। विकासवादी आत्मा को न मानकर प्रत्येक मनुष्य में चेतनता की धारा को मानते हैं। चेतनता की यह धारा जड़ प्रकृति से ही विकसित होती है। कई विकासवादी प्रकृति के परमाणुओं के समान चेतनता के भी परमाणु मानने लगे हैं। प्रत्येक प्राकृतिक परमाणु के साथ चेतनता का भी एक परमाणु लगा होता है। इन परमाणुओं के विशेष अनुपात में एकत्र होने से दिमाग़ और साथ ही चेतनता भी उत्पन्न होती है। इस सिद्धान्त को 'मानसिक अणुवाद' (Mind-Stuff-Theory) का नाम दिया गया है।

इन सिद्धान्तों की त्रुटियां प्रकृतिवाद सम्बन्धी अध्यायों में हम भली भांति प्रदर्शित कर चुके हैं। यहां सिर्फ़ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि विकासवाद में सामान्य दोष यह है कि विकास की शृङ्खला में प्रत्येक कदम पर छोटी चीज़ में से बड़ी, निकृष्ट में से उत्कृष्ट, का निकलना माना जाता है। परन्तु इससे कार्यकारण भाव के नियम का भंग होता है। कोई कारण अपने से उत्कृष्ट चीज़ कैसे उत्पन्न कर सकता है? जो उत्कृष्टता कारण में नहीं वह कार्य में कहां से आजाएगी?

लोट्ज़े

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी में लोट्ज़े नाम का एक प्रत्ययवादी विचारक था। उसने आत्मा के पक्ष में अनेक युक्तियां दी हैं:—एक युक्ति यह है कि यदि आत्मा न हो तो दो वस्तुओं में तुलना नहीं हो सकती। तुलना के लिये आवश्यक है कि दोनों वस्तुओं का ज्ञान किसी एक सत्ता को हो। हम इस समय के अनुभव की तुलना अपने भूतकाल के अनुभव से कर सकते हैं। इससे प्रतीत होता है कि भूतकाल में अनुभव करने वाली और अब उस अनुभव का स्मरण करने वाली तथा इस समय अनुभव करने वाली एक ही स्थिर सत्ता है। चेतनता और शरीर दोनों ही परिवर्त्तनशील हैं। इस-लिये, यह स्थिर सत्ता इन दोनों से अतिरिक्त अर्थात् आत्मा ही हो सकती है।

ग्रीन, ब्रैडले, रॉयस

१६वीं शताब्दी में ही जर्मनी के प्रत्ययवाद (Idealism) का इंग्लैण्ड में प्रचार हुआ। ग्रीन, ब्रैडले आदि इस सम्प्रदाय के बहुत प्रसिद्ध विचारक हुए हैं। ये लोग बहुत अंशों में हेगल के अनुयायी थे यद्यपि इनके आपस में और हेगल से भी छोटे-छोटे मतभेद हैं। इनका सामान्य सिद्धान्त यह है कि संसार की वास्तविक सत्ता एक अनन्त चेतनता है। यह अनन्त चेतनता सदा के लिए ऐसी ही अपरिवर्त्तनशील है जैसी कि वैयक्तिक चेतनता क्षणमात्र के लिए। जिस प्रकार एक भौतिक पदार्थ की चेतनता में रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि विविध ज्ञान होते हैं, इसी प्रकार इस अनन्त चेतनता में संसार के नाना व्यक्ति हैं। यह अनन्त चेतनता अवयवों का समूह न होकर एक सत्ता है। इस प्रकार, इस सिद्धान्त में वैयक्तिक आत्मा की सत्ता इस अनन्त चेतनता से अतिरिक्त एक स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने पृथक् होने की अनुभूति अज्ञान के कारण होती है।

प्रोफ़ेसर जेम्स[1] उक्त सिद्धान्त की समालोचना करता हुआ लिखता है—'यदि एक बड़ी चेतनता की ही वास्तविक सत्ता हो तो उसमें अपने आपको पृथक् २ अनुभव करनेवाली वैयक्तिक चेतनताएं कहां से आगईं ? जिस प्रकार किसी पदार्थ

१. A pluralistic Universe.

की चेतनता में रूप, रस, गन्ध आदि एक साथ होते हैं, इनकी अलग प्रतीति नहीं होती, इसी प्रकार वास्तविक सत्ता अपने आप को सम्पूर्ण रूप से एक साथ जानती है। अपने किसी अंश को दूसरों से अलग करके नहीं जानती। ऐसा होते हुए इस विस्तृत चेतनता में ऐसे अंश कहां से आजाते हैं जो अपने को दूसरों से पृथक् रूप में जानते हैं ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि कि वैयक्तिक चेतनताएं विस्तृत चेतनता का अंशमात्र हैं,क्योंकि वैयक्तिक चेतनताओं में जिज्ञासा, कौतूहल, शोक, पीड़ा, पश्चात्ताप, भय आदि की अनुभूतियां भी होती हैं जो सामूहिक या विस्तृत चेतनता में नहीं हो सकतीं क्योंकि वह पूर्ण है। इस प्रकार, वैयक्तिक चेतनताओं में ऐसी विशेषताएं भी हैं जो सामूहिक या सामष्टिक चेतनता में नहीं हैं। इसलिये, वैयक्तिक चेतनताओं को विस्तृत सामूहिक चेतनता का अंशमात्र नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त, यदि वास्तविक सत्ता एक चेतनता ही है तो प्रत्येक पदार्थ की सत्ता विचारात्मक ही होनी चाहिए। जिस कुर्सी पर मैं बैठा हूं, इसकी तथा इसके विषय में सब बातों की सत्ता केवल विचार में ही होगी। परन्तु कुर्सी के विषय में अनगिनत नकारात्मक बातें ऐसी हैं जिन्हें यथार्थ कहा जा सकता है—जैसे, कुर्सी मेज़ नहीं है, हाथी नहीं है, अंकगणित का प्रश्न नहीं है, घर के दरवाज़े से एक मील दूर नहीं है, पचास रुपये की नहीं है, लाख वर्ष पुरानी नहीं है इत्यादि। ये सब बातें भी विस्तृत चेतनता में

होनी चाहिएं, अन्यथा ये कुर्सी के विषय में यथार्थ कैसे हो सकती है ? यदि संसार की सब चीजों के विषय में ऐसी सब बातें विस्तृत चेतनता में हों, तो इसका परिणाम यह होगा कि विस्तृत चेतनता अधिकांश में ऐसे व्यर्थ ज्ञान से भर जाएगी। सार्थक बातें इसमें बहुत कम होंगी। जितनी बेवक़ूफ़ी की और ख़राब बातें हैं इनकी सत्ता अवश्य है। यह सत्ता विस्तृत चेतनता में ही हो सकती है, क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई चीज़ वास्तविक नहीं है। इस प्रकार, खराब से खराब चीज़ें भी विस्तृत चेतनना के अन्तर्गत होंगी, इस लिए अनन्त चेतनता पूर्ण नहीं होगी। परन्तु, उपर्युक्त प्रत्ययवादी इसे पूर्ण मानते हैं।

दसवां अध्याय

आत्मा का स्वरूप-निरूपण

एकतावाद (Monism)

एकतावाद को अनेक सम्प्रदाय अपने अपने ढंग से स्वीकार करते हैं, परन्तु इस अंश में सब सहमत हैं कि संसार की वास्तविक सत्ता एक है। एकतावाद वैयक्तिक आत्मा अथवा संसार के किसी अन्य वस्तु की आधार-भूत एक पदार्थ से भिन्न सत्ता नहीं मानता। प्रकृतिवाद भी एक प्रकार का एकतावाद ही है। इसके अनुसार, वैयक्तिक आत्मा की सत्ता नहीं है, चेतनता दिमाग की क्रिया से उत्पन्न होती है। प्रकृतिवाद का खण्डन हम पहले पर्याप्त विस्तार के साथ कर चुके हैं। शेष एकतावादी अन्तिम वास्तविक सत्ता को चित् अथवा अनिर्वचनीय मानते हैं—उदाहरणार्थ, हेगल, ग्रीन, रॉयस, शॉपनहायर आदि इस अन्तिम एक सत्ता को चित्, तथा शेलिंग प्लॉटिनस, शङ्कराचार्य आदि अनिर्वचनीय मानते हैं। स्पाइनोज़ा

की विचार-पद्धति के लोग विस्तार और विचार दोनों को ही इस सत्ता के गुण मानते हैं। इनके अनुसार यह सत्ता भौतिक भी है और चित् भी। इसी प्रकार, पार्मेनाइडीज़ भी अन्तिम सत्ता को भौतिक तथा चित् दोनों स्वीकार करता है।

अद्वैतवाद (Pantheism)

यदि संसार में एक ही सत्ता है तो वैयक्तिक आत्मा तथा संसार की अन्य चीजें क्या हैं? कई दार्शनिक मानते हैं कि इन सब पदार्थों की सत्ता ही नहीं है, इनकी केवल प्रतीति होती है। शङ्कर, ग्रीन आदि इस प्रकार के विचारकों की श्रेणी में हैं। शेलिंग आदि दार्शनिक कहते हैं कि इन सब प्रतीयमान पदार्थों का उद्भवस्थान एक अवर्णनीय अन्तिम सत्ता है। लोटिनस आदि यह भी मानते हैं कि ये सब पदार्थ, कम से कम वैयक्तिक आत्मा तो अवश्य, उसी एक सत्ता में फिर से विलीन हो जाएंगे। स्पाईनोजा आदि कई विचारक कहते हैं कि संसार के पदार्थों की सत्ता तो है परन्तु ईश्वर से पृथक् नहीं; ईश्वर जगत् का कारण है परन्तु ऐसे ही जैसे दूध अपने श्वेत रंग का कारण होता है।

उक्त प्रकार के सब सिद्धान्त कई दृष्टियों से दोष-युक्त हैं। डॉक्टर फ़्लिएट अपनी पुस्तक 'ऐण्टी-थीइस्टिक थ्यूरीज़' में लिखता हैं:—

'अद्वैतवाद के सम्पूर्ण इतिहास को देखने से मालूम होता है कि एकतावाद को या तो ईश्वर की सत्ता से इन्कार करना पड़ता है या संसार की सत्ता से। अद्वैतवाद को परमात्मा के विषय में एक विकल्प अवश्य स्वीकार करना होगा। या तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि परमात्मा ही सब कुछ है, सब अच्छे और बुरे मनुष्य उसी के रूप हैं, और वही पुण्य और पाप दोनों का कर्त्ता है। यदि यह न स्वीकार किया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि वस्तुतः सांसारिक पदार्थों की ही सत्ता है, परमात्मा की सत्ता नहीं है, वह केवल संसार का एकता रूपी गुण है जो हमने विचार द्वारा कल्पित किया हुआ है। जैसे सफ़ेदी और गोलाई की सफ़ेद और गोल वस्तुओं से पृथक् कोई सत्ता नहीं होती परन्तु मनुष्य विचार द्वारा वस्तुओं के अन्य गुणों से इन्हें अलग कर लेता है, इसी प्रकार संसार के एकता रूपी गुण को भी संसार के अन्य गुणों से पृथक् करके उसकी स्वतन्त्र सत्ता कल्पित कर ली जाती है, वास्तव में उसकी सत्ता नहीं है। एवं, अद्वैतवाद को या तो संसार की सत्ता से या परमात्मा की सत्ता से इन्कार करना पड़ेगा'।

प्रोफ़ेसर जेम्स[1] लिखता है, "एकतावाद के अनुसार यदि मान लिया जाय कि केवल ईश्वर की ही वास्तविक सत्ता

१. A pluralistic Universe.

है और अन्य सब पदार्थ प्रतीति मात्र हैं या ईश्वर में से निकले हुए हैं, तो ईश्वर के पूर्ण (ईश्वर को एकतावादी भी पूर्ण मानता है) होते हुए पाप और बुराई कहां से आगई ? यदि पाप आदि की केवल प्रतीति ही है तो यह प्रतीति भी पूर्ण परमात्मा में क्यों है ?" यदि ईश्वर से स्वतन्त्र, वैयक्तिक, नित्य आत्माओं की सत्ता मान ली जाए तो इस प्रकार के आक्षेप नहीं किये जा सकते। तब यह कहा जा सकता है कि पाप का कारण मनुष्य की अपनी आत्मा है जो कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर आत्मा को कर्मफल देता है। ईसाई आदि जो लोग आत्माओं को परमात्मा द्वारा सृष्ट मानते हैं वे भी उक्त प्रकार के आक्षेप से नहीं बच सकते। सृष्ट आत्माओं का पाप स्रष्टा के अतिरिक्त और कहां से आ सकता है ? केवल इतना कह देने से काम न चलेगा कि आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। आत्माओं में जो प्रवृत्तियां और इच्छाएं हैं उनका कारण परमात्मा को ही मानना पड़ेगा। परिणामतः पाप की इच्छा का कारण भी परमात्मा ही होगा।

अद्वैतवाद में धर्म और भक्तिभाव के लिए भी स्थान नहीं है। यदि आत्मा अल्पज्ञ सीमित और दोषयुक्त हो तो वह पूर्ण परमात्मा का आश्रय पाने के लिए उसकी भक्ति कर सकती है। परन्तु यदि आत्मा परमात्मा से अभिन्न हो तो उसमें किसी प्रकार की अल्पता नहीं हो सकती, अल्पता न होने पर वह परमात्मा का आश्रय क्यों लेगी ? यदि यह कहा

जाए कि आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है और इसलिये परमात्मा की अपेक्षा अल्प है तो इसका उत्तर यह है कि परमात्मा के अखण्ड होने से उसे अवयवी नहीं कहा जासकता। यदि वह अवयवी अर्थात् अवयवों का समूह हो तो नित्य नहीं हो सकता। साथ ही, यदि परमात्मा अवयवों का समूह हो तो उसमें एकता भी नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त, भक्ति और प्रेम के लिए दो पृथक् सत्ताओं की आवश्यकता है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और परमात्मा पृथक् नहीं हैं। अद्वैतवाद का परमात्मा ऐसा भी नहीं है जिसमें करुणा, दया आदि गुण हों—उदाहरण के लिए, शङ्कर का ब्रह्म और हेगल का एब्सोल्यूट। इसलिये, उसकी भक्ति करना निरर्थक है। यदि कई एकतावादियों के अनुसार, अन्तिम सत्ता को अनिर्वचनीय मान लिया जाए तो अनिर्वचनीय की भी पूजा अथवा भक्ति कसे हो सकती है ?

अद्वैतवादी कहते हैं कि अद्वैतवाद भक्ति भाव को बढ़ाता है, क्योंकि वह मानता है कि प्रत्येक प्राकृतिक चीज़ में ईश्वर है। परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार, ईश्वर को प्रकृति की चीज़ों में उन चीज़ों के रूप में ही मानना पड़ेगा। अतः ईश्वर उन चीज़ों की अपेक्षा कुछ विशेष न होगा—दूसरे शब्दों में, ईश्वर उन चीज़ों में नहीं, वे चीज़ें ही ईश्वर हैं। इसका अर्थ है कि ईश्वर के उन चीज़ों में होने से उनमें कोई अन्तर नहीं आया। डॉक्टर फ्लिएट लिखता है कि यदि

परमात्मा सूर्य की किरण में उसके ताप और प्रकाश के रूप में ही विद्यमान हो तो ईश्वर-सहित और ईश्वर-रहित सूर्य की किरण में कोई अन्तर नहीं। परन्तु, यदि परमात्मा ताप और प्रकाश के अतिरिक्त एक आध्यात्मिक सत्ता के रूप में विद्यमान् हो तो उस के होने से चीज़ों के स्वभाव में एक बड़ा अन्तर आजाएगा और धार्मिक भाव को बड़ी सहायता मिलेगी।

अद्वैतवाद के इतिहास पर दृष्टि दौड़ाने से पता चलता है कि अद्वैतवाद को, भक्तिभाव को अवकाश देने के लिए, ईश्वर और मनुष्य में ऐसे गुणों को मानना पड़ता है जिन्हें यह, यथार्थ दृष्टि से, मिथ्या समझता है—जैसे, शाङ्कर वेदान्त व्यावहारिक दृष्टि से ईश्वर और मनुष्य के ऐसे रूप मानता है जिन्हें यह पारमार्थिक दृष्टि में स्वीकार नहीं करता। अनेक अद्वैतवादी मनुष्य-पूजा का प्रचार करते हैं जैसे हेगल, कूजिन आदि। भक्तिभाव से मनुष्य नम्र होता है, अपनी त्रुटियों को पहिचानता है परन्तु अद्वैतवाद मनुष्य में एक असीम अभिमान का संचार करता है, उदाहरण के लिये स्वामी रामतीर्थ जी के निम्न लिखित शहर देखिये:—

१. बादशाह–ए–वक्त हैं मोहरे मिरी शतरंज के।
दिल लगी की चाल हैं सब रंग सुलह जंग के।

२. शब-ए-तारीक-ओ-बीम-ए-मौज गरदाब-ए-चुनीं हाइल।
चसां दानन्द हाल-ए-मा ग़रीक़ान-ए-तमव्व जहा॥

प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वतन्त्र होने का अनुभव होता रहता है, वह समझता है कि अपने कार्यों के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। पाप करने पर उसे शर्म आती है, और पश्चात्ताप होता है। पुण्य करने पर उसे हर्ष और गर्व होता है। एकतावाद को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तरदायित्वका यह अनुभव वस्तुतः भ्रम है, क्योंकि जो कुछ भी होता है वह एक सत्ता के स्वभाव का अनिवार्य परिणाम है। एकतावाद में, मनुष्य के स्वतन्त्र कर्त्तृत्व के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः पाप पुण्य का भेद अवास्तविक है, क्योंकि दोनों ही परमात्मा के स्वभाव के अनिवार्य परिणाम हैं, पाप और पुण्य दोनों संसार की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं। एकतावादियों का वस्तुतः इसी प्रकार का मत है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि पाप मिथ्या है, मनुष्य की आत्मा पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। मनुष्य अपने आपको पापी या पुण्यात्मा समझता है, परन्तु यह भ्रम है। जैसे कमल पत्र जल से लिप्त नहीं होता अथवा पानी में तलवार डुबोकर निकालने से जल उस से नहीं लगा रहता, ऐसे ही आत्मा पाप पुण्य से लिप्त नहीं होती। स्पाइनोज़ा का सिद्धान्त था कि पुण्य वह है जो बलवान् के हित को पूरा करता हो—अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस। हेगल का भी ऐसा ही सिद्धान्त था। इससे स्पष्ट है कि एकतावाद में नैतिकता के लिए भी कोई स्थान नहीं। यदि नैतिकता और

स्वतन्त्र-कर्त्तृत्व से इन्कार कर दिया जाय तो आत्मा का उत्तर-दायित्व नहीं रहता। तब उसे अपने कर्मों के अनुसार फल मिलने का कोई अर्थ नहीं। जब आत्मा का स्वतन्त्र-कर्त्तृत्व नहीं है और इसलिए उसे कर्मफल भी नहीं मिल सकता तो ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार में यह वैषम्य क्यों है ? क्यों कई लोग सुखी हैं और कई दुःखी, कई बुद्धिमान हैं कई मूर्ख, कई स्वस्थ हैं कई रोगी, कई पुण्यात्मा हैं कई पापी ? आत्माओं की नित्य और स्वतन्त्र सत्ता मानने वाले तो कह सकते हैं कि आत्माओं का पुनर्जन्म होता है, और इस वैषम्य का कारण पूर्वजन्म के संस्कार और कर्म-फल हैं। परन्तु जिस सिद्धान्त में न आत्मा की स्वतन्त्रता हो और न पाप पुण्य का भेद, वहां न तो किसी के कर्म हो सकते हैं और न उनके संस्कार और न फल। इसमें सन्देह नहीं कि कई अद्वैतवादी भी पुनर्जन्म और कर्मफल को मान लेते हैं। परन्तु वस्तुतः ऐसा मानना उनके सिद्धान्त के अनुकूल नहीं। यदि एक ही सत्ता हो तो उसके स्वभाव या इच्छा के अनुकूल कर्म होगा। इस हालत में, किसी व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है तो स्वतन्त्र इच्छा कसे होगी ? इसलिये व्यक्ति का कोई उत्तरदायित्वपूर्ण-कर्म नहीं हो सकता। कर्म के अभाव में कर्म के संस्कार या फल भी असम्भव हैं।

विचारात्मक दृष्टि से भी एकतावाद में कई त्रुटियां दिखाई देती हैं। कई अद्वैतवादी परमात्मा को निरपेक्ष या

अनिर्वचनीय मानते हैं। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठता है कि अनिर्वचनीय परमात्मा से वैयक्तिक आत्मा तथा संसार की अन्य वस्तुएं कैसे निकल आईं। किसी सत्ता में यदि कोई योग्यता या शक्ति हो तब, अथवा उसमें कोई पदार्थ बीज-रूप में विद्यमान हो तब तो सम्भव है कि उस सत्ता से विविध सृष्टि उत्पन्न हो जाए। परन्तु, परमात्मा को अनिर्वचनीय मानने पर उसकी किसी योग्यता अथवा शक्ति का हमें परिज्ञान नहीं हो सकता। न हम यही कह सकते हैं कि उसमें कोई पदार्थ बीज-रूप से विद्यमान है। फिर यह कैसे समझ में आ सकता है कि अद्भुत सृष्टि का आविर्भाव उस अनिर्वचनीय परमात्मा से होगया? यदि यह कहा जाए कि परमात्मा सृष्टि का कारण है या उसमें सृष्टि उत्पन्न करने की योग्यता, शक्ति अथवा सम्भावना है तो ऐसा प्रतिपादन करते हुए हमने परमात्मा के विषय में एक बहुत बड़ी बात कह दी और इसलिए वह अनिर्वचनीय नहीं रहा।

प्लोटिनस आदि कई विचारक वस्तुतः यह स्वीकार करते हैं कि परमात्मा के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसकी सत्ता है। कई और अद्वैतवादी संसार तथा वैयक्तिक आत्माओं की सत्ता ही नहीं मानते। सिद्धान्त या दर्शन तो इसलिए होते हैं कि वे वस्तुओं की व्याख्या करके उनकी सत्ता को समझा दें, इसलिए नहीं कि उनकी सत्ता को उड़ा ही दें। अपने पृथक् अस्तित्व

और वास्तविकता का और संसार की वास्तविकता का मनुष्य को स्वाभाविक विश्वास होता है। पश्चिम का प्रसिद्ध अविश्वास-वादी विचारक ह्यूम लिखता है कि मैं जब भोजन करने बैठता हूं तो मुझे अपना सारा अविश्वास भूल जाता है। अविश्वास-वाद वास्तव में मनुष्य-स्वभाव की गहरी आकांक्षाओं के प्रतिकूल है।

यदि मनुष्य तथा संसार की सब चीज़ें मिथ्या हैं तो प्रश्न होता है कि उनकी प्रतीति ही क्यों होती है? यदि इस प्रतीति का कारण भ्रम या अज्ञान है तो क्या भ्रम ईश्वर को होता है? यह भ्रम नित्य है या क्षणिक? यदि नित्य है तो संसार की प्रतीति नित्य होगी अतः ज्ञान रूप में संसार की नित्य सत्ता हुई। यदि क्षणिक है तो इसका कुछ कारण होना चाहिये, क्योंकि किसी चीज़ का आरम्भ बिना कारण के नहीं हो सकता। यदि यह कारण परमात्मा से बाहर हो तो एकतावाद मिथ्या हो जाएगा। यदि भ्रम का कारण परमात्मा ही में हो तो यह बात बड़ी विचित्र होगी कि परमात्मा अपने अन्दर भ्रम पैदा करता रहता है। यह कारण या तो अनिवार्य रूप से कार्य कर सकता है या परमात्मा की इच्छा से। यदि परमात्मा की इच्छा से कार्य करता है तो परमात्मा को अपने अन्दर भ्रम-रूपी त्रुटि पैदा करने की ऐसी इच्छा क्यों होती है? यदि अनिवार्य रूप से कार्य होता है तो भ्रम सदा होना चाहिए, अन्यथा यह मानना पड़ेगा कि कारण के स्थगित और

पुनः आरम्भ होने का कोई और कारण है। फिर उस कारण का भी कोई और कारण होगा, इस प्रकार अनवस्था दोष हो जाएगा। यदि कहा जाए कि भ्रम मनुष्यों को होता है, तो मनुष्यों की तो भ्रम से पूर्व सत्ता ही नहीं है। यदि मनुष्य से पूर्व भ्रम न हो तो मनुष्य हो ही नहीं सकता। इस प्रकार भ्रम को मनुष्य पर आश्रित और मनुष्य को भ्रमपर आश्रित मानने से अन्योन्याश्रय दोष आ जाएगा।

शंकर आदि विचारक अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए जिन उदाहरणों का प्रयोग करते हैं, उनसे भी काम नहीं चल सकता। वेदान्त दर्शन का प्रसिद्ध उदाहरण यह है कि जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है वैसे ही संसार की भी केवल प्रतीति होती है। परन्तु सर्प की प्रतीति मनुष्य को, अपने से भिन्न रज्जु में, होती है, इसी प्रकार संसार की प्रतीति किस को और किस में होती है? वेदान्त इस पर कहता है कि जैसे एक सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक जलों में प्रतिच्छिप्त होने से अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, ऐसे ही अनेक आत्मा ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं। अब प्रश्न यह है कि प्रतिबिम्ब किस चीज में है? माया को मानने से भी काम नहीं चल सकता क्योंकि माया का स्वरूप ही क्या है? यदि वह ब्रह्म से भिन्न है तो द्वैत होगया, यदि अभिन्न है तो इसे पृथक् नाम देने तथा भ्रम का कारण मानने का क्या कारण है? इसके अतिरिक्त,

माया को अनिर्वचनीय कहा जाता है। अनिर्वचनीय मायाको जगत् की प्रतीति का कारण मानने से उसकी अनिर्वचनीयता नहीं रहती, क्योंकि उसे विशेष प्रकार का कारण कहने में उसके विषय में बहुत कुछ कह दिया गया।

वेदान्त की तरह अन्य अद्वैतवादी सम्प्रदाय भी मनुष्य और संसार के साथ परमात्मा के सम्बन्ध की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर सकते। पारमेनाइडीस मनुष्यों और संसार के अस्तित्व को ही नहीं स्वीकार करता। फ़िश्टे कहता है कि यह संसार भ्रम है जिस में परमात्मा अपने आपको डाल देता है। स्पाइनोज़ा के अनुसार, केवल परमात्मा की ही सत्ता है और मनुष्य परमात्मा के रूपान्तरमात्र हैं। इस पर वैबर[1] लिखता है— 'परमात्मा अपरिवर्तनशील है, फिर मनुष्य और संसार परमात्मा के परिवर्तित रूप या रूपान्तर कैसे हो सकते हैं? इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य और संसार की सत्ता ही नहीं है। स्पाइनोज़ा इस विरोध की उपेक्षा करता हुआ कहता है कि अपरिवर्तनशील परमात्मा और परिवर्तनशील संसार दोनों हैं। स्पाइनोज़ा के अनुसार विचार और विस्तार दोनों परमात्मा के गुण हैं परन्तु विचार विस्तार रहित है। इस प्रकार परमात्मा विस्तार युक्त भी है और विस्तार रहित भी। इसमें परस्पर-विरोध है।

इस भांति यह स्पष्ट है कि एकतावाद मनुष्य-स्वभाव की अत्यन्त गहरी आकांक्षाओं के विरुद्ध है। इसमें न धर्म के

---

१. History of Philosophy.

लिये और न सदाचार या नैतिकता के लिये कोई स्थान है। न इससे संसार की विषमता तथा पाप पुण्य की ही व्याख्या हो सकती है। यह बुद्धि को भी पूरा सन्तोष नहीं दे सकता। इसलिये, आत्मा को परमात्मा स अभिन्न मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

एक अन्य प्रकार का एकतावाद भी है जो परमात्मा से आत्मा को अभिन्न तो नहीं मानता, परन्तु उसे परमात्मा द्वारा सृष्ट मानता है। ईसाई लोग कहते हैं कि परमात्मा ने अभाव में से आत्मा तथा संसार के पदार्थों को उत्पन्न किया है। इसे 'अभाव से सृष्ट्युत्पत्ति' का सिद्धान्त कहते हैं। परन्तु यह समझ में नहीं आता कि अभाव से सृष्टि की उत्पत्ति हो कैसे जाती है। अभाव से सृष्टि के उत्पन्न होने का यह अभिप्राय है कि परमात्मा में से उत्पत्ति होती है। परमात्मा में से उत्पत्ति का होना एक प्रकार का अद्वैतवाद ही है। इस दृष्टि से, इस में भी वे सब दोष उपस्थित होने चाहिएं जो अद्वैतवाद में हैं। ईसाइयत के इतिहास में भी हम देखते हैं कि इस धर्म में अनेकवार अद्वैतवाद की ओर झुकाव उत्पन्न हुवा परन्तु तर्क की परवाह न करते हुए ऐसे आन्दोलनों को दबाने की भरसक कोशिश की गई।

यदि आत्मा परमात्मा द्वारा सृष्ट हों तो उनके पापों और दोषों के लिए भी परमामा को ही ज़िम्मेवार होना पड़ेगा। आत्माओं में स्वतन्त्रकर्त्तृत्व नहीं होगा,

उनकी शक्तियों, त्रुटियों और प्रवृत्तियों का स्रोत परमात्मा को मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में, मनुष्यों की विषमता की भी युक्तियुक्त व्याख्या नहीं की जा सकती। जब परमात्मा ने सब मनुष्यों को उत्पन्न किया है तो उनकी विषमताओं का कारण भी परमात्मा को ही होना चाहिए। इस प्रकार, विषमता न्यायोचित न होगी। जो लोग दुःखी हैं उन्हें अकारण ही, बिना उनके अपने दोषों के, दुःख मिल रहा है—यह मानना होगा। जो आत्मा को अनादि मानते हैं वे विषमताओं का कारण आत्माओं के पूर्वजन्म के कर्मफल और संस्कारों को बतला सकते हैं। उनके सिद्धान्त के अनुसार, विषमताएं न्याय पर आश्रित हैं। आत्माओं को सृष्ट मानने वाले यदि पुनर्जन्म को भी मान लें तो भी वे उक्त आक्षेप से बच नहीं सकते। पुनर्जन्म मानने पर भी प्रथम जन्म के कर्म तथा सुख दुःखों की व्याख्या नहीं होती। अर्थात्, प्रथम जन्म के कर्म तथा सुख दुःख परमात्मा द्वारा प्रदत्त योग्यताओं और प्रवृत्तियों के ही परिणाम होंगे, अतः आगामी जन्मों में भी इन कर्मों के फल-स्वरूप उत्पन्न होने वाली विषमताओं का कारण परमात्मा ही ठहरेगा। आगामी जन्मों में आत्मा का स्वभाव भी पहले जन्म के स्वभाव और कर्मों पर आश्रित होगा। इस प्रकार, प्रत्येक जन्म की विषमताओं का कारण परमात्मा ही होगा। ईसाई लोग इन विषमताओं का कारण परमात्मा की स्वतन्त्र इच्छा को बताते हैं। परन्तु ऐसी स्वतन्त्र इच्छा, जो न्याय के

अनुकूल नहीं चलती, क्या परमात्मा में हो सकती है ?परमा मा में उच्छृङ्खल इच्छा को मानना उसे गिराना है।

इसके अतिरिक्त, ईसाइयत के सिद्धान्त के विषय में यह भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि परमात्मा ने सृष्टि क्यों उत्पन्न की ? अनादि आत्मा तथा पुनर्जन्म को मानने वालों के पास इस प्रश्न का बहुत अच्छा उत्तर है कि संसारचक्र अनादि है, सृष्टि के बाद प्रलय होती है और प्रलय के पश्चात् परमात्मा फिर सृष्टि करता है, आत्माओं को उनके पूर्वजन्मों का कर्म-फल देना ही सृष्टि का उद्देश्य है। जो लोग आत्माओं को सादि अर्थात् सृष्ट मानते हैं वे सृष्टि का कारण नहीं बता सकते। ईसाइयत कहती है कि परमात्मा ने प्रेम से प्रेरित होकर सृष्टि-रचना की। परन्तु प्रेम तो उत्पन्न हुई किसी चीज़ के साथ हो सकता है। सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व इस प्रेम का कोई अर्थ नहीं। यदि परमात्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह किसी चीज़ से प्रेम किये बिना रह नहीं सकता, और इसलिये वह विवश होकर सृष्टि को उत्पन्न करता है तो इसका यह अर्थ हुआ कि अपने स्वभाव को सन्तुष्ट करने के लिये परमात्मा को अपने से अतिरिक्त किसी सत्ता के साथ सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है, अर्थात् परमा मा स्वभाव से ही अपने से अतिरिक्त किसी सत्ता पर आश्रित है। यदि परमात्मा विवश होकर अपने प्रेम की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये ही सृष्टि-रचना करता है तो सृष्टि से पूर्व उसकी इस अभिलाषा की क्या दशा

थी ? ईसाइयों के अनुसार, सृष्टि को उत्पन्न हुए केवल ६ हज़ार वर्ष हुए हैं और परमात्मा अनादि है, तो क्या ६ हज़ार वर्ष से पहले परमात्मा में प्रेम न था ?

इस प्रकार, आत्मा को परमात्मा द्वारा सृष्ट अथवा उससे अभिन्न मानने में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। इसलिए, यह सिद्धान्त ठीक है कि आत्मा परमात्मा द्वारा सृष्ट नहीं है और उससे पृथक् है। जो पदार्थ सृष्ट नहीं है वह अवश्यमेव अनादि होगा, क्योंकि अभाव में से, अथवा अपने आप ही कोई पदार्थ पैदा नहीं हो सकता। प्रकृति से भी आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। प्रकृतिवाद के अध्यायों में हम सिद्ध कर चुके हैं कि आत्मा के गुण—इच्छा, प्रयत्न, बुद्धि, सुख, दुःख आदि—प्रकृति-जन्य नहीं हो सकते।

आत्मा की अमरता

आत्मा को न केवल अनादि अपितु अमर भी मानना चाहिये। अमरता में विश्वास मनुष्य-स्वभाव की एक गहरी आकांक्षा है। सब धर्म इसे मानते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार तो यह एक स्वतःसिद्ध सिद्धान्त है कि जो पदार्थ अनादि है वह अनन्त अथवा अमर भी होना ही चाहिये। यदि इस सिद्धान्त को स्वतः सिद्ध न भी माना जाए तो भी यह बहुत सम्भव प्रतीत नहीं होता कि ऐसी चीज़ जो अनादि काल से चली आरही है, उसका नाश हो जाता है। आत्मा के

नष्ट होने का विचार मनुष्य की मृत्यु को देखकर ही हो सकता है। तथापि यदि हम यह याद रखें कि आत्मा अनादि काल से विद्यमान है किन्तु शरीर अनादि नहीं तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आत्मा शरीर से स्वतन्त्र है, और इसलिए शरीर के नाश होने पर भी आत्मा का नाश आवश्यक नहीं। मृत्यु के समय हमें केवल शरीर ही नष्ट होता हुआ दिखाई देता है, आत्मा नहीं। इसके अतिरिक्त, आ मा चित् है, अचित् शरीर के साथ इसका नाश आवश्यक नहीं।

शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी आ मा की सत्ता के कई प्रमाण मिलते हैं। मृत पुरुषों की आत्माएं किसी किसी के सामने प्रकट हो जाया करती हैं, अथवा वे कोई काम कर जाती हैं जिससे उनकी सत्ता का प्रमाण मिलता है। आजकल इस विषय में बहुत अनुसन्धान हो रहा है, मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व को सूचित करने वाली अनेक घटनाएं संगृहीत की गई हैं। एक उदाहरण देखिए:—स्वीडनबर्ग नामक एक यूरोप निवासी की आध्यात्मिक शक्ति संसार-प्रसिद्ध है। इसके जीवन की एक घटना इस प्रकार है:—
"हॉलैण्ड[१] की ओर से स्वीडन में मार्टविल नामक एक राजदूत रहता था। राजदूत की मृत्यु से उसकी पत्नी मैडम डी-मार्टविल विधवा होगई। सन् १७६१ में मैडम मार्टविल को

[१] Mystery of Death by Flammarion Vol III.

एक आदमी ने लिखा कि तुम्हारे पति ने मेरे २५००० फ्लौरिन देने थे वे तुम भेजदो। मार्टविल को मालूम था कि उसके पति ने वह रक़म अदा करदी थी। यदि वह दोबारा अदा करती तो उसे बहुत हानि उठानी पड़ती, जो कि उसके लिये असह्य थी। रक़म अदा करने की रसीद ढूंढने पर न मिली। वह स्वीडन वर्ग के पास गई और आठ दिन बाद स्वप्न में मैडम मार्टबिल को अपना पति नज़र आया। पतिने उसे वह स्थान दिखाया जहां रसीद पड़ी हुई थी। रसीद के साथ बीस हीरों से जड़ा हुआ बालों में लगाने का एक आभूषण भी दिखाया। मैडम मार्ट बिल समझती थी कि वह आभूषण गुम हो चुका है। उस समय रात्रि के दो बज चुके थे। उसकी नींद खुल गई। वह बहुत प्रसन्न थी। निर्दिष्ट स्थान पर ढूंढने से दोनों वस्तुएं मिल गईं। इसके बाद वह सोगई और सुबह के नौ बजे तक सोई रही। ग्यारह बजे स्वीडन बर्ग उससे मिलने आया। गत रात्रि की घटना के विषय में कुछ सुनने से पूर्व उसने मैडम डी मार्टविल से कहा, "गत रात्रि को मुझे तुम्हारा पति दिखाई दिया और उसने मुझ से कहा कि मैं अपनी पत्नी के पास जारहा हूं"।

कई लोग मृत पुरुषों या प्रेतात्माओं से बातचीत करने का दावा करते हैं। कई व्यक्ति ऐसी चेष्टाएं करने लगते हैं मानों उनके अन्दर किसी मृत पुरुष का आत्मा आगया हो, वे अपने जीवन को भूल जाते हैं और उस मृत पुरुष के

जीवन की गुप्त बातों का भी ज्ञान प्रकट करते हैं और ऐसी बातें करते हैं मानो वह स्वयं वह मृत पुरुष हैं। कई लोगों का हाथ, ढीला छोड़ने पर, उनकी इच्छा के बिना ही किसी मृत पुरुष की तरफ़ से सदेश लिखना आरम्भ कर देता है (Automatic writing) इस पुस्तक के लेखक ने स्वयं एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसकी स्त्री के देहान्त को दो वर्ष बीत गये थे, परन्तु उसे विश्वास था कि उसकी स्त्री की आत्मा रात के नौ और दस बजे के बीच में आती है, और उसके हाथ द्वारा संदेश लिखती है, कई वार वह दूसरे आत्माओं को भी अपने साथ ले आती है और वे भी संदेश लिखती हैं। इस व्यक्ति ने कई पुस्तकें छपवाई हैं जिन में ये संदेश अक्षरशः अंकित हैं। इसने एक गीता भी संदेश के रूप में लिखी हुई है। यह गीता संदेशों के कथनानुसार प्रेतात्माओं के संसार की गीता है। इसमें १८ के स्थान पर २४ अध्याय हैं। उक्त महाशय का नाम ए. पी. मथरानी है। ये शिकारपुर सिन्ध में एञ्जिनीयर हैं। कई लोगों का विचार है कि ऐसी घटनाएं अमरता के सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं। एक भिन्न प्रकार का उदाहरण निम्नलिखित है—'लारन्सी[1] वैनस नाम की एक लड़की जिस की आयु १४ वर्ष की थी बाटसेका (अमरिका) नगर में अपने मां बाप के साथ रहती थी। उनके घर के पास

---

१. Principles of psychology by W. James Vol. 1

ही रौफ़ नामक एक व्यक्ति का परिवार रहता था। उस की लड़की मेरी रौफ़ १२ वर्ष हुए मर चुकी थी। एक दिन लारन्सी कहने लगी कि मैं मेरी-रौफ़ हूं, और बार बार अनुरोध करने लगी कि मैं रौफ़ के घर जाऊंगी, वह मेरा घर है। एक सप्ताह भर के अनुरोध से प्रभावित होकर रौफ़ उसको अपने घर ले गया। वहां वह सर्वथा प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होती थी। नए परिवार के सब लोगों को पहिचानती और अपना बन्धु समझती थी परन्तु अपने वास्तविक परिवार के लोगों को बेगाने समझती थी। मृत मेरी के जीवन की सब घटनाएं उसे याद थीं। वह सब प्रकार से रौफ़ की लड़की का सा व्यवहार करती थीं। इस अवस्था परिवर्तन के आरम्भ में उस की अपनी भविष्य-वाणी के अनुसार, चौदह सप्ताह के पश्चात् लारन्सी की अपनी पहली अवस्था फिर लौट आई। अब वह रौफ़ परिवार के लोगों को बेगाने समझने लगी और अपने वास्तविक मां, बाप, भाई, बहिनों को अपना समझने लगी। उस ने अपने मां बाप के घर जाने की इच्छा प्रकट की। घर पहुंच कर वह अपने घर वालों से अत्यन्त प्रेम से मिली। अपने बाप के गले से चिपट गई और उसे अनेक वार चूमा। लारन्सी का स्वभाव आदतें और स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा बहुत अच्छे होगये'।

यदि इस शरीर के नाश के साथ ही आत्मा के भी नष्ट हो जाने का कोई प्रमाण न मिले, प्रत्युत इस बात का

प्रमाण मिल जाए कि शरीर-नाश के पश्चात् भी आत्मा का अस्तित्व रहता है, तो यह मानने के लिये कि कभी किसी अवस्था में आत्मा का नाश हो सकता है, एक अत्यन्त प्रबल प्रमाण की आवश्यकता है। परन्तु, ऐसा कोई प्रमाण मिलता नहीं। एक और दृष्टि से भी आत्मा के नाश की कल्पना नहीं की जासकती। जिस प्रकार अभाव से भाव नहीं हो सकता, इसी प्रकार भाव से अभाव अथवा किसी सत्य पदार्थ का सर्वथा नाश भी नहीं हो सकता। संसार में हमें जो नाश दिखाई देता है वह केवल अवयव-विभाग के रूप में ही होता है। किसी घर के नष्ट होने का अभिप्राय उसके ईंट, पत्थर, चूने, गारे आदि का अलग अलग होजाना है। नाश की इस प्रक्रिया में कोई वस्तु बिल्कुल नष्ट नहीं होती, किन्तु जिन अवयवों से मिलकर वह बनी होती है वे अलग २ होजाते हैं। आत्मवाद का विरोधी—विज्ञान—भी इसके अतिरिक्त नाश का कोई स्वरूप नहीं स्वीकार करता। नाश के इस स्वरूप के अनुसार, निरवयव पदार्थ का नाश नहीं होसकता, क्योंकि इसमें अवयव-विभाग नहीं हो सकता, और अवयव-विभाग के अतिरिक्त नाश का कोई अर्थ नहीं। आत्मवादी आत्मा को निरवयव मानते हैं, इसलिये आत्मा अविनाश्य है अर्थात् अनन्त और अमर है।

यदि यह प्रश्न किया जाए कि आत्मा को निरवयव क्यों मानें, तो इसका उत्तर यह है कि यदि आत्मा सावयव हो तो

अपनी बहुत सी क्रियाओं को करने में अशक्त हो जाएगा। यदि आत्मा के अवयव हों तो एक को 'क' का ज्ञान होगा, दूसरे को 'ख' का। ऐसी अवस्था में दोनों ज्ञानों की तुलना कैसे हो सकेगी ? तुलना तो तभी हो सकती है जब दोनों ज्ञानों का ज्ञाता एक ही हो। इसी प्रकार, आत्मा में किसी पदार्थ के रूप, रस, गन्ध आदि अनेक गुणों का ज्ञान विविध इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हो जाता है। किसी पदार्थ के ज्ञान में भिन्न-भिन्न गुणों का ज्ञान संग्रहीत होता है। परन्तु, आत्मा के सावयव होने की अवस्था में एक अवयव को रूप का ज्ञान होगा तो दूसरे को गन्ध का, परिणाम यह होगा कि अनेक अवयवों के ज्ञान के सम्मिलित न होने से पदार्थ का एक सर्वतोमुख ज्ञान उत्पन्न न हो सकेगा। अनेक ज्ञान तभी सम्मिलित हो सकते हैं जब एक अविभाज्य और निरवयव सत्ता उन्हें इकठ्ठा जानने वाली हो। यदि वह सत्ता अविभाज्य और निरवयव है तो वह अविनाश्य और अमर भी होनी ही चाहिये।

आत्मा का आवागमन

आत्मा के विषय में यह मानना कि वह अनेक जन्मों में से गुज़रती है, अत्यन्त युक्तियुक्त है। इससे कई बातें समझ में आ जाती हैं जिनकी किसी दूसरे प्रकार से अच्छी व्याख्या नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, सब मनुष्यों में

बाल्य-काल से ही योग्यता और रुचि के भेद दिखाई देते हैं। कइयों को व्यापार में रुचि होती है, कई विद्या या युद्धकला में अपनी योग्यता दिखाते हैं। कई आदमियों में बचपन से असाधारण प्रतिभा नज़र आती है, वे बिना सिखाये ही बहुत कुछ सीख जाते हैं। कई मनुष्य बाल्यकाल से ही रागविद्या में विशेष योग्यता दिखाते हैं तो कई गणित ज्योतिष इत्यादि विषयों में। इस प्रकार के भेदों का कारण यदि पूर्वजन्म के अभ्यास को मान लिया जाए तो इनकी बहुत अच्छी व्याख्या हो जाती है। ऐसा मानने से इन भेदों में किसी प्रकार की असाधारणता नहीं रहती। जिस प्रकार इस जन्म में अभ्यास के परिणामस्वरूप किसी विषय में विशेष योग्यता प्राप्त की जा सकती है, इसी प्रकार बचपन से प्रकट होने वाली विशेष योग्यता पूर्व जन्म के अभ्यास का परिणाम हो सकती है। इस प्रकार, बचपन की असाधारण योग्यताएं आश्चर्य की कोटि से निकल कर स्वाभाविक प्रतीत होने लगती हैं। असाधारण और साधारण योग्यताओं में केवल अभ्यास के समय का अन्तर है। असाधारण योग्यताओं के अभ्यास का समय पूर्वजन्म है और साधारण योग्यताओं के अभ्यास का समय वर्त्तमान जन्म है।

कई वार पहली वार देखने से ही किसी मनुष्य को किसी अन्य मनुष्य से प्रेम अथवा घृणा हो जाती है। इस प्रकार की घटनाओं का कारण यदि पूर्वजन्म की मैत्री या

शत्रुता को मान लिया जाए तो इन घटनाओं की एक सामान्य नियम से व्याख्या हो जाएगी। इस सामान्य नियम को हम प्रतिदिन चरितार्थ होता हुआ देखते हैं, मैत्री से प्रेम होता है तथा शत्रुता से घृणा। इस जन्म में जो आकस्मिक घृणा या प्रेम होते हैं उसका आधार पूर्वजन्म की मैत्री या शत्रुता को मानने से ये एक सामान्य नियम के उदाहरण बन जायेंगे और इनमें कोई नवीनता या विशेषता न रहेगी।

कभी कभी ऐसे मनुष्य भी दृष्टिगोचर होते हैं जिन्हें अपने पूर्वजन्म की स्मृति होती है, अथवा किसी प्रकार के चिह्नों द्वारा पूर्वजन्म का प्रमाण देते हैं। इस प्रकार के समाचार प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए आज ही एक ख़बर मिली है—

लाहौर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र 'प्रकाश' के २८ जनवरी १६४० के अंक में एक समाचार था जिसका संक्षेप निम्नलिखित है—'चीनी बौद्धों का धार्मिक गुरु दलाई लामा होता है जो तिब्बत का शासक भी माना जाता है। पांच वर्ष हुए दलाई लामा की मृत्यु हो गई थी। दलाई लामा के नाइब ताशीलामा तथा चीन, जापान, ब्रह्मा और तिब्बत के बौद्ध लोग दलाई लामा की तलाश में थे, क्योंकि उनका विश्वास है कि जिस समय तिब्बत में दलाईलामा की मृत्यु होती है उसी समय उसका किसी स्थान पर पुनर्जन्म हो जाता है और वह पैदा होते ही बातचीत करने लगता है तथा कुछ

और नियत विचित्र और असाधारण चिह्न प्रकट करता है। पांच वर्ष की खोज में अब तक यह नियत चिह्न नहीं मिले थे। स्वयं ताशीलामा ढूंढते फिरते थे। परन्तु अब चीन देश में वह बालक मिल गया है जिसने पैदा होते ही बात की थी। अन्य सब नियत चिह्न भी उसमें विद्यमान थे। प्रथानुसार वह बालक बड़ी शान-शौकत से तिब्बत में लाया गया है। बालक की आयु ५ वर्ष की है'।

ये सब प्रमाण आवागमन अथवा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

आत्मा का परिमाण

आत्मा के सम्बन्ध में एक और प्रश्न यह है कि आत्मा की लम्बाई चौड़ाई अथवा परिमाण क्या है? पाश्चात्य विचारक तो इस प्रश्न की सर्वथा उपेक्षा करते प्रतीत होते हैं। उनके मतानुसार, आत्मा विस्तार रहित पदार्थ है, अतः यह प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है कि उसका परिमाण क्या है। यह प्रश्न इसी प्रकार का है जैसे कोई पूछे कि अमुक शब्द का रंग क्या है? अथवा वर्ण-व्यवस्था की प्रतिघण्टा गति क्या है? आत्मा स्थान घेरने वाली चीज़ नहीं है, केवल प्रकृति ही स्थान घेरती है, इसलिए आत्मा के विषय में परिमाण का प्रश्न लागू नहीं होता। आत्मा एक चित् सत्ता है, इसका गुण विचार है विस्तार नहीं। भारतीय दर्शन आत्मा का परिमाण मानते हैं।

यह परिमाण भिन्न भिन्न दर्शनों के अनुसार तीन प्रकार का है:—

(१) अणु अर्थात् छोटे से छोटा परिमाण।

(२) मध्यम अर्थात् सांसारिक पदार्थों के समान संकुचित और विकसित होने वाला परिमाण।

(३) विभु अर्थात् अधिक से अधिक विस्तृत, आकाश की तरह सर्वत्र व्याप्त होने वाला।

इन तीनों मतों के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यदि मध्यम परिमाण माना जाए तो सबसे बड़ी कठिनाई यह होगी कि विविध योनियों के भिन्न भिन्न परिमाण वाले शरीरों में आत्मा कैसे प्रविष्ट हो सकेगी। मनुष्य का शरीर आयु के साथ बढ़ता रहता है जबकि आत्मा वही रहती है। ऐसी अवस्था में जो आत्मा बचपन में सम्पूर्ण शरीर में होगी वह यौवन काल में शरीर के एक भाग में रह जाएगी। परन्तु मध्यम परिमाण मानने वालों का मुख्य प्रयोजन तो यही है कि आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होने से शरीर के सब भागों का ज्ञान प्राप्त कर सके। यदि आत्मा को संकोच-विकासशाली अर्थात् घटने बढ़ने वाली मान लिया जाए तो वह अपरिवर्तनशील और नित्य नहीं हो सकती। अपरिवर्तन-शील न होने पर आत्मा परिवर्तनशील चेतनता का आधार भी नहीं बन सकती, न ही कर्मफल भोगने के योग्य हो सकती है।

आत्मा यदि विभु अथवा सर्वत्र व्याप्त हो तो अनेक आत्मा एक साथ कैसे विभु हो सकते हैं ? अर्थात् सब एक ही स्थान में कैसे रह सकते हैं ? यहां यह आशंका हो सकती है कि वायु आकाश (ईथर) और विद्युत् इकट्ठे एक ही स्थान में रहते हैं। इस आशंका का समाधान यह है कि विद्युत् स्वयं कोई पदार्थ नहीं, प्रत्युत् प्रकृति की एक विशेष अवस्था का नाम है। कई लोग विद्युत को एक शक्ति मानते हैं। उस अवस्था में यह एक भौतिक पदार्थ न होगी अतः यह सर्वथा विस्तार-रहित होगी और इसलिए यह प्रश्न न उठ सकेगा कि विद्युत और अन्य पदार्थ एक ही स्थान में कैसे रह सकते हैं। वायु और आकाश (ईथर) सूक्ष्म प्रकार की प्रकृति हैं, इसलिये स्थूल पदार्थों के साथ रह सकते हैं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वायु और आकाश अन्य पदार्थों के साथ एक ही स्थान में रह सकते हैं। प्राकृतिक पदार्थ अवयवों से बने हुए हैं, इन अवयवों के बीच छोटे छोटे अन्तर हैं, इन छोटे छोटे अन्तरों में सूक्ष्म प्रकार की प्रकृति वायु आकाश (ईथर) आदि के रूप में रह सकती है। परन्तु इसके विपरीत, आत्मा तो अवयवों से बनी हुई है नहीं। उसके अवयवों के बीच में छोटे छोटे अन्तर नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, सब आत्मा एक समान सूक्ष्म हैं, इसलिये एक ही स्थान में एक से अधिक आत्मा इकट्ठी नहीं रह सकतीं।

आत्मा को विभु मानने से कुछ घटनाओं की व्याख्या तो अवश्य होजाती है। आधुनिक अधुसन्धान से यह मालूम हुआ है कि कई मनुष्य विशेष अवस्थाओं में हज़ारों मील दूर की चीज़ों को या कमरों अथवा सन्दूकों में बन्द चीज़ों को देख और सुन सकते हैं (अव्याहत दर्शन, Clairvoyance and Clairaudience)। इस प्रकार की कई असाधारण शक्तियां कुछ मनुष्यों में सम्मोहन (Hypnotism) द्वारा लाई जासकती हैं। कुछ मनुष्यों में स्वाभाविक तौर पर भी समय समय पर प्रकट होती हैं। ये शक्तियां इन्द्रियों के सामर्थ्य से बाहर हैं। आत्मा को विभु मानने से इनकी सरलता से व्याख्या हो सकती है। आत्मा यदि सर्वत्र व्याप्त है तो उसे संसार की दूर से दूर स्थित वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है। साधारणतया आत्मा शरीर में बद्ध होने से इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकती है, परन्तु विशेष समयों में शरीर अथवा इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त हो जाती है। इस अवस्था में वह बहुत दूर से भी देख तथा सुन सकती है, किसी किसी मनुष्य को कभी कभी सुदूर-स्थित किसी दूसरे मनुष्य की तीव्र मानसिक अवस्था का (Telepathy) अथवा किसी दूसरे मनुष्य के विचारों का (Thought Transference) ज्ञान भी हो सकता है।

आत्मा को अणु मानने वाले विभुत्व का खण्डन इस प्रकार करते हैं कि यदि आत्मा विभु हो तो उसके

आवागमन का कुछ अर्थ नहीं। प्रत्येक आत्मा जब नित्य रूप से सब शरीरों में विद्यमान है ही, तो उसके एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जाने का कुछ अभिप्राय नहीं। विभुवाद के अनुसार, आत्मा का किसी शरीर से सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता, इस अवस्था में मृत्यु भी असम्भव है। इसके अतिरिक्त, आत्मा का किसी विशेष शरीर से भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये क्योंकि विभु होने से आत्मा का संसार के समस्त शरीरों से अविशेष सम्बन्ध है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि विशेष मन के साथ संयोग होने के कारण आत्मा का किसी विशेष शरीर के साथ सम्बन्ध होता है, क्योंकि विभु आत्मा के लिये सब मन भी समान हैं तब किसी एक मन के साथ विशेष संयोग क्यों हो ? विभु आत्मा के स्वर्ग या मोक्ष में जाने का भी कुछ तात्पर्य नहीं है, क्योंकि वह तो सदा सर्वत्र विद्यमान है। इसी प्रकार, "मैं जाता हूं", 'मैं खड़ा हूं' इत्यादि प्रयोगों में विभुवाद के अनुसार 'मैं' से आत्मा का ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि विभु आत्मा के जाने और खड़े होने का कोई मतलब नहीं है ; और 'मैं' से केवल शरीर का ग्रहण करना प्रकृतिवादी चार्वाक का दृष्टि-कोण है।

इस प्रकार, कई दार्शनिक अणु परिमाण मानते हैं। खुजली होना, कांटा चुभना इत्यादि हालतों में सुख दुःख आदि का अनुभव किसी एक स्थान में परिमित होता है। इसके विरुद्ध थकावट, रोमाञ्च, बुखार आदि कई अनुभव सम्पूर्ण

शरीर में होते हैं। यदि आत्मा अणु हो तो सारे शरीर का एक साथ अनुभव कैसे हो सकता है ? एक बिन्दु से अधिक स्थान का भी एक समय में अनुभव नहीं होना चाहिये। श्री शङ्कराचार्य के मतानुसार, 'स्थान से परिमित पदार्थ नित्य भी नहीं हो सकता'। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिमाण विषयक तीनों मतों के पक्ष और विपक्ष में युक्तियां दी जाती हैं। परन्तु अणु परिमाण पर कम से कम आक्षेप प्रतीत होते हैं और जो हैं वे बहुत बड़े नहीं प्रतीत होते। उदाहरण के लिये, अणु आत्मा को एक साथ सारे शरीर का अनुभव कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि आत्मा एक आध्यात्मिक सत्ता है अतः दूरी उसके लिए कोई बाधा नहीं है। हम देखते हैं कि भौतिक सत्ताओं के लिए भी दूरी कोई बाधा नहीं है:—चुम्बक दूर से लोहे को खींचता है, बिजली बादलों में से ज़मीन की चीजों पर प्रभाव डालती है, सूर्य लगभग नौ करोड़ मील से पृथिवी को खींच रहा है। ऐसी अवस्था में, एक आध्यात्मिक सत्ता के लिए तो दूरी कुछ भी बाधा नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, आत्मा को विभु मानने से भी यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि सारे शरीर का एक साथ ज्ञान कैसे होता है। विभु होने का केवल यही परिणाम होगा कि आत्मा सारे शरीर को स्पर्श कर सकेगी। परन्तु स्पर्श से ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? स्पर्श क्या कर देता है जिससे ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ? यदि स्पर्श ही से ज्ञान

उत्पन्न होता हो तो विभु आत्मा प्रतिक्षण प्रत्येक चीज़ को स्पर्श कर रहा है, अतः इसे प्रत्येक चीज़ का ज्ञान सदा होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं। ज्ञान की व्याख्या आत्मा की किसी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा हो सकती है स्पर्श द्वारा नहीं। परन्तु आध्यात्मिक शक्ति अणु[1] आत्मा में भी रह सकती है।

१- अणु परिमाण छोटे से छोटा परिमाण है। यदि इसका अर्थ एक ज्यामितिक बिन्दु (Geometrical point) जैसा परिमाण मान लिया जाए तो भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का समन्वय भी हो सकता है, क्योंकि ज्यामितिक बिन्दु की केवल स्थिति होती है लम्बाई और चौड़ाई नहीं और पाश्चात्य विचार भी आत्मा को विस्तार रहित मानता है। अणु परिमाण का ऐसा अर्थ संभव है क्योंकि किसी चीज़ में जब तक लम्बाई चौड़ाई है उसका विभाजन हो सकता है, और जिसका विभाजन हो सकता है वह छोटी से छोटी और एक देशीय नहीं है। किन्तु अणु परिमाण छोटे से छोटा परिमाण है।
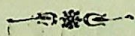
ग्यारहवां अध्याय

उपचेतना

(Secondary Consciousness)

आजकल मनोवैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा मनुष्य की अनेक असाधारण शक्तियों का पता लगा है। अनेक मनोवैज्ञानिक इन असाधारण शक्तियों के आधार पर मनुष्यों की साधारण चेतनता के अतिरिक्त एक उपचेतना की सत्ता भी मानने लगे हैं। हम पहले कह चुके हैं कि उपचेतना की व्याख्या आत्मा की सत्ता को मानने से ही हो सकती है। अब हम कुछ विस्तार-पूर्वक लिखने का यत्न करेंगे कि उपचेतना की सत्ता के लिए क्या क्या प्रमाण दिये जाते हैं, और उसकी किस प्रकार की शक्तियां मानी जाती हैं।

प्रत्येक मनुष्य को अपने अन्दर एक चेतना-प्रवाह या विचार-धारा का अनुभव होता है। मनुष्य कभी सुख अनुभव करता है कभी दुःख, कभी वह तर्क-वितर्क, कल्पना अथवा

सन्देह करता है और कभी निश्चय तथा प्रयत्न करता है। ऐसी प्रक्रियायें कम से कम जाग्रत अवस्था में तो निरन्तर होती ही रहती हैं। आजकल अनेक मनोवैज्ञानिक लोगों का विचार है कि मनुष्य जीवन की अनेक घटनाएं सिद्ध करती हैं कि साधारण चेतनता-प्रवाह के अतिरिक्त एक और भी चेतनता-प्रवाह मनुष्य में है जो साधारणतया गुप्त रहता है, परन्तु विशेष अवस्थाओं में प्रकट रूप में आ जाता है; और गुप्त रहता हुआ भी वह मनुष्य के आचार तथा व्यक्तित्व पर अनेक प्रभाव डालता रहता है। यह किसी मनुष्य में कम विकसित होता है और किसी में अधिक। इसको उपचेतना का नाम दिया गया है।

उपचेतना के प्रमाण

(१) एकान्तर व्यक्तित्व

उपचेतनता की सत्ता का एक प्रमाण यह है कि कई मनुष्यों में कभी कभी साधारण व्यक्तित्व के अतिरिक्त एक और व्यक्तित्व भी प्रकट होजाता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। जरनल ऑफ अमेरिकन मैडिकल एसोसिएशन के ३० नवम्बर, १८६५ के अंक में एक समाचार छपा था जिस का सार निम्नलिखित है:— 'एल्मा नाम की एक बुद्धिमती और हृष्ट पुष्ट लड़की थी। स्कूल के परिश्रम के कारण और घर में अपने रोगी पिता की सेवा के कारण वह बहुत बीमार

होगई। दो वर्ष की बीमारी के पश्चात् उस में एक नई व्यक्ति प्रकट हुई जो अपना एक अलग नाम बताती थी और कहती थ कि मैं रोगी एल्मा की सहायता के लिए आई हूं। रोगी व्यक्ति अत्यन्त निर्बल थी, वह प्रायः बेहोश होजाती थी, उसे नींद नहीं आती थी और अजीर्ण भी रहता था, परन्तु जब दूसरी अवस्था (व्यक्ति) आती थी तो वह सर्वथा भिन्न होती थी। वह अच्छी तरह बातें करती थी, खूब खाती पीती थी और कभी बेहोश नहीं होती थी। इस प्रकार एल्मा के शरीर में कभी पहली व्यक्ति प्रकट हो जाती थी कभी दूसरी। पहली को दूसरी की कोई बात स्मरण नहीं होती थी, और दूसरी पहली को अपने से भिन्न समझती थी'।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जासकते हैं। इन से पता लगता है कि किसी एक मनुष्य में दो अवस्थाओं का होना भी सम्भव है। दोनों की चेतनताएं परस्पर सर्वथा भिन्न होती हैं जिससे दोनों व्यक्तियों को एक दूसरे की कोई बातें ज्ञात नहीं होतीं, और एक दूसरे के सम्बन्ध में कोई स्मृति भी नहीं होती।

(२) असाधारण प्रतिभा

असाधारण प्रतिभा के उदाहरण भी साधारण से अतिरिक्त एक और चेतनता-प्रवाह की ओर संकेत करते हैं।

उदाहरण के लिए, बिडर[1] नाम का एक व्यक्ति था जो किसी भी संख्या का घातांकगणन (Logarithm) दशमलव के सात आठ स्थानों तक बिना सोचे कर सकता था, किसी दी हुई संख्या के टुकड़े या खण्ड झट कर देता था। एक बार उसे १७८६१ की संख्या दी गई। उसने तुरन्त बता दिया कि इस के टुकड़े ३३७ और ५३ हैं, परन्तु वह यह नहीं बता सकता था कि वह उक्त परिणाम पर किस प्रकार पहुंच गया।

एक और लड़का जिसका नाम डेस[1] था, इतना मन्द-बुद्धि था कि उसके अध्यापक उसे गणित पढ़ाने में सर्वथा असफल रहे। वह यूक्लिड का पहला साध्य भी नहीं समझ सका, और किसी भाषा का एक शब्द भी न सीख सका। परन्तु गणना करने की उसमें ऐसी असाधारण शक्ति थी कि हैम्बर्ग की एकेडमी ऑाफ साइन्स ने उसे एक छात्र-वृत्ति देनी आरम्भ की और उसने थोड़े ही काल में साठ लाख और अस्सी लाख के बीच की सब विभाज्य संख्याओं के खण्ड बना दिए और शेष अविभाज्य संख्याओं की एक सूची बना दी। यह काम एक बड़ा गणितज्ञ आयुभर में भी नहीं कर सकता।

गौस[1] नाम का एक लड़का स्कूल में पढ़ता था। अध्यापक ने एक ऐसा प्रश्न लिखाया जिस पर

---

१. Human Personality by Myers.

श्रेणी को एक घण्टा लगना था। गौस को इस प्रश्न की क्रिया न आती थी और न ही उस में ऐसी लम्बी क्रिया के लिए धैर्य था। परन्तु उसने आधे मिनट में प्रश्न का शुद्ध उत्तर लिख कर स्लेट नीचे रखदी। एक लम्बी गणना चेतनता द्वारा ही हो सकती है, परन्तु ऊपर लिखे उदाहरणों में यह स्पष्ट है कि गणना साधारण चेतनता द्वारा नहीं होती थी। अत: मानना पड़ेगा कि कोई दूसरी चेतनता इस काम को करती थी, जब कि साधारण चेतनता इसे करने में अशक्त थी। इससे यह भी प्रतीत होता है कि इस दूसरी चेतनता में कुछ असाधारण शक्तियां थीं।

(३) निद्रा (Sleep)

निद्रा की अवस्था में भी, जो प्रत्येक मनुष्य में प्रतिदिन आती है, एक असाधारण चेतनता प्रकट होती प्रतीत होती है। यदि कोई मनुष्य यह दृढ़ संकल्प करके सोए कि मैं अमुक समय जागूंगा तो प्राय: उसकी नींद ठीक उसी समय खुलती है। इससे प्रतीत होता है कि किसी चेतनता में इस संकल्प की स्मृति है और वह समय का ध्यान रख रही है, वही ठीक समय पर जगा देती है। परन्तु जागने पर इस सम्बन्ध में होने वाली किसी मानसिक प्रक्रिया की स्मृति नहीं होती। इससे

१. Human Personality by Myers.

सिद्ध होता है कि वह मानसिक प्रक्रिया किसी अतिरिक्त चेतनता द्वारा हुई होगी जो निद्रा के समय काम कर रही थी। कई बा' ऐसा होता है कि किसी प्रश्न का हल नहीं सूझता, मनुष्य सोचता हुआ सो जाता है। जब वह सवेरे उठता है तो उसे मालूम होता है कि उस प्रश्न को उसने हल कर लिया है। उसका हल उस मनुष्य के मन में होता है। अब यह हल बिना चेतनता के हो नहीं सकता। साधारण चेतनता ने इसे हल किया नहीं, अन्यथा जागने पर उसे हल करने की स्मृति होनी चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि हल करने का काम निद्रा की अवस्था में किसी दूसरी चेतनता ने किया। कई कवियों को कभी २ कोई अभीष्ट पंक्ति अथवा समस्या-पूर्ति नहीं सूझती, किन्तु प्रातः उठने पर वह कठिनाई हल हुई होती है। प्रसिद्ध लेखक स्टीवनसन (R.L. Stevenson) को अपने सब उपन्यासों की कथाओं की रूप-रेखा स्वप्न में मिल जाती थी।

कई बार स्वप्न में दूर की घटनाओं का ज्ञान होजाता है:— 'कोल्हापुर'[1] में म० गोलविदेकर नामक एक घराना है। शक १८५६ (ई० स०१८६४) में उस घराने में चार भाई और एक माता इतने कुल मनुष्य थे। भाइयों के क्रमपूर्वक नाम पं० प्रभाकर पंत, वासुदेव, दत्तोपंत और

---

१. 'शिव संकल्प का विजय' लेखक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर पृष्ठ २७

नारायणराव हैं, और माता का नाम श्रीमती रुकमणिबाई है। इनमें सबसे ज्येष्ठ भ्राता पं० प्रभाकर पंत कोल्हापुर से चार पांच मील दूर अपने कोर्ली ग्राम में घरवाड़ी की व्यवस्था करता हुआ रहता था और शेष तीन भाई अपनी बृद्ध माता जी के साथ कोल्हापुर नगर में रहा करते थे। उक्त वर्ष के वैशाख द्वितीया के दिन रात्रि के तीन बजे के समय उक्त माता जी को स्वप्न (ख़्वाब) आया, जिसमें उन्होंने देखा कि अपने ज्येष्ठ पुत्र के मकान में दीवार तोड़कर एक चोर, वैरागी के वेश में घुस गया है, अपना पुत्र सोया पड़ा है और उस निद्रित पुत्र के सिर पर उस चोर ने अपने लोहे के चिमटे का आघात किया है, जिससे पुत्र मर चुका है। यह स्वप्न देखते ही वह रोती हुई उठी और उसने स्वप्न का वृत्तान्त सबको बता दिया। सबने कहा कि स्वप्न ही है, उसमें विचार क्या करना है। इसके पश्चात् दो घण्टों के अन्दर उस कोर्ली ग्राम से पं० प्रभाकरपंत का नौकर आगया और उसने वही बात ठीक उसी प्रकार कही। तब जाकर निश्चय हुआ कि स्वप्न की बात बिलकुल ठीक थी।'

कई बार अत्यन्त दूर रहने वाले किसी इष्ट जन की मानसिक[१] अवस्था का ज्ञान स्वप्न में (अथवा जाग्रत अवस्था में) होजाता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी:—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी अपनी पुस्तक 'शिवसंकल्प का विजय' में एक

१. Telepathy.

अपना प्रत्यक्ष देखा हुआ उदाहरण देते हैं जो उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया जाता है:—

'वर्धा नगर की अंग्रेज़ी पाठशाला में म० गोविन्दराव वाबले (बी.ए.एल.टी.) अध्यापक का कार्य कर रहे थे। और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्राबाई, बालक कमल और बालिका लीला के साथ, औंध (जि० सातारा) अपनी माता के घर कुछ दिन विश्राम के लिए आ गई थीं। औंध ग्राम से वर्धा नगर प्रायः छः सौ मील के अन्तर पर है। अर्थात् पतिपत्नी में इस समय छः सौ मील का अन्तर था कि जिस समय निम्न बात होगई। सन् १६१८ का अक्टूबर मास का प्रारम्भ था कि जिस समय श्री चन्द्राबाई जी अपने पति के स्थान पर जाने की तैयारी कर रही थीं और उन्होंने तिथि का निश्चय करके अपने पति को पत्र भी लिखा था कि मैं फ़लाने दिन वर्धा को अवश्य पहुंचूगी। पत्नी के आने का निश्चय करके म० गोविन्दराव जी ने मकान आदि का प्रबन्ध भी सब प्रकार से कर दिया था। इस प्रकार पति पत्नी के मन में परस्पर समागम के प्रेममय विचार उत्पन्न होगये थे और मिलने की आतुरता भी बढ़ गई थी।

यह समय इन्फ्लुएञ्ज़ा बुखार का था। यह जंगी बुख़ार बंबई से पूना होकर औंध पहुंच चुका था और जिस समय धर्मपत्नी के शुभागमन की तिथि का पत्र म० गोविन्दराव जी के हाथ में पहुंचा था, इसके थोड़े दिन पश्चात् ही इधर

धर्मपत्नी अपने लड़के के साथ उस ज्वर से बीमार होगई थी, तथा उनके मकान के सब लोग उसी ज्वर से बीमार पड़े थे। धर्मपत्नी के मन में जो पति-दर्शन की आतुरता थी, वह ऐसे समय में हद से अधिक बढ़ना सम्भव है। परन्तु बेचारी कर क्या सकती थी! घर के लोग सभी बीमार पड़े थे इसलिए अपनी बीमारी का वृत्तान्त भी पत्र द्वारा पति को विदित करना उनको असंभव होगया। अर्थात् इनकी बीमारी की कोई ख़बर म० गोविन्दराव जी को न थी और वे इनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे और भावी सुख की कल्पनाओं में मग्न थे।

शुक्रवार ता० ४ अक्टूबर तक म० गोविन्दराव जी के मन में पूर्वोक्त सुखमय कल्पना ही रही। शनिवार के दिन बिना किसी ख़ास कारण के म० गोविन्दराव जी के मन में भयानक उदासीनता उत्पन्न होगई, संपूर्ण जगत् में जिधर उन की दृष्टि जाती थी, उधर उदासीनता ही उदासीनता उनके सामने खड़ी होने लगी (इस समय पत्नी की बीमारी आरम्भ हुई)। सब मित्र जो उनके प्रतिदिन मिलने जुलने वाले थे, आश्चर्य चकित होगए और उनको नाना प्रकार से समझाने लगे कि अभी तुम्हारी पत्नी आवेगी और यह होगा इत्यादि। परन्तु म० गोविन्दराव की उदासीनता प्रतिक्षण बढ़ने ही लगी।.........
.........सब उनके मित्रों ने यही समझा कि ये महाशय पागल बन गये हैं। परन्तु वास्तविक बात और ही थी।

सोमवार ता० ७ अक्टूबर तक यही अवस्था रही। बीच में

म० गोविन्दराव जी ने छुट्टी लेकर स्वयं औंध जाने का विचार भी किया, परन्तु छुट्टी न मिलने के कारण वे विचारे वर्धा से चल ही न सके। सोमवार के दिन रात्रि के भोजन के पश्चात् म० गोविन्दराव जी अपने बिस्तरे के साथ बैठ ही रहे थे इतने में उनको किञ्चित् मात्र निद्रा आगई, जिस में उनको स्वप्न में अपनी पत्नी की मूर्ति दीखने लगी और उन्होंने स्वप्न में ही ये शब्द सुने कि— "अब रोने से क्या लाभ? मैंने आपसे कई वार कहा था कि आप आकर मुझे ले जाइए अथवा मुझे मिल लीजिए, परन्तु आपने कहां सुना? अब भला रोने से क्या लाभ होगा! जो होना था सो हो चुका"। यह स्वप्न देखते ही म० गोविन्दराव जी के मन में पूरा पूरा निश्चय होगया कि अपनी धर्मपत्नी को सचमुच किसी प्रकार का बड़ा क्लेश है और कदाचित् अब उनके साथ मिलना भी असम्भव होगा। परन्तु रात्रि में इस समय के पश्चात् कोई रेलगाड़ी न जाती थी। इसलिये मंगलवार के दिन तक उनको वहां ही उसी प्रकार की उदासीनता में रहना पड़ा।

मंगलवार के दिन प्रातः काल के समय एक और आश्चर्य हुआ। वह यह कि अपना पुत्र अपने को अपने नाम से पुकार रहा है ऐसा तीन चार वार उन्होंने सुना। पुत्र का परिचित शब्द सुनकर उनको भास हुआ कि पुत्र आदि आगये हैं। परन्तु इधर उधर देखने के पश्चात् विदित हुआ कि वह केवल भ्रम ही था। इतना होने पर भी म० गोविन्दराव और उनके

मित्र यही समझते थे कि ये सब चित्त की भ्रांति के प्रकार हैं। अन्त में बुधवार के दिन उन्होंने वर्धा से औंध को तार दिया और पत्नी की कुशलता का वृत्तान्त पूछा। परन्तु तार का जवाब न आया, जिस से दुःखित होकर वे वर्धा से चल पड़े और औंध पहुंचे। तब उनको पता लगा कि धर्मपत्नी और प्रिय पुत्र इस लोक से क्रमशः उसी रात (स्वप्न के दो तीन घण्टे बाद) और उसी दिन के समय चल बसे कि जिस समय उन्होंने स्वप्न देखा और जिस समय पुत्र के शब्द सुने"।

इस प्रकार, निद्रा की चेतनता कुछ ऐसे काम भी कर सकती है जो साधारण चेतनता की शक्ति से बाहर होते हैं। इस बात की पुष्टि इस सामान्य अनुभव से भी होती है कि थोड़ी देर नींद आजाने से भी थकान दूर होकर ऐसी स्फूर्ति आजाती है जो घण्टों केवल आंख बन्द करके लेटे रहने से नहीं आती। कई वार निद्रावस्था की चेतनता ऐसे रूप में प्रकट होती है कि उसका साधारण चेतनता से भिन्न होना स्पष्ट हो जाता है।

(४) निद्राविहार (Somnambulism)

कई लोग निद्रा की अवस्था में ही उठकर चलने फिरने लगते हैं। इसे निद्राविहार की अवस्था कहते हैं। इसमें कई वार मनुष्य में ऐसी शक्तियां प्रकट होती हैं जो साधारण अवस्था में उस में नहीं होतीं। इस अवस्था में मनुष्य अत्यन्त तंग पहाड़ी मार्गों पर जिनके दोनों ओर गहरी घाटियां हों

बिना डर अनुभव किए चला जाता है। कई मनुष्य इस अवस्था में ऐसी भाषाओं और ऐसे विषयों का ज्ञान प्रकट करते हैं जो उन्हें जाग्रत अवस्था में नहीं होता। जाग्रत् अवस्था में इस दशा की कोई बात याद नहीं रहती। इसमें कई लोग दूरस्थ स्थानों की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, कई अपने और अन्यों के दुस्साध्य गुप्त रोगों का निदान तथा शरीर की अन्तरीय दशा और चिकित्सा बता देते हैं, परन्तु जाग्रत् अवस्था में वे इस काम को ज़रा भी नहीं कर सकते। इन बातों से स्पष्ट है कि निद्रा-विहार-अवस्था की चेतनता जाग्रत् अवस्था की साधारण चेतनता से भिन्न होती है। हम नीचे एक उदाहरण देते हैं जिससे यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी:—

थियोफ़ीली जानीकाड़[1] एक लड़का था जो एक स्कूल (Eecole Normale at Gueret) में पढ़ता भी था और पढ़ाता भी था। उसको आठ दस वर्ष की आयु से स्वप्नविहार के दौरे आते थे। वे कुछ समय तक बन्द रहे किन्तु उन्नीस वर्ष की आयु में पुनः आरम्भ होगए। जून और जूलाई १८५६ के गरम महीनों में उसे रोज़ रात्रि को दौरा होता था। वह सोते सोते उठ बैठता था, बोर्डिंग हाऊस के लम्बे कमरे में चक्कर लगाता था और पढ़ने-वाले कमरे में

---

१. Human Personality by Myers. Vol.I

जाकर अंधेरे में ही पढ़ने लगता था। वह घण्टों बाग में चक्कर लगाता और फिर आकर सोजाता था। एक रात्रि को उसने डायरेक्टर के सोने वाले कमरे का दरवाजा खटखटाया और कहने लगा कि 'मैं अभी वैण्डोमी से आया हूं (वैण्डोमी एक दूसरे शहर का नाम था जहां डायरेक्टर की पत्नी उस समय बच्चों सहित अपने मां बाप के यहां रहती थी) और तुम्हारे परिवार का समाचार लाया हूं। तुम्हारे परिवार के लोग स्वस्थ हैं, और छोटे बच्चे के चार दांत हैं'। डायरेक्टर ने पूछा, "क्या तुम ने उन्हें वैण्डोमी में देखा है ? क्या तुम फिर वापस जा सकते हो और बता सकते हो कि वे अब कहां हैं" ? जानीकाड ने कहा, "ठहरो ! अब मैं वहां पहुंच गया हूं, वे नीचे की मञ्जिल के एक कमरे में सो रहे हैं। उनका बिस्तर कमरे के परले सिरे पर बांई ओर है। माता का बिस्तर दांईं ओर है और बच्चे का पालना उसके पास है"। ये सब बातें ठीक थीं और अगले दिन डायरेक्टर को उसके श्वसुर का पत्र आया कि तुम्हारे बच्चे का चौथा दांत निकला है। कुछ दिन पीछे जानीकाड फिर उसी समय जाकर डायरेक्टर से कहने लगा कि 'आज दिन में तुम्हारा बच्चा एक संकट में फंस गया है, चिकित्सक उसके जीवन से निराश होगया है, परन्तु वास्तव में कुछ डर की बात नहीं'। अगले दिन सूचना मिली कि धाय ने बहुत सी शराब पीकर बच्चे को दूध पिलाया था जिससे बच्चे को बड़ी बदहज्मी होगई थी और उसकी जान का भी

खतरा होगया था। एक रात जानीकाड अचानक उठकर अपने बिस्तर पर बैठ गया और अपने साथी को पुकार कर कहने लगा, "देखो रौलट तुम कितने बेपरवाह हो, मैंने तुम्हें कहा था, फिर भी तुम ने जिल्द बांधने वाले कमरे का दरवाज़ा बन्द नहीं किया, एक बिल्ली लेई खारही है, अभी उसने रकाबी गिरादी है जो टूट कर पांच टुकड़े हो गई है"। तत्क्षण एक आदमी जिल्द घर में गया तो पता लगा कि जो कुछ जानीकाड ने कहा था सब ठीक था अगली रात को जानीकाड ने बताया कि 'एक मनुष्य की लाश, जो दरिया में डूब गया था, सड़क पर एक बग्घी में लाई जा रही है'। अगले दिन पता लगा कि यह समाचार भी ठीक था, यद्यपि पहले दिन यह किसी को ज्ञात न था। एम. सिगोनिट ने जो उसी स्कूल में अध्यापक था एक रात जानीकाड से अपने बच्चे के विषय में पूछा जिसके कान के पीछे फोड़ा था जिससे हड्डी गल जाने का खतरा था। जानीकाड ने कहा, "डाक्टरों को दिखाना व्यर्थ है, हड्डी नहीं गलेगी, तुम अमुक बूटी का प्रयोग करो जो बाग में उगती है, मैं तुम्हें उखाड़ कर ला दूंगा"। उस के पांव नंगे थे और बाग़ में उसे कांटा चुभ गया अतः उसकी नींद खुल गई और वह बूटी नहीं ला सका, परन्तु बच्चा उसकी भविष्यवाणी के अनुसार, शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। निद्राविहार की अवस्था में जानीकाड बड़ा प्रसन्न होता था, उसे जगाने का यत्न किया जाता तो वह कहता था, "मुझे मत

जगाओ, मैं इस अवस्था में बहुत खुश हूं"। परन्तु जागने पर वह बहुत थका हुआ होता था। जागने पर निद्राविहार की अवस्था की कोई बात उसे याद न रहती थी, किन्तु अगली बार वही अवस्था आने पर वे सब बातें याद आ जाती थीं। साधारण अवस्था में जानीकाड की स्मृति बहुत अच्छी न थी, पढ़ी हुई चीज़ को याद रखने में उसे कठिनाई होती थी, परन्तु निद्राविहार की अवस्था में जब वह अपने बिस्तर पर बैठकर पढ़ता हुआ देखा जाता था तो अध्यापक उसके हाथ से पुस्तक ले लेता था और जानीकाड उसी समय पढ़े हुए पांच छः पृष्ठ अक्षरशः ज़ुबानी सुना देता था। यदि उसी समय उसको जगा दिया जाता तो वह उनमें से एक अक्षर भी न दुहरा सकता था। निद्राविहार की अवस्था में जानीकाड अंधेरे में अपने मुंह को टोपी से ढक कर तंग कठिन पहाड़ी मार्गों पर आसानी से चल सकता था। रात्रि में चलने फिरने से रोकने के लिए उसे ताले में बन्द किया गया तो उसने चाकू से एक लकड़ी के टुकड़े की चाबी बना ली और ताला खोल लिया।

निद्रावस्था की कई अन्य प्रकार की घटनाएं भी उपचेतना की ओर संकेत करती हैं। उदाहरण के लिए रीव्यू डी मैडिसिन[१] के फ़र्वरी सन् १८९० के अंक में निम्नलिखित समाचार छपा था—'मेडम डरीलक नाम की एक स्वस्थ और

---

१. Human Personality by Myers.

बुद्धिमती स्त्री थी जिसकी आयु ३४ वर्ष थी। २८ अगस्त १८६२ को उससे किसी ने कह दिया कि तुम्हारा पति मर गया है और उसकी लाश आ रही है। इस समाचार को सुनकर वह बेहोश होगई। होश में आने पर वह गत १४ जुलाई से २८ अगस्त तक की कुल बातें भूल चुकी थी, परन्तु १४ जुलाई से पहले की बातें उसे पूर्ववत् याद थीं। चिकित्सा के लिए जिस हस्पताल में वह पड़ी थी वहां के डाक्टरों को मालूम हुआ कि वह रात को सोती हुई कुछ बातें बोलती है। उन्होंने पास वाले दो रोगियों को नियुक्त किया कि वे ध्यान रखें कि वह रात को क्या बातें करती है। इस प्रकार ज्ञात हुआ कि वह रात के समय १४ जुलाई के पश्चात् की घटनाओं के विषय में बातें करती थी जो उसे जाग्रत अवस्था में भूली हुई थीं। इस प्रकार की घटनाओं से सिद्ध होता है कि कई वार कुछ ज्ञान और स्मृतियां साधारण चेतनता को छोड़कर उपचेतना में चली जाती हैं।

यह एक सामान्य अनुभव है कि जिन कई बातों को मनुष्य भूल जाता है और बहुत प्रयत्न करने पर भी याद नहीं कर सकता, वे निद्रावस्था में स्वयं याद आ जाती हैं। इसी प्रकार कई चीज़ें हमारी नज़र के सामने से गुज़र जाती हैं, परन्तु हम उन पर कुछ भी ध्यान नहीं देते हमें मालूम भी नहीं होता कि हमने उन्हें देखा है अर्थात् वे हमारी साधारण स्मृति में नहीं होतीं, परन्तु निद्रादि कुछ अवस्थाओं में उनका

स्मरण हो जाता है। हम नीचे कुछ उदाहरण देते हैं:—हर्बर्ट जे. लुइस[1] नाम का एक व्यक्ति अपने विषय में लिखता है कि 'मुझसे एक जहाज़ का माल उतारने का आज्ञापत्र खोगया। चार बजे मुझे कागज़ मिला और छः बजे जब मैं दफ़्तर में पहुंचा तो मुझे पता चला कि वह पत्र गुम है। मैंने बहुत तलाश की परन्तु सब व्यर्थ। अगले ही दिन ज़हाज़ ने ख़ाली होना था, अतः विवश होकर मैं एक नया पत्र प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। रात को जब मैं सोया तो स्वप्न में मुझे वही कागज़ एक दीवार के छिद्र में दिखाई दिया। प्रातः उठकर ढूंढा तो वह वहीं से मिल गया।

इस प्रकार, हम देख चुके हैं कि एकान्तर व्यक्तित्व, निद्राविहार आदि की घटनाएं, विशेष अवस्थाओं में और विशेष व्यक्तियों में, उपचेतना की सत्ता का प्रमाण देती हैं। निद्रा-सम्बन्धी कई घटनाएं सिद्ध करती हैं कि उपचेतना प्रत्येक मनुष्य में होती है। मानसिक आघातों के कारण हुई विस्मृति की घटनाएं बताती हैं कि कुछ ज्ञान एक चेतना को छोड़कर दूसरी चेतना में भी जा सकता है। ऊपर लिखी हुई घटनाओं से यह भी प्रतीत होता है कि उपचेतना में कुछ असाधारण शक्तियां भी हैं।

---

१. Human Personality by Myers. Vol.I

सम्मोहन (Hypnotism)

उपचेतना की सत्ता का बहुत अच्छा प्रमाण हमें सम्मोहन की अवस्था में मिलता है। यह एक निद्रा की सी अवस्था है जिसे ऑपरेटर (सम्मोहन-कर्ता) सबजैक्ट(सम्मोहित व्यक्ति) में उत्पन्न कर देता है, और फिर उसे कई प्रकार की आज्ञाएं (Suggestions) देता है जिनके अनुसार सम्मोहित व्यक्ति कार्य करता है। वे कार्य ऐसे कठिन भी होते हैं जिन्हें मनुष्य जाग्रत् अवस्था में भी ध्यान और यत्न के बिना नहीं कर सकते, अतः मानना पड़ेगा कि सम्मोहित व्यक्ति में भी उस समय एक चेतनता होती है, यद्यपि यह उसकी साधारण चेतनता से भिन्न प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए,सम्मोहनकर्ता यदि दो सम्मोहित व्यक्तियों से कहता है कि तुम बिल्लियां हो, तो वे आपस में सर्वथा बिल्लियों की तरह लड़ने लगते हैं। वह कहता है कि तुम मछली पकड़ने वाले हो और तुम्हारे सामने दरिया है, तो वे मछली पकड़ने की सी गतियां करने लगते हैं। सम्मोहित व्यक्ति के सामने हज़ारों आदमी बैठे शोर मचा रहे हों, परन्तु वह उन्हें न देखता है न उनकी आवाज़ सुनता है, जबकि अपने सम्मोहन-कर्ता को दूर से भी देख लेता है और उसके धीमे से धीमे शब्द को भी सुन लेता है। सम्मोहन-कर्ता कहता है कि तुम वर्णमाला का अमुक अक्षर भूल जाओ या अपना अथवा अपने पिता का नाम भूल जाओ तो वह उसी समय

भूल जाता है। यदि उसके सामने पुस्तक रक्खी जावे तो जहां वह विशेष अक्षर आवेगा उसे वह नहीं पढ़ सकेगा, शेष सारी पुस्तक को पढ़ता जाएगा। कई अक्षरों में मिलाकर वह अक्षर दिखाओ, और किसी तरह भी यत्न करो, वह उसे नहीं पढ़ सकेगा। ये बातें साधारण चेतनता की अवस्था में नहीं हो सकतीं, अतः उस समय साधारण से अतिरिक्त कोई चेतनता माननी पड़ेगी। सम्मोहावस्था में कई मनुष्य ऐसे कार्य कर सकते हैं जो साधारण अवस्था में उनकी शक्ति से बाहर होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी बहुत दूर के मकान, कमरे या सन्दूक के अन्दर की चीज़ें और उनका क्रम बता देना, यद्यपि उस स्थान को पहले कभी न देखा हो। यदि सम्मोहन-कर्ता इतनी दूर हो और इतना धीमा बोल रहा हो कि साधारणतया उसकी आवाज़ सुनाई न दे सके, अथवा वह किसी दूसरे कमरे में अदृश्य खड़ा होकर इशारे कर रहा हो, तब भी सम्मोहित व्यक्ति उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करता जाता है। सम्मोहावस्था में साधारण दशा की कोई बात याद नहीं आती और साधारण अवस्था में सम्मोहावस्था की सब बातें भूली हुई होती हैं। ये घटनाएं इस परिणाम की ओर संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं कि मनुष्य की साधारण चेतनता उसकी सारी शक्तियों और व्यक्तित्व को प्रकट करने के अयोग्य होती है, अतः शेष व्यक्तित्व और शक्तियां विशेष अवस्थाओं में और एक दूसरी चेतनता के रूप में प्रकट होती हैं।

क्षोभोन्माद (Hysteria)

क्षोभोन्माद आदि रोगों की अवस्था में उपचेतना बड़े स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। क्षोभोन्माद के दौरे में मनुष्य में कई प्रकार के विकार आजाते हैं। हाथ या कोई अन्य अंग संज्ञा-हीन अर्थात् सुन्न हो जाता है। एक या दोनों आंखों से दिखाई देना बन्द हो जाता है। श्रवण, घ्राण, स्वाद, स्पर्श आदि की शक्तियां जाती रहती हैं अथवा उन में कोई विकार आजाता है। डाक्टरी दृष्टि बिन्दु से अंगों की परख करने पर उन में किसी प्रकार की जीर्णता अथवा क्षति प्रतीत नहीं होती केवल उन में कार्य-शक्ति नहीं रहती। ऐसे रोगियों को सम्मोहावस्था में लाने से उनके वे अंग शुद्ध रूप में क्रिया करने लगते हैं, और कुछ दिनों तक प्रतिदिन सम्मोहावस्था में लाकर यह आज्ञा देने से कि जाग्रत् अवस्था में भी तुम्हारे ये अंग शुद्ध रूप में क्रिया करेंगे,उनके उक्त विकार जाते रहते हैं, और वे जाग्रत् अवस्था में भी स्वस्थ रहने लगते हैं। प्रतीत होता है कि ऐसे रोग की अवस्था में रोगी अंग साधारण चेतनता के अधिकार में चले जाते हैं। सम्मोहनावस्था में उपचेतना का अधिकार हो जाता है। अतः वे अंग स्वस्थ क्रिया करने लगते हैं। संमोहावस्था में सम्मोहनकर्ता की आज्ञा मिलने से उपचेतना उन अंगों पर अपना अधिकार छोड़ देती है और वे पुनः साधारण चेतना के अधिकार में आजाते हैं।

पी. जेनिट, ए. बिनिट आदि के परीक्षणों से इस विचार की विशेष पुष्टि होती है—क्षोभोन्माद के रोगियों का ध्यान-क्षेत्र बहुत संकुचित होता है। वें एक समय में केवल एक ओर ही ध्यान दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, जब वे किसी से बातें कर रहे होते हैं तो वे और सब कुछ भूल जाते हैं। फ्रांस का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एम. जेनिट ल्यूसी नाम की क्षोभोन्माद से ग्रस्त एक स्त्री के सम्बन्ध में जिसकी वह मानसिक चिकित्सा कर रहा था इस प्रकार लिखता है—

'जब ल्यूसी[१] किसी से बात चीत कर रही होती है तो वह किसी और मनुष्य की आवाज नहीं सुन सकती ; उसके पीछे खड़ा होकर कोई उसका नाम पुकारे, उस के कान के पास बड़ी ऊंची आवाज़ से उसको गालियां दे, तो भी वह अपना सिर तक नहीं फेरती ; उसके सामने खड़ा होकर कोई उसे चीज़ें दिखाए अथवा उसे छुए, तो वह ध्यान तक नहीं देती। जब वह बात चीत बंद करती है तो उसका ध्यान उस व्यक्ति की ओर जाता है और वह समझती है कि वह आदमी अभी कमरे में आया है। इसलिए वह कई अपरिचित लोगों की उपस्थिति में अपने रहस्य कह देती है। एम. जेनिट आगे लिखता है कि 'मैं जाकर इस प्रकार के किसी रोगी के पीछे खड़ा होजाता हूं। रोगी किसी से बात चीत में लगा होता है। मैं

---

१. Principles of Psychology by W. James Vol. 1.

उस के पीछे खड़ा होकर अत्यन्त धीमी आवाज़ में रोगी को अपना हाथ उठाने अथवा कोई अन्य साधारण क्रिया करने को कहता[1] हूं तो वह इस आज्ञा का पालन करता है। बात चीत करने वाली साधारण चेतनता को इस आज्ञा की कुछ भी खबर नहीं होती परन्तु वह रोगी अपना हाथ उठा देता है। फिर मैं वैसी ही धीमी आवाज़ में उससे कुछ प्रश्न करता हूं, रोगी का हाथ इशारों से उनका उत्तर देता है। यदि उसके हाथ में पैंसिल देदी जाए तो हाथ उत्तर लिख देता है। इस सारे समय में साधारण चेतनता बात चीत में लगी होती है और उसे हाथ के इशारों अथवा लिखने के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं होता। ऐसी अवस्था में दोनों चेतनाओं की पृथक् सत्ता स्पष्ट हो जाती है। साधारण चेतनता बातचीत कर रही है और उपचेतना चिकित्सक के प्रश्न सुनकर उनका उत्तर इशारों से अथवा लिख कर दे रही है। उपचेतना को बात चीत की कुछ खबर नहीं। कई रोगियों का एक हाथ सर्वथा संज्ञाहीन होता है वह कुछ अनुभव नहीं कर सकता और कोई गति नहीं कर सकता, परन्तु देखा गया है कि यदि उपर्युक्त प्रकार से धीमी आवाज़ में आज्ञा दी जाए तो यह निष्क्रिय हाथ कई प्रकार की क्रियाएं करता है, पैन्सिल से लिख सकता है, कैंची में

---

१. आज्ञादेने की इस रीति को Distraction की विधि का नाम दिया जाता

अंगुलियां डालकर उसे खोल या बन्द कर सकता है, किन्तु यदि पेन्सिल और कैंची रोगीकी आंख के सामने न हों तो रोगी को अनुभव नहीं होता कि उसके हाथ में कुछ है वा नहीं। इससे स्पष्ट है कि निष्क्रिय हाथ की क्रियाओं को उपचेतना करवाती है। साधारण चेतनता को इनकी कुछ ख़बर भी नहीं होती। हाथ निष्क्रिय भी इसीलिए है कि उस पर साधारण चेतनता का अधिकार नहीं रहा और वह उसे हिला नहीं सकती।

एक परीक्षक[1] ल्योनी नाम की एक स्त्री के संबन्ध में लिखता है:—'मैं ल्योनी के संज्ञाहीन निष्क्रिय हाथ में अपनी ऐनक दे देता हूं तो यह हाथ उस ऐनक को खोलता है और नाक की ओर ले जाता है, परन्तु जब ऐनक उसकी आंख के सामने आती है तो उसका हाथ वहीं निष्क्रिय होकर रुक जाता है, वह घबरा कर और हैरान होकर पूछती है कि मेरे पास यह ऐनक कहां से आगई'। इस का अर्थ यह है कि जब तक साधारण चेतनता को हाथ की गति की ख़बर नहीं अर्थात वह उपचेतना के अधिकार में है तब तक वह गति करता है और निष्क्रिय नहीं है, परन्तु जब हाथ आंख के सामने अर्थात् साधारण चेतनता के क्षेत्र में आता है तो वह निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रकार, वह केवल साधारण चेतनता के लिए

---

1. Principles of Psychology by W. James Vol. I

ही निष्क्रिय है, उस चेतनता का हाथ की क्रिया पर अधिकार नहीं है। परन्तु उपचेतना के अधिकार-क्षेत्र में आ जाने से वह हाथ क्रिया कर सकता है।

दोनों चेतनताओं की परस्पर-पूरकता

परीक्षणों द्वारा यह भी सिद्ध हुआ है कि साधारण चेतना और उपचेतना परस्पर पूरक होती हैं। कुछ बातें दोनों को ज्ञात होती हैं और शेष बहुत सी बातों का ज्ञान दोनों चेतनताओं में विभक्त होता है, यदि एक चेतनता किसी बात को जानती है तो दूसरी नहीं जान सकती। इस विषय में एम. जेनिट ने ल्यूसी पर निम्नलिखित परीक्षण किए—ल्यूसी को सम्मोहावस्था में लाकर उसके सामने कुछ कार्ड रख दिये गये, प्रत्येक कार्ड पर एक एक संख्या लिखी हुई थी। जेनिट ने ल्यूसी को आज्ञा दी कि जाग्रत् अवस्था में आने पर तुम वह कार्ड नहीं देख सकोगी जिन पर तीन का कोई गुणनफल लिखा होगा[1]। फिर जाग्रत् अवस्था में लाकर उससे पूछा

---

१. सम्मोहन की परिभाषा में इसको Post-hypnotic suggestion कहते हैं। सम्मोहित व्यक्ति ऐसी आज्ञा का अवश्य पालन करता है।

गया कि तुम्हारे सामने कौन कौन से कार्ड हैं, तो उसने उन्हीं कार्डों के नाम बताये जिनकी संख्याएं तीन की गुणनफल नहीं थीं। ६, १२, १८ आदि संख्याओं वाले कार्डों को वह देख ही नहीं सकती थी। तब ल्यूसी को किसी और व्यक्ति ने बातचीत में लगाया और एम. जेनिट ने उसके पीछे खड़े होकर और उसके हाथ में पैन्सिल देकर धीमी आवाज़ में पूछा कि 'तुम्हारे सामने कौन कौन से कार्ड हैं'? वह बातचीत में लगी रही, परन्तु उसके हाथ ने वे ही कार्ड लिख दिए जिनकी संख्याएं ६, १२, १८, आदि तीन के गुणनफल थीं। फिर जेनिट ने धीमी आवाज में कहा कि 'तुम्हारे सामने जितने कार्ड हैं उन सब को उठा लो'। ल्यूसी बातचीत में मग्न रही परन्तु उसके हाथ ने वे ही कार्ड उठाए जिनकी संख्या ६, १२, १८, आदि तीन की गुणनफल थीं, शेष को पड़ा रहने दिया। इसी प्रकार, यदि जेनिट धीमी आवाज़ में ल्यूसी को सामने पड़ी कोई वस्तु देखने की आज्ञा देता था तो साधारण चेतनता को तत्क्षण वह चीज़ दिखाई देनी बंद हो जाती थी और वह बातचीत करती हुई चिल्ला उठती थी कि क्या कारण है मैं देख नहीं सकती। क्षोभोन्माद के रोगियों के आंख, हाथ अथवा किसी अन्य अंग के निष्क्रिय हो जाने का कारण भी यही है कि वे अंग उपचेतना के अधिकार में चले जाते हैं। सम्मोहावस्था में या किसी अन्य प्रकार उपचेतना को आज्ञा देने से वे

साधारण चेतना के अधिकार में वापिस आ सकते हैं, तथा वे विकार दूर हो सकते हैं। एम. जेनिट ने इसी विधि से क्षोभोन्माद के कई रोगियों की सफलता-पूर्वक चिकित्सा की जो अन्य चिकित्सा द्वारा स्वस्थ न होते थे।

दोनों चेतनताएं एक दूसरी की बातें नहीं जानतीं, इससे कई बार विचित्र घटनाएं हो जाती हैं। एम. जेनिट लिखता है, "मैं ल्यूसी को धीमी आवाज़ में आज्ञा देता हूं कि अपनी अंगुलियों को अपनी नाक के सामने घुमाओ तो वह वैसा ही करने लगती है। मैं साधारण ऊंची आवाज़ में उससे पूछता हूं कि 'क्या कर रही हो' तो वह उत्तर देती है 'कुछ नहीं'। बहुत देर तक बातचीत में लगी रहती है परन्तु उसे कभी सन्देह भी नहीं होता कि उसकी अंगुलियां उसके मुंह के सामने घूम रही हैं। इसी प्रकार, ल्यूसी बातचीत में लगी होती है तो मैं उससे कमरे में चक्कर लगवाता हूं, परन्तु उसे विश्वास होता है कि वह बैठी हुई है। एम. जेनिट ने एक और मनुष्य पर भी, जिसे मदिराजन्यउन्माद (Alcoholic Delirium) था, परीक्षण किया। डाक्टर रोगी से बातचीत कर रहा था। एम. जेनिद ने धीमी आवाज़ में आज्ञा देकर रोगी को चलाया, बिठाया, मुंह के बल लिटाया। परन्तु इस सारे समय में रोगी को यही विश्वास था कि वह अपने बिस्तर के पास खड़ा हुआ है।

स्वतो-लेखन[1] (Automatic Writing)

प्रोफ़ेसर जेम्ज़ लिखता है:—बहुत दिन हुए मैंने भी एक घटना देखी थी जिससे सिद्ध होता है कि मनुष्य का ज्ञान उसकी दोनों चेतनताओं में विभक्त होता है—'एक युवती[2] स्वतो-लेखन से पैन्सिल द्वारा लिख रही थी। मैंने उसे एक मनुष्य का नाम याद करने को कहा परन्तु उसको नाम याद न आता था। केवल पहला भाग ही याद आकर रह जाता था। इसी बीच में उसके हाथ ने, उसके बिना जाने, नाम के शेष दो

१. कई लोगों में यह विशेषता होती है कि यदि वे अपने हाथ में पैन्सिल आदि लेकर उसका सिरा कागज़ पर रख दें और अपने हाथ को सर्वथा ढीला छोड़ दें तो लिखने की इच्छा और यत्न के बिना ही उनके हाथ से स्वयं कई प्रकार की बातें लिखी जाती हैं। इसे स्वतो-लेखन कहते हैं। इस प्रकार लिखने के लिए एक यन्त्र भी होता है जिसे प्लेनचिट कहते हैं। यह एक छोटी तख़्ती होती है जिसके सिरों पर पहिये लगे होते हैं। आगे पैन्सिल का होल्डर होता है। पैन्सिल का सिरा कागज़ के साथ छूता है। लिखने वाला अपना हाथ तख़्ती के ऊपर रखता है। दबाव से पहिये चलते हैं और पैन्सिल के निशान पड़ जाते हैं। यदि कोई मनुष्य अपनी इच्छा द्वारा इस यंत्र से कुछ लिखना चाहे तो कुछ नहीं लिख सकता, केवल अर्थ-शून्य चिन्ह पड़ जाते हैं, परन्तु हाथ को ढीला छोड़ देने से लिखने का यत्न न करते हुए कई मनुष्यों के हाथ से अनेक प्रकार की अर्थ-पूर्ण बातें लिखी जाती हैं।

२. Principles of Psychology by W. James Vol. I

भाग ही लिख दिए'। प्रोफ़ेसर जेम्ज़[1] एक और आंखों देखी घटना का इस प्रकार वर्णन करता है:—'एक सर्वथा स्वस्थ नवयुवक जो प्लेनचिट द्वारा लिख सकता था एक समय उस यन्त्र से लिख रहा था। लिखते समय उसका लिखने वाला हाथ सर्वथा संज्ञाहीन था। मैंने उस हाथ में ज़ोर से कुछ चुभोया, जिसका युवक को कुछ ज्ञान न हुवा। परन्तु प्लेनचिट द्वारा उसके हाथ से जो लिखा गया, उसमें उसके हाथ में कुछ चुभोने के लिये मुझ पर ज़ोरदार शब्दों में दोष लगाया गया था। युवक के दूसरे हाथ को चुभोया गया तो उसे बहुत पीड़ा हुई परन्तु प्लेनचिट द्वारा लिखा गया कि दूसरे हाथ में कुछ नहीं चुभोया गया।

फ्रांस[1] का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विनट कुछ चोभोन्माद के मरीज़ों के सम्बन्ध में लिखता है कि उनकी दोनों आंखें देखने में अशक्त थीं। उनकी आंखों के सामने कुछ शब्द थे जिन्हें वे देख नहीं सकते थे परन्तु उनके हाथ स्वतो-लेखन द्वारा उन्हीं शब्दों को लिख रहे थे। इसी प्रकार, चोभोन्माद के कई रोगियों की आंखें रंग देखने में अशक्त (Colour-blind) होती हैं परन्तु स्वतो-लेखन द्वारा वह उन्हीं रंगों का नाम लिख देते हैं।

---

१. Principles of Psychology Vol. I

यदि सम्मोहावस्था में सम्मोहन-कर्ता सम्मोहित व्यक्ति को आज्ञा दे कि जागने के पश्चात् तुम अमुक काम करना, अथवा तुम्हें अमुक भ्रमात्मक अनुभव होगा, तो सम्मोहित व्यक्ति प्रायः उसका अक्षरशः पालन करता है। परन्तु जागने पर वह यह सर्वथा भूल जाता है कि उसे कोई आज्ञा मिली थी। एडमण्ड-गरने ने सिद्ध किया है कि यह आज्ञा उपचेतना को सारे मध्यवर्ती समय में याद रहती है। इस परीक्षण के लिए उस ने कुछ ऐसे व्यक्ति लिए जो प्लेनचिट द्वारा लिख सकते थे। उन्हें सम्मोहावस्था में लाकर उसने जागने के पश्चात् कुछ काम करने की आज्ञा दी। जागने पर वे उस आज्ञा को सर्वथा भूल गए। उनका ध्यान बातचीत करने और जुबानी प्रश्न निकालने में लगाया गया। उसी समय उनके हाथ ने प्लेनचिट द्वारा वही आज्ञा लिखदी जो सम्मोहावस्था में दी गई थी। साथ ही यह भी लिख दिया कि इतना समय गुज़र चुका है और इतना शेष है, तब यह आज्ञा पालन की जाएगी। जाग्रत् अवस्था में जब सम्मोहावस्था की आज्ञा पूरी की जाती है तो उस काम पर भी उपचेतना का अधिकार होता है साधारण चेतना को उसका कुछ ज्ञान नहीं होता। ऐम. जेनिट[1] लिखता है कि 'यदि मैं ल्यूसी को सम्मोहावस्था में आज्ञा देता हूं कि जागने पर अपनी बाहें और

---

[1] Principles of Psychology by W. James Vol. I.

हाथ ऊपर उठाए रखना, तो जागते ही उसकी बाहें ऊपर उठ जाती हैं, परन्तु वह उन पर कोई ध्यान नहीं देती। वह चलती फिरती बातचीत करती है, परन्तु अपनी बाहें ऊपर उठाए रखती है। यदि उससे पूछा जाय कि "तुम्हारे हाथ क्या कर रहे हैं"? तो वह इस प्रश्न पर हैरान हो जाती है और कहती है कि "मेरे हाथ कुछ नहीं कर रहे, वे सर्वथा वैसे ही हैं जैसे तुम्हारे हाथ हैं"। सम्मोहनावस्था में मैं उसे जागने के पश्चात् रोने की आज्ञा देता हूं तो वह जागने पर रोने और सिसकने लगती है, परन्तु साथ ही साथ बड़ी प्रसन्नता की बातें भी कर रही होती है। जब रोना बन्द हो जाता है तो तत्त्वण ही शोक का कोई चिन्ह उसके चेहरे पर नहीं होता'। इसी प्रकार, ल्योनी[1] चिट्ठी लिख रही होती है जब कि उसे विश्वास होता है कि वह बुन रही है। ल्यूसी डाक्टर जेनिट के दफ़्तर में जाती हैं जब कि उसे विश्वास होता है कि वह घर बैठी हुई है। यदि वर्णमाला के अत्तर अथवा संख्याएं उस की उपचेतना के हवाले करदी जाएं तो साधारण चेतनता को उनका ज्ञान नहीं रहता। धीमी आवाज़ में आज्ञा पाकर उसका हाथ उन्हीं अत्तरों और संख्याओं को लिख रहा होता है, परन्तु साधारण ऊंची बात-चीत द्वारा साधारण चेतना से प्रश्न किया जाए तो उन्हें वह

---

१. Principles of Psychology by W. James Vol 1.

भूल चुकी होती है और वह आश्चर्य प्रकट करती है कि ऐसी साधारण चीज़ें याद क्यों नहीं आतीं। एम. ज़ेनिट[१] कभी कभी एक नवयुवक को संमोहावस्था में लाया करता था। एक दिन उसने सम्मोहनावस्था में युवक को आज्ञा दे दी कि "तुम अलजेरिया में हो", परन्तु जागने से पहले उसे उल्टी आज्ञा देना भूल गया। फिर जब जेनिट उसे सम्मोहावस्था में लाया तो युवक ने कहा, "मैं इतनी दूर हूं कि तुम्हारी आज्ञा मुझ तक पहुंच नहीं सकती, मैं अलजेरिया में हूं"। एक बार ल्योनी को एक अपरिचित पुरुष की उपस्थिति में धीमी आवाज़ में (Distraction की विधि से) अपना हाथ अपने मुंह के सामने घुमाने की आज्ञा दी गई। एक वर्ष के पश्चात् वही अपरिचित पुरुष उसे फिर मिला तो ल्योनी का हाथ अपने आप, उस को मालूम हुए बिना ही, उस के मुंह के सामने घूमने लगा।

अमेरिका के प्रसिद्ध अन्वेषक डाक्टर मार्टन प्रिंस ने भी उपचेतना के संबन्ध में बहुत खोज की है। उसका एक परीक्षण निम्न लिखित है:—

एक युवती[२] में जिस पर डाक्टर प्रिंस परीक्षण कर रहा था दो व्यक्तित्व प्रकट होते थे। डाक्टर प्रिंस सम्मोहन के

---

१. Principles of Psychology by W. James Vol. 1.

२. Alterations of Personality by M. Prince

सदृश एक प्रक्रिया द्वारा उस युवती को पहली से दूसरी और दूसरी से पहली अवस्था में ले आया करता था। एकबार जब वह दूसरी अवस्था में थी तो डाक्टर ने उसे (उसके दूसरे व्यक्तित्व को) कहा कि तुमको अमुक अमुक प्रकार का अंकगणित का एक प्रश्न हल करना होगा, परन्तु उस प्रश्न की वास्तविक संख्याएं उसे पहली अवस्था में लाने के पश्चात् दिखाई गईं। उसे कुछ क्षणों के लिए पहली अवस्था में लाया गया और संख्याओं को उसके सामने इस प्रकार रख दिया गया कि वह उसका (पहले व्यक्तित्व का) ध्यान आकर्षित न कर सकें। थोड़े समय के पश्चात् जब युवती को दूसरी अवस्था में लाया गया तो उसने (दूसरी व्यक्ति ने) तत्क्षण उस प्रश्न का उत्तर बोल दिया और कहा, "मैंने (दूसरी व्यक्ति ने) पहले ही यह प्रश्न हल कर रखा था और मैं कुछ देर से अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थी कि मुझे पुनः बुलाया जाय, ताकि मैं उत्तर बता सकूं"। इस परीक्षण से पता लगता है कि एक ही स्त्री में दो व्यक्तियां अर्थात् दो चेतनताएं एक साथ चल रही थीं, यद्यपि दोनों को एक दूसरे की कुछ ख़बर न थी।

दर्पण-वीक्षण[1] (Crystal-Vision)

दर्पण-वीक्षण द्वारा भी उपचेतना का परिचय मिलता है। एक उदाहरण द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाएगी:—

---

1. यह एक प्रकार की विधि है जिसके द्वारा यह जानने का यत्न किया जाता है कि किसी मनुष्य की उपचेतना में क्या बातें है। मनुष्य

मिस[1] गुडरिच फ़रीयर नाम की एक स्त्री को दर्पण-वीक्षण-विधि से दर्पण में दिखाई दिया कि उसका एक मित्र मर गया है। उसकी साधारण चेतनता में यह बात पहले कभी नहीं आई थी। टाइम्ज़ अख़बार का एक अंक पास पड़ा था, उसे देखने पर ज्ञात हुआ कि उसी पृष्ठ पर जिससे, कुछ देर पहले आग की गरमी से बचने के लिए, उसने अपने मुंह को ढांपा था, उस के मित्र के नाम वाले किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु का समाचार छपा हुआ था। इसका अर्थ यह है कि समाचार पर उस की उपचेतनता की दृष्टि पड़ी, परन्तु यह उसकी साधारण चेतनता को कभी ज्ञात नहीं हुआ। यदि ज्ञात होता तो इतना आवश्यक समाचार भुलाया नहीं जासकता था। यही मिस गुडरिच फ़रीयर[1] एक बार एक अज्ञात पुस्तक का नाम पढ़ने का यत्न कर रही थी। पुस्तक इतनी दूर थी कि वह उसके नाम का एक भी अक्षर नहीं पढ़ सकी, परन्तु दर्पण-वीक्षण की विधि से जब उसने शीशे में देखा तो उसी पुस्तक का नाम उसके सामने आगया। इसका यही अर्थ हो सकता

अपना ध्यान ढीला छोड़ कर एक शीशे अथवा स्फटिक में देखता रहता है तो शीशे में उसके सामने उन्हीं बातों के चित्र आजाते हैं जो उसकी उपचेतना में होती हैं।

१. Human Personality by Myrers.

है कि उपचेतना ने इस पुस्तक के नाम को पढ़ा था, यद्यपि साधारण चेतना इस काम में अशक्त थी।

इस प्रकार, अनेक प्रमाणों से उपचेतना की सत्ता सिद्ध होती है। हम यह भी देख चुके हैं कि उपचेतना में अनेक ऐसे गुण और शक्तियां हैं जो साधारण चेतनता में नहीं हैं। अब प्रश्न यह है कि उपचेतना की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है। दिमाग़ द्वारा चेतनता की व्याख्या के विरुद्ध जो आक्षेप हैं वे ही सब दिमाग़ द्वारा उपचेतना की व्याख्या के विरुद्ध भी हैं, क्योंकि उपचेतना भी एक प्रकार की चेतनता ही है। इन आक्षेपों को पिछले कई अध्यायों में हम विस्तार पूर्वक दिखा चुके हैं। इनके अतिरिक्त, यह बात समझ में नहीं आती कि यदि चेतनता का आधार दिमाग़ है तो दो चेतनताएं क्यों हैं, क्या दिमाग़ के दो भिन्न भिन्न भाग हैं जो अलग अलग चेतनताओं के आधार हैं? शारीरशास्त्र (Anatomy, Physiology) कोई ऐसे भिन्न भाग नहीं दिखा सकता और वैज्ञानिक लोग ऐसे दो भिन्न भाग मानते भी नहीं। इसके अतिरिक्त, उपचेतना की असाधारण शक्तियों की व्याख्या दिमाग़ अथवा शरीर के किसी अन्य अंग या शक्ति से हो नहीं सकती। आत्मा को मान लेने से इस प्रकार के सब आक्षेपों का समाधान हो जाता है। उपचेतना की असाधारण शक्तियों का कारण आत्मा है जो एक आध्यात्मिक सत्ता है और इसलिए प्रकृति की सीमाओं और

अशक्तियों से ऊपर है। दो चेतनताएं इसलिए हैं कि चेतनता आत्मा की क्रिया का परिणाम है। दिमाग़ चेतनता का आधार नहीं, उसको प्रकट करने का साधनमात्र है जैसे आंख देखने का साधन है; और दिमाग़ द्वारा चेतना शरीर पर प्रभाव डालती है। दिमाग़ एक ही समय समस्त चेतनता को प्रकट करने में अशक्त है। इसीलिए, उसके दो खण्ड होते हैं। एक समय एक ही खण्ड प्रकट हो सकता है, अतः जब चेतना व्यक्त होती है तो उपचेतना अव्यक्त रहती है, और जब उपचेतना व्यक्त होती है तो चेतना अव्यक्त रहती है; उपचेतना में जो ज्ञान है वह प्रायः चेतना में नहीं है, तथा चेतना में जो ज्ञान है वह प्रायः उपचेतना में नहीं। परन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कुछ ज्ञान दोनों चेतनाओं में समान हैं—जैसे, कई प्रकार का साधारण इन्द्रिय-ज्ञान। इसके अतिरिक्त, हम अनेक उदाहरणों द्वारा यह भी दिखा चुके हैं कि ज्ञान एक चेतनता में से दूसरी चेतनता में भी जा सकता है—सम्मोह अवस्था में कुछ अक्षरों का ज्ञान उचेतना के हवाले कर दिया जाए तो साधारण चेतना को उसका ज्ञान नहीं रहता। पुनः आज्ञा देने पर वह ज्ञान उपचेतनता से चेतना में आजाता है; क्षोभोन्माद में कोई अंग उपचेतना के अधिकार में आ जाते हैं तो साधारण चेतनता को उन पर अधिकार नहीं रहता। इस प्रकार की ज्ञान-समानता और ज्ञान-विनिमय सिद्ध करते हैं कि दोनों चेतनाओं का

अधिष्ठान या आधार एक ही होना चाहिए, अन्यथा कोई ज्ञान एक से दूसरी में कैसे जा सकता है? यह साझा आधार आत्मा ही माना जा सकता है जो एक निरवयव सत्ता है। दिमाग़ आदि किसी भौतिक चीज़ को ऐसा आधार नहीं माना जा सकता। दिमाग़ एक चीज़ नहीं है अपितु असंख्यात अवयवों का समूह है, इन अवयवों में से कुछ तो चेतना के आधार होंगे और कुछ उपचेतना के। इस प्रकार दोनों चेतनाओं के पृथक् पृथक् आधार होंगे साझा आधार कोई न होगा। साझा आधार कोई निरवयव चीज़ ही हो सकती है अतः वह कोई आध्यात्मिक सत्ता ही होनी चाहिए, भौतिक नहीं।

उपचेतना का मनुष्य के जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव होता है। मनुष्य के अत्यन्त गहरे विश्वासों, आदर्शों, रुचियों, अरुचियों, प्रतिभाओं और पागलपनों का स्रोत उपचेतना है। मनुष्य के कई प्रकार के रोगों और विकारों को दूर करने के लिए उपचेतना का प्रयोग किया गया है। सम्मोह की अवस्था में अथवा किसी अन्य प्रकार उपचेतना को आज्ञा देने से ऐसे परिणाम उत्पन्न होते हैं जो सामान्य दशा में नहीं हो सकते : सम्मोहावस्था में आज्ञा देने से रोगी पीड़ा अनुभव करना बन्द कर देता है और क्लोरोफ़ार्म आदि के बिना सुंघाये ही ऑपरेशन किये जा सकते हैं। अफ़ीम, शराब आदि की आदतें

सम्मोहावस्था में आज्ञा देने से छुड़ाई जा सकती हैं। इसी प्रकार, कई तरह के पागलपन की चिकित्सा की जा सकती है। क्षोभोन्माद की चिकित्सा की ओर हम पहिले ही संकेत कर चुके हैं।

आजकल कई प्रकार के पागलपन और व्यक्तित्व के विकारों को दूर करने की एक नई चिकित्सा-विधि का आविष्कार हुआ है। इसे मानसिक विश्लेषण (Psycho-Analysis) की विधि कहते हैं। यह उपचेतना की सत्ता को मानकर चलती है और इसका प्रयोग करती है। यह विधि वर्तमान पाश्चात्य संसार में बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित होगई है। अतः अगले अध्याय में हम इसका एक संक्षिप्त वर्णन पाठकों के सामने रखेंगे।

बारहवां अध्याय

मानसिक विश्लेषण

(Psycho-Analysis)

मानसिक विश्लेषण मानसिक और वातिक रोगों (Neuroses) की एक नवीन चिकित्सा-विधि का नाम है जिसका प्रवर्तक सिगमण्ड फ़्रायड था। फ़्रायड सन् १८५६ ई० में ज़ेकोस्लोवेकिया में उत्पन्न हुआ था, परन्तु वह अपने जीवन के प्राय: आरम्भ से ही वियेना में रहा था। फ्रायड का विचार था कि मनुष्य में दो ही प्रधान स्वाभाविक प्रवृत्तियां है— एक आत्मरक्षा की और दूसरी सन्तानोत्पत्ति की (libido)। पहली प्रवृत्ति को प्राय: कोई बाधा नहीं पहुंचती, परन्तु दूसरी प्रवृत्ति में समाज बहुत बाधा डालती है। पहले तो विवाह ही पर्याप्त बड़ी आयु में होता है, उस पर भी यह सदा संभव नहीं कि वह इच्छित व्यक्ति से ही हो। फिर संसार में आकर्षक व्यक्ति भी अनेक हैं, उनके प्रति

अपनी रुचि को बलपूर्वक रोकना पड़ता है। परन्तु रोकने से ये इच्छाएं मनुष्यों को छोड़ती नहीं। दबकर उपचेतना में चली जाती हैं (Repression) और वहां रहती हुई वे अपने आप को अनेक रूपों में प्रकट करती हैं, तथा विविध गुप्त विधियों द्वारा सन्तुष्टि प्राप्त करती हैं। उदाहरण के लिए, आंख मटकाने, नाक कन्धा आदि सिकोड़ते या हिलाते रहने की आदतें दबी हुई उपचेतना में स्थित इच्छाओं का परिणाम हैं। इसी प्रकार, लिखने और बोलने में मुंह से या लेखनी से कोई अशुद्ध बात निकल जाने में भी कोई दबी हुई इच्छा ही पूरी हो रही होती है। ऐसी इच्छाओं की पूर्ति का एक प्रधान माध्यम स्वप्न है। परन्तु स्वप्नों में भी ये इच्छाएं अपने आपको गुप्त रीति से और परिवर्तित रूप में ही पूरा कर सकती हैं।

इस प्रकार, फ़ायड के अनुसार हमारी उपचेतना प्रायः समाज-वर्जित इच्छाओं से भरपूर है। ये वर्जित इच्छाएं कई प्रकार की हो सकती हैं परन्तु प्रधानतया वर्जित प्रेमवासनाएं और उनसे उत्पन्न होने वाली बदले की इच्छाएं ही होती हैं। ये दबी हुई इच्छाएं उपचेतना में रहती हुई कई बार कई प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोग उत्पन्न कर देती हैं—जैसे, साधारण चीजों से निराधार भय (Pholias)। कई बार किसी व्यक्ति से छुटकारा पाने की इच्छा होती है, परन्तु वह इच्छा नियम विरुद्ध है, इसलिए बलात् दबाई जाती है। दबकर वह उपचेतना में चली जाती है। साधारण चेतना को इसका कुछ

ज्ञान नहीं रहता परन्तु इसके स्थान पर साधारण चेतना में एक निरन्तर निराधार चिन्ता आजाती है कि कहीं वह व्यक्ति मर न जाए। उपचेतना में रहती हुई इच्छा अपने आपको इस प्रकार रूप बदल कर प्रकट करती रहती है। कई बार वर्जित इच्छा का सम्बन्ध हाथ या आंख या किसी अन्य अंग से होता है। जब यह इच्छा दबकर उपचेतना में जाती है तो साथ ही वह अंग भी साधारण चेतनता के अधिकार से निकल कर उपचेतना के अधिकार में चला जाता है—अर्थात् वह व्यक्ति साधारण जाग्रत्-अवस्था में उस अंग का प्रयोग नहीं कर सकता। आंख देखना बन्द कर देती है, हाथ हिल नहीं सकता, अथवा हिस्टीरिया के अन्य चिन्ह प्रकट हो जाते हैं। हम अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए एक दो उदाहरण देते हैं:— एक युवती[१] थी। एक दो वर्ष से उसका पिता एक लम्बे रोग में ग्रस्त था जिसकी सेवा वह तन मन से करती थी। अपने लाचार पिता को उसे प्रायः अपनी टांगों का सारा बल लगाकर उठाना पड़ता था। साथ ही वह एक नवयुवक से प्रेम भी करती थी। यदि उसका पिता रोगी न होता तो वह तुरन्त उस युवक से विवाह कर लेती। अतः उसके हृदय में इच्छा उत्पन्न हुई कि या तो पिता अच्छा हो जाए या मर

---

१ Contemporary Schools of Psychology by Woodworth Page 153.

जाए, जिससे वह विवाह के लिए स्वतन्त्र हो जाए। उसे अपने पिता से अत्यन्त प्रेम था। उसके सम्बन्ध में ऐसी इच्छा उसे बड़ी भयङ्कर और घृणित प्रतीत हुई। अतः यह इच्छा दब गई और साथ ही उस युवती की अपनी टांगों का प्रयोग करने की शक्ति भी जाती रही। वह उठने और चलने-फिरने में असमर्थ हो गई। इस प्रकार एक दबी हुई इच्छा एक शारीरिक रोग में परिणत होगई।

एक दिन, एक रोगी परामर्श के लिए डाक्टर के पास गया। अन्त में फ़ीस देने के समय उसने कहा "मेरे पास नकद रुपये नहीं हैं, मैं आपको एक चैक दूंगा"। वह कहना चाहता था 'I shall pay you with a Cheque' (मैं आपको एक चैक द्वारा फ़ीस दूंगा) परन्तु उसके मुंह से निकल गया 'I shall play you with a Cheque' (मैं एक चैक द्वारा आपके साथ फ़ीस के सम्बन्ध में धोखा करूंगा)। फ़्रायड इसका यह अर्थ समझता है कि वह मनुष्य फ़ीस देना न चाहता था, साथ ही धोखा देने को भी वह बहुत बुरा समझता था, अतः उसकी न देने की इच्छा साधारण चेतना में न रह सकती थी और वह उपचेतना में रहकर अपने आपको पूरा कर रही थी। इसीलिए उसके मुंह से इसके अनुकूल शब्द निकले यद्यपि वह कहना कुछ और चाहता था।

इस प्रकार फ्रायड की दृष्टि में, दबी हुई इच्छाएं कई प्रकार के रोगों और विकारों को उत्पन्न करती हैं। यदि पूछा जाय कि इस बात का क्या प्रमाण है कि दबी हुई इच्छाएं इस प्रकार के विकार उत्पन्न करती हैं, तो फ्रायड का उत्तर यह है कि यदि इन विकारों का कारण दबी हुई इच्छाओं को मान कर इनकी चिकित्सा की जाए तो ये विकार दूर हो जाते हैं।

फ्रायड की चिकित्सा-विधि का साधारण और अति-संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित शब्दों में दिया जा सकता है:—दबी हुई इच्छाएं प्रायः बाल्यकाल की होती हैं। चिकित्सा के लिए आवश्यक है कि इन इच्छाओं को निकाल दिया जाए किन्तु इन्हें निकालने के लिए आवश्यक है कि पहले इन्हें उपचेतना से साधारण चेतना में लाया जाए और वहां इनको दबाने के स्थान पर इनका कोई उचित हल ढूंढा जाए। इस प्रकार के उचित व्यवहार से स्वाभाविक तौर पर ये इच्छाएं जाती रहेंगी और इनसे उत्पन्न होने वाले विकार भी नष्ट हो जाएंगे। दबी हुई इच्छाओं को चेतनता में लाने का तात्पर्य यह है कि उन्हें ढूंढा जाए और स्मरण किया जाए। ढूंढने का तरीका यह है कि रोगी अपने ध्यान को सर्वथा ढीला करके बैठ जाए और जो जो बात उसके मन में आए वह बताता जाए, कोई बात ज़रा भी न छिपाए। फ्रायड का विचार था कि इस प्रकार अत्यन्त पुरानी दबी हुई स्मृतियां याद

आ जाती हैं। कई बार रोगी के किसी उपयुक्त स्वप्न को ले लिया जाता है। रोगी पूर्ववत् अपना ध्यान ढीला छोड़कर बैठ जाता है। डॉक्टर स्वप्न के प्रत्येक खण्ड को बारी बारी से उसके सामने बोलता है, उससे रोगी के मन में जो विचार आते हैं वह उन्हें बिना संकोच सम्पूर्ण रूप में वताता जाता है। कई बार शीशे में देखने की विधि (Crystal-vision) अथवा सम्मोहन-विधि का भी प्रयोग कर लिया जाता है।

यह चिकित्सा-विधि बहुत लम्बी और कठिन है, और सिद्धान्त-विशेषज्ञ ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। हमने इस विधि और फ़ायड के सिद्धान्त के अनेक अंशों का वर्णन नहीं किया और शेष का भी अति सामान्य परिचय दिया है क्योंकि उनका विस्तृत वर्णन हमारे विषय की दृष्टि से अनावश्यक है। मानसिक विश्लेषण के दो और प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं। एक का प्रवर्तक एडलर है और दूसरे का जूंग।

एडलर (Adler) और जूंग (Jung)

वियेना निवासी एडलर का जन्म सन् १८७० ई० में हुआ था। यह पहले फ्रायड का एक अनुयायी था, परन्तु किसी मतभेद के कारण वह उससे अलग होगया और उसने एक अलग सम्प्रदाय की नींव डाली। फ़ायड के अनुसार मनुष्य की प्रधान इच्छा सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा है, और

प्रायः अन्य सब इच्छाएं इसके ही रूपान्तर हैं। एडलर का विचार है कि यह अत्युक्ति है। सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा भी एक प्रधान इच्छा है, और कई रोग तथा विकार इसमें बाधा पहुंचने से भी हो सकते हैं। परन्तु आधार-भूत इच्छा शक्ति-प्राप्ति की इच्छा है, सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा और अन्य सब इच्छाएं इसके ही रूपान्तर हैं। इस शक्ति-प्राप्ति की इच्छा को अनेक बाधाएं मिलती हैं जिससे व्यक्ति में एक हीनता का भाव (Feeling of inferiority) उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण व्यक्ति की कोई वास्तविक अथवा कल्पित हीनता हो सकती है। यह भाव अत्यन्त अरुचिकर होता है। कई लोग यत्न करके इस हीनता से ऊपर उठ जाते हैं—जैसे, डिमोस्थिनीज़ पहले अच्छी तरह बोल न सकता था परन्तु उसने मुंह में पत्थर रखकर बोलने का अभ्यास किया और अत्यन्त यत्न करने से यूनान का सबसे अच्छा वक्ता बन गया। परन्तु कई लोग इस हीनता-भाव का समुचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। तब यह मानसिक और वातिक रोगों, अयुक्तियुक्त भयों, चोभोन्माद आदि को उत्पन्न करता है। ऐसे रोगों को दूर करने का साधन यह है कि व्यक्ति को पता लग जाय कि उसमें हीनता का भाव है, उसका अमुक कारण है, और उसके अपने अन्दर अमुक दोष हैं जिनके कारण वह उसका मुकाबला नहीं कर सकता। ऐसा ज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति अपने हीनता-भाव का कोई हल ढूंढे। एडलर के अनुसार शक्ति-प्राप्ति

की इच्छाएं अपने आपको स्वप्नों व जाग्रत् अवस्था की कल्पनाओं द्वारा पूरा करती रहती हैं। परन्तु वे इच्छाएं वर्तमान काल की इच्छाएं होती हैं, फ़्रायड के सिद्धान्त की तरह भूत-काल और बाल्यकाल की इच्छाएं नहीं। कभी कभी देखा जाता है कि कोई स्त्री या बच्चा सिर दर्द अथवा किसी और रोग से बीमार रहता है, इलाज करने पर राज़ी नहीं होता, पुनः पुनः बीमार हो जाता है। उसका मानसिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि घर में उस स्त्री का पर्याप्त सन्मान नहीं होता, अथवा उस बच्चे के साथ पर्याप्त प्यार नहीं किया जाता। परन्तु बीमार रहने से वह सारे परिवार के ध्यान का केन्द्र बन जाता है। यह कहना भी ठीक नहीं कि रोगी रोग का बहाना करता है। कई प्रकार की सूक्ष्म परखों से निश्चय कर लिया जाता है कि रोगी बहाना नहीं कर रहा। इस प्रकार, उस बच्चे या स्त्री की शक्ति-प्राप्ति की इच्छा अपने आपको रोग के रूप में प्रकट करने लगती है। मानसिक विश्लेषण के पश्चात् यदि घर वाले अपने व्यवहार को बदल देते हैं तो वह रोग जाता रहता है।

एलिस[1] नामकी एक लड़की थी जिसकी आयु ११, १२ वर्ष की थी। लड़की सुन्दर, सुडौल और समझदार थी, परन्तु उसके मां बाप उसके प्रति उदासीन थे और कोई न कोई बहाना करके उसे मित्रों अथवा रिश्तेदारों के यहां भेज देते थे।

---

1 Psycho-Analysis for Normale People by G. Coster.

इससे लड़की में उच्छृङ्खलता आगई, वह कई वर्षों तक स्कूल में जाकर भी पढ़ लिख न सकी। लोगों के ध्यान को अपनी ओर खींचने के लिए वह निरन्तर बोलती, व्यर्थ प्रश्न पूछती और लोगों से चिपटती रहती थी। छोटे छोटे बच्चों को तंग करके डराती थी। जब उसका मानसिक विश्लेषण किया गया तो मालूम हुआ कि वह बिना जाने इस समस्या के विषय में सोचती रहती थी कि 'क्या कोई मां से भी अधिक प्रेम कर सकता है? नहीं, यह असम्भव है। परन्तु मेरी मां मुझसे प्रेम नहीं करती, अतः मैं अन्य बच्चों से भिन्न हूं। मुझको वह चीज़ प्राप्त नहीं जो औरों को प्राप्त है'। इस प्रकार, इस लड़की को एक ओर से जो हीनता का अनुभव होता था उसका बदला वह उक्त अप्रिय रूपों में शक्ति प्राप्त करके ले रही थी।

मानसिक विश्लेषण के एक और सम्प्रदाय का प्रवर्तक जूंग भी पहिले फ़ायड का अनुयायी था, परन्तु मतभेद के कारण आगे चलकर उस से अलग होगया था। जूंग का विचार था कि आधार-भूत-प्रवृत्ति न सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा है, न शक्ति प्राप्ति की, अपितु मनुष्य में एक स्वाभाविक शक्ति है जिसे जीवन-शक्ति कह सकते हैं। यह अपने आपको अनेक रूपों में प्रकट करती रहती है। सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा और शक्ति-प्राप्ति की इच्छा भी इस के दो आवश्यक रूप हैं। इस जीवन-शक्ति के प्रवाह को अनेक बाधाएं पहुंचती है। शक्ति-प्राप्ति में या किसी अन्य

इच्छा में बाधा अथवा अनेक प्रकार के भय इस शक्ति के प्रवाह में रुकावट डालते हैं । यदि इनका उचित रूप में मुकाबला करके सन्तोषजनक हल ढूंढ लिया जाए तब तो अच्छा है। परन्तु यदि बलात् इनको निकालने का यत्न किया जाए तो ये उपचेतना में चले जाते हैं और कई प्रकार के विकार उत्पन्न कर देते हैं—उदाहरणार्थ एक दबाई हुई चिन्ता अपने आपको, सिर या अन्य अंगों को हिचकोले देते रहने की आदत अथवा चिड़चिड़ेपन के रूप में प्रकट कर सकती है। कल्पना[1] कीजिए कि कोई व्यक्ति चिकित्सालय में बीमार पड़ा है, उसे ज्ञात है कि जब वह स्वस्थ होकर बाहर जाएगा तो उसकी नौकरी छूट चुकी होगी। वह इस स्थिति का मुकाबला नहीं कर सकता और इसे भूलने का यत्न करता है। वह अपने आपको स्पष्ट रूप में यह नहीं कहता कि मैं संसार का मुकाबला नहीं कर सकता अतः मैं स्वस्थ नहीं होऊंगा, क्योंकि बुद्धि उसको बताती है कि यह पौरुष-हीनता है। परन्तु उपचेतना में दबकर यही अस्वस्थ रहने की इच्छा एक हल निकाल लेती है और शरीर पर ऐसा प्रभाव डालती है कि वह स्वस्थ नहीं होता, उसकी बीमारी बढ़ती चली जाती है। वह जान बूझकर बीमारी का बहाना नहीं करता किन्तु उसकी उपचेतना में रहती हुई इच्छा वास्तव में रोग उत्पन्न कर देती है।

१. Psycho-Analysis for Normal People by G. Coster Page 54

गत महायुद्ध[1] (१६१४-१६१६) में एक सिपाही अपनी खन्दक (Trench) में लेटा हुआ था, सामने की दीवार में एक छोटा सा छिद्र था जिस में से वह समय समय पर उठकर शत्रु-सेना की ओर गोली चलाता था। शत्रु-सैनिकों ने भी यह बात ताड़ली और जब वह गोली चलाने उठता था तो वे भी निशाना ताक कर गोलियां चलाते थे, उनकी गोलियां उसछिद्र के बिल्कुल पास ही लगती थीं। यह स्थिति बड़ी भयंकर थी अत: वह देर तक इस को सहन नहीं कर सका। वह अन्धा होगया, आंखें और दिमाग़ सर्वथा ठीक अवस्था में थे परन्तु दिखाई देना बन्द होगया। डाक्टरों नें परख कर निश्चय कर लिया कि वह बहाना नहीं कर रहा था। ऐसी ही अवस्था में कई अन्य सिपाहियों की टांगें गतिहीन होगई, अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य रोग उन्हें होगया।

यहां हमारा इस बात से सम्बन्ध नहीं कि मानसिक विश्लेषण के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त कहां तक ठीक हैं। बहुत से मनोवैज्ञानिकों की सम्मति है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के सिद्धान्त में आंशिक सत्य है। फ्रायड और एडलर मनुष्य-स्वभाव के अत्यन्त आवश्यक अंशों की ओर संकेत करते हैं परन्तु एक एक ही अंश पर अत्यधिक बल देते हैं, जिससे उन के सिद्धान्त एक-पक्षीय होजाते हैं। जूंग ने दोनों का समन्वय

---

१ Psychology by Woodworth 8th Edition Page 563.

करने का यत्न किया है परन्तु उस के भी उपचेतना-संबन्धी सिद्धान्तों पर कुछ आक्षेप किए जाते हैं जिन के विषय में हमें यहां कुछ नहीं कहना। साधारण अनुभव और चिकित्सा से भी प्रत्येक सिद्धान्त की कुछ पुष्टि होती है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्त के आधार पर कुछ रोगियों की चिकित्सा में सफल होता है, अतः हम समझ सकते हैं कि प्रत्येक सिद्धान्त में सत्य का कुछ अंश है; और तीनों में सम्मिलित रूप से तो बहुत सी सचाई प्रतीत होती है। मनुष्य की जीवन-शक्ति अपने आप को कई इच्छाओं के रूप में प्रकट करती है। सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा और शक्ति-प्राप्ति की इच्छा इन में से दो प्रधान इच्छाएं हैं। इन अनेक प्रकार की इच्छाओं के दबने से रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

तीनों सम्प्रदाय इस बात में सहमत हैं कि मनुष्य के सब कामों का कारण कोई इच्छा ही होती है और अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों तथा विकारों के मानसिक कारण होते हैं, और मानसिक विधियों से ही इनकी चिकि सा हो सकती है। इन में से कम से कम दो सम्प्रदायों (फ़ायड और जूंग) के अनुयायी रोगों का कारण उपचेतना को मानते हैं। एडलर के अनुसार, साधारण चेतनता का अस्पष्ट भाग इनका कारण है।

अब हम देखते हैं कि इन सिद्धान्तों से इस पुस्तक के विषय अर्थात् आत्मा के सिद्धान्त पर क्या प्रकाश पड़ता

है:—यदि इच्छाएं मनुष्य के सब कामों का कारण हैं तो प्रकृतिवाद के इस सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है कि चेतनता शरीर पर प्रभाव नहीं डाल सकती। यदि चेतनता शरीर पर प्रभाव डाल सकती है तो इसका अधिष्ठान शरीर से अतिरिक्त कोई चीज़ होनी चाहिए[1]। मनुष्य में शरीर से अतिरिक्त कौन सी चीज़ हो सकती है ? मनुष्य का सब भौतिक प्राकृतिक अंश तो उसका शरीर ही है, अतः शरीर से अतिरिक्त सत्ता वही हो सकती है जो भौतिक और प्राकृतिक न हो। ऐसी सत्ता आत्मा के अतिरिक्त क्या हो सकती है ? साथ ही इच्छा जैसी चीज़ का अधिष्ठान शरीर या कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं हो सकती, आत्मा जैसी आध्यात्मिक सत्ता ही हो सकती है। कोई आधारभूत प्रवृत्ति—उत्पत्ति की इच्छा या शक्ति-प्राप्ति की इच्छा—अथवा कोई अन्य जीवन-शक्ति,जो अपने आपको अनेक इच्छाओं और प्रवृत्तियों के रूपों में प्रकट करती है, तभी सम्भव है यदि उसका अधिष्ठान कोई आध्यात्मिक सत्ता अर्थात् आत्मा हो। शक्ति-प्राप्ति आदि आध्यात्मिक इच्छाएं जड़ प्रकृति का गुण कैसे हो सकती हैं ? प्रकृति का सर्वसम्मत

---

१. यदि दिमाग़ादि शरीर का कोई भाग चेतनता का अधिष्ठान हो तो मनुष्य के कामों और मानसिक विकारों का वास्तविक कारण इच्छाएं नहीं रहेंगी दिमाग़ और उसके विकार वास्तविक कारण होंगे, परन्तु मानसिक विश्लेषक ऐसा नहीं मानते।

गुण जड़ता (Inertia) है अर्थात् इस में गति का कारण कोई बाह्य शक्ति होनी चाहिए। अतः प्रकृति को किसी भी प्रकार की प्रवृत्तियों का कारण नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रवृत्तियां गति-रूप और गति-जनक होती हैं। इस प्रकार, मानसिक विश्लेषण के सिद्धान्त आत्मवाद के पोषक प्रतीत होते हैं। जहां तक ये ठीक हैं वहां तक प्रकृतिवाद ग़लत होना चाहिये। ये संसार को मिथ्या और प्रतीतिमात्र भी नहीं कहते। अतः आत्मवाद के साथ इनकी अधिक से अधिक अनुकूलता प्रतीत होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये सिद्धान्त ऐसे सिद्धान्तों के विरोध में उत्पन्न हुए थे जो व्यक्तित्व के विकारों और क्षोभोन्माद आदि अनेक रोगों की व्याख्या दिमाग़ के विकारों और चोटों द्वारा अर्थात् भौतिक चीज़ों के आधार पर करते थे। पाश्चात्य-संसार में आजकल मानसिक विश्लेषण के सिद्धान्त बहुत सर्वप्रिय होते जा रहे हैं और लोग इनसे बड़ी बड़ी आशाएं रखते हैं।

तेरहवां अध्याय

उपसंहार

इस पुस्तक के भिन्न भिन्न अध्यायों में हम ने आत्मा की सत्ता के समर्थन में भिन्न भिन्न प्रकार की बहुतसी युक्तियां दी हैं। अब हम अति संक्षिप्त रूप में और थोड़ी सी पंक्तियों में उनको इकट्ठा कर देते हैं ताकि पाठकों को उनका परस्पर सम्बन्ध भली भांति ज्ञात होजाए:—

मनुष्य का एक शरीर है जो प्रकृतिमय प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, उस में एक चेतनता-प्रवाह है जो प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। परिवर्तन किसी स्थिर सत्ता में ही हो सकता है। यदि कोई स्थिर सत्ता न हो तो कहना पड़ेगा कि एक सत्ता नष्ट हो गई और दूसरी उत्पन्न होगई। इस अवस्था में प्रश्न होगा कि नई सत्ता कहां से आगई, और पहली सत्ता कहां चली गई अर्थात् अभाव से भाव की उत्पत्ति और भाव का अभाव में परिणत हो जाना, और वह भी बिना

कारण के, मानना पड़ेगा। परन्तु यह दार्शनिक दृष्टि से अविचारणीय और असम्भव है। अतः चेतनता का कोई स्थिर आधार होना चाहिये। यह सत्ता चेतन होनी चाहिये क्योंकि चेतनता किसी जड़ वस्तु अर्थात् प्राकृतिक शरीर का गुण नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य में एक चेतन आत्मा की सत्ता भी माननी पड़ेगी। इस प्रकार, स्वाभाविक अनुमान यह है कि मनुष्य शरीर और आत्मा दो पदार्थों का योग है। परन्तु आजकल के अनेक पाश्चात्य विचारक दो प्रकार की मौलिक आधारभूत सत्ताएं नहीं मानना चाहते, वे केवल एक ही अन्तिम सत्ता मानते हैं। अतः वह शरीर को चेतनता का परिणाम अथवा चेतनता को शरीर का परिणाम कहते हैं। अब शरीर को चेतनता का परिणाम मानना स्पष्टतया अयुक्तियुक्त है। ऐसा मानने का अर्थ यह है कि प्रकृति को विचार का परिणाम माना जाए। परन्तु जड़ विस्तार-युक्त स्थूल प्रकृति, चेतन विस्तार-रहित विचार का परिणाम कैसे हो सकती है ? प्रकृति दूर दूर तक फैली हुई और अति-प्राचीन वस्तु है। विचार केवल मनुष्य में अथवा जीवों में ही दिखाई देता है जो पृथिवी आदि प्राकृतिक पदार्थों से पीछे बने प्रतीत होते हैं। प्रोफ़ेसर फ्लिण्ट के शब्दों में, विचार को प्रकृति का कारण मानना ऐसा ही है जैसा इस समय के किसी एक पत्ते को संसार के सब भूत और वर्तमान बनों का कारण मान लेना। इसके अतिरिक्त, चेतनता को स्वयं किसी आधार या कारण

की आवश्यकता है। इस प्रकार चेतनता को शरीर का कारण मानने का अर्थ यह है कि आत्मा को शरीर का कारण माना जाए। यह दो सर्वथा विसदृश पदार्थों को परस्पर मिला देना होगा और इससे कार्य-कारण-भाव के नियम की ही उपेक्षा हो जाएगी।

प्रकृतिवादी लोग (आजकल के वैज्ञानिक प्रायः प्रकृतिवादी हैं) चेतनता को शरीर का परिणाम मानना चाहते हैं। उनका सिद्धान्त है कि चेतनता दिमाग़ के अणुओं की गतियों और रासायनिक परिवर्तनों से उत्पन्न हो जाती है। परन्तु इस सिद्धान्त के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है। यह केवल परीक्षण-प्रिय वैज्ञानिकों की इस इच्छा पर आश्रित है कि कोई ऐसी सत्ताएं न मानी जाएं जिन के विषय में प्रयोग-शाला में परीक्षण और निश्चित गणनाएं न हो सकें। आज तक, कोई यह नहीं दिखा सका कि दिमाग़ के अणु अपनी गतियों आदि से विचार को किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। अभी तक यह भी ज्ञात नहीं होसका कि विचार की किसी अवस्था के समय दिमाग़ के अणुओं की क्या दशा होती है। कहा जाता है कि अमुक प्रकार का विचार अथवा अमुक मानसिक शक्ति दिमाग़ के अमुक भाग की क्रिया पर आश्रित है। कुछ मनुष्य मिलते हैं जिन में उस प्रकार के विचार या मानसिक शक्ति का अभाव होता है और साथ ही दिमाग़ का वह विशेष भाग भी अस्वस्थ, जीर्ण अथवा कटा हुआ होता है।

परन्तु अन्य मनुष्य मिल जाते हैं जिन में दिमाग़ का वही भाग स्वस्थ अवस्था में होता है परन्तु जिन में उस विचार या उस मानसिक शक्ति का अभाव होता है, अथवा जिन में दिमाग़ के उस भाग के अस्वस्थ होते हुए भी वह विशेष प्रकार का विचार या मानसिक शक्ति पूर्ण रूप में पाई जाती है। इस के अतिरिक्त, हमने यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि चेतनता शरीर की ऐच्छिक क्रियाओं का कारण प्रतीत होती है, इस से सिद्ध होता है कि चेतनता का आश्रय या अधिष्ठान शरीर से अतिरिक्त कोई सत्ता है। यदि चेतनता शरीर की क्रियाओं का परिणाम हो तो शरीर का चेतनता पर प्रभाव तो पड़ सकता है, परन्तु चेतनता का शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ सकता, यदि पड़े भी तो वह प्रभाव अनिवार्य रूप से काय करने वाला होना चाहिए क्योंकि शरीर-जन्य होने से चेतनता भी कार्य-कारण-भाव के नियम के सर्वथा आधीन होगी। परन्तु चेतनता में स्वतन्त्र-कर्तृत्व और चुनाव करने की शक्ति दिखाई देती है, अतः उसका अधिष्ठान शरीर से अतिरिक्त कोई सत्ता होनी चाहिए। आजकल मानसिक शक्तियों के सम्बन्ध में खोज द्वारा मनुष्य की अनेक ऊंची शक्तियों का पता लगता है जैसे सैंकड़ों मीलों से देख या सुन लेना, दूसरों के विचार को जान लेना इत्यादि इत्यादि। ऐसी शक्तियां शरीर की शक्तियों से बहुत ऊंची और उनसे बहुत भिन्न हैं। अतः इन्हें दिमाग़ की क्रियाओं का परिणाम नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार, ये शक्तियां भी मनुष्य में शरीर से अतिरिक्त किसी चेतन सत्ता अर्थात् आत्मा की ओर संकेत करती हैं। मनुष्य की आदर्शप्रियता, सत्यपरायणता आदि नैतिक गुण भी शरीर के गुणों से सर्वथा विसदृश हैं, अतः शरीर से उत्पन्न होने वाले नहीं हो सकते। इनका अधिष्ठान भी आत्मा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? इस प्रकार, चेतनता-प्रवाह को शरीर का कारण मानना अथवा शरीर को चेतनता-प्रवाह का कारण मानना व्यर्थ है। अतः चेतनता का आधार आत्मा को मानना और मनुष्य को, आत्मा तथा शरीर, इन दो सत्ताओं का योग मानना ही युक्ति-युक्त है।

चेतनता की व्याख्या करने के लिए आजकल विकास-वादी वैज्ञानिक कुछ और कल्पनाएं भी करते हैं:— कहा जाता है कि नीहारिका[1] अर्थात् प्रकृति के प्रारम्भिक रूप में प्रत्येक प्राकृतिक अणु के साथ एक चेतनता का अणु भी लगा हुआ था। अणुओं के परस्पर जुड़ने से जैसे प्राकृतिक वस्तुएं उत्पन्न होगईं वैसे ही ऊंचे प्रकार की चेतनताएं भी। जब ऐसे रूप में परमाणु जुड़े कि मनुष्यों के दिमाग़ उत्पन्न हुए तो प्रत्येक दिमाग़ के साथ चेतनता भी उत्पन्न हो गई। इस सिद्धान्त पर बड़ा भारी आक्षेप यह है कि चेतनताएं बिना किसी मिलाने वाले माध्यम के स्वयं मिल कर समास नहीं बना सकतीं।

---

१. Nebula.

मिलाने वाले माध्यम के बिना कहीं कोई समास बनता दिखाई नहीं देता। यदि इन चेतनताओं को मिलाने के लिए कोई माध्यम मान लिया जाए तो ऐसा माध्यम आत्मा ही हो सकती है। इस प्रकार हमें फिर आत्मा की सत्ता माननी पड़ती है। चेतनता की कोई अवस्था ही माध्यम नहीं हो सकती क्योंकि वह तो उन चीज़ों में से ही एक है जिन के मिलने से समास बनना है। यदि यह औरों को मिलाएगी तो इसे औरों के साथ क्या चीज़ मिलाएगी ? कई वैज्ञानिक कल्पना करते हैं कि दिमाग़ में ही एक प्रधान कोष्ठ[1] है जो चेतनताओं को मिलाने का काम करता है। इस सिद्धान्त में कठिनाई यह है कि दिमाग़ में शरीर-रचना-शास्त्र[2] की दृष्टि से कोई ऐसा कोष्ठ दिखाई नहीं देता जिसे प्रधान कोष्ठ कहा जा सके। इसके अतिरिक्त, कोई कोष्ठ भी दार्शनिक दृष्टि से एक चीज़ नहीं है, यह भी अनेक अणुओं का परस्पर मेल मात्र है। ऐसी अवस्था में, यह मिलाने वाला माध्यम नहीं हो सकता। मिलने का अर्थ यह है कि सब मिलने वाली चीज़ें एक ही चीज़ पर प्रभाव डालें। कोष्ठ एक चीज़ नहीं अतः मिलाने का काम नहीं कर सकता। मिलाने वाली चीज़ वही हो सकती है जो एक हो अर्थात् निरवयव हो। ऐसी चीज आत्मा ही हो सकती है। इस प्रकार फिर हमें आत्मा ही की सत्ता को मानना पड़ता है।

---

१. Cell २. Anatomy.

आत्मा की सत्ता के अन्य भी कई प्रमाण हैं—जैसे, मनुष्य को अपनी चेतनता में 'मैं' का अनुभव होता है और प्रतीत होता है कि मैं वही हूं जो पहले था। कई विश्वास मनुष्य को इतने प्यारे हैं कि वह उन्हें छोड़ नहीं सकता। उदाहरणार्थ, मनुष्य के स्वतन्त्र-कर्तृत्व[1] का विश्वास, मनुष्य की अमरता[2] का विश्वास। परन्तु यह विश्वास तभी यथार्थ हो सकते हैं यदि आत्मा की सत्ता हो। शरीर अमर नहीं है और प्राकृतिक होने से कार्य-कारण-भाव के नियम में सर्वथा बंधा हुआ है, अतः इसमें स्वतन्त्र-कर्तृत्व भी नहीं है।

ज्ञान की कई विशेषताएं भी आत्मा की सत्ता की ओर संकेत करती हैं—मनुष्य भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञानों की परस्पर तुलना कर सकता है और उन ज्ञानों का समास बना सकता है। यह तभी सम्भव है यदि सब इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाली एक ही सत्ता हो और इन्द्रियां उसका साधन मात्र हों। ऐसी सत्ता आत्मा ही हो सकती है जो निरवयव है। शरीर के सब भाग अवयवी हैं, अतः उनमें एकता नहीं हैं और वे यह काम नहीं कर सकते। मनुष्य को सार्वजनिक[3] सत्यों का ज्ञान है। इस ज्ञान की व्याख्या इन्द्रियानुभव से नहीं हो सकती क्योंकि इन्द्रियानुभव समय और स्थान में परिमित होता है।

---

१. Free will २. Immortality

३. Universal Truths

अतः मनुष्य में शरीर से ऊंची किसी सत्ता अर्थात् आत्मा को मानना पड़ेगा। जीवन की व्याख्या भी आत्मा को माने बिना नहीं हो सकती। प्रकृति जड़ है, जीवन का स्रोत नहीं हो सकती। और आज तक कोई वैज्ञानिक दिखा नहीं सका कि जड़ प्राकृतिक पदार्थों से जीवित वस्तुएं कैसे उत्पन्न हो सकती हैं।

भारतीय दर्शनों का संक्षिप्त इतिहास देते हुए हमने दिखाया है कि भारतवर्ष के प्रायः सब दर्शन आत्मा की सत्ता को मानते हैं और इसके समर्थन में अकाट्य युक्तियां देते हैं जो पाश्चात्य विचारकों की युक्तियों से मिलती जुलती हैं। पाश्चात्य विचार के संक्षिप्त इतिहास से हमने दिखाया है कि पश्चिम में भी अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक अनेक शिरोमणि विचारक आत्मा के सिद्धान्त को मानते रहे हैं।

एकतावादी प्रत्ययवाद[1] और अन्य प्रकार के अद्वैतवाद आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता का समर्थन करते हैं। हमने दिखाने का यत्न किया है कि ये सिद्धान्त मानने योग्य नहीं। इनको मानकर संसार की सत्ता पर अविश्वास करना पड़ता है या परमात्मा की सत्ता पर। इन सिद्धान्तों के अनुसार, परमात्मा पूर्ण है और परमात्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं हैं, अतः संसार

१. Monisitic Idealism.

में पुण्य और पाप भी पूर्ण परमात्मा के ही अंश होने चाहिएं। इस प्रकार, भलाई और बुराई में भेद नहीं रहता। अतः इन सिद्धान्तों में नैतिकता[1] के लिए भी स्थान नहीं। धार्मिक व्यक्ति प्रार्थनादि से परमात्मा का आश्रय लेना चाहता है, शक्ति प्राप्त करना चाहता है। इसलिए दो सत्ताएं होनी चाहियें—एक बल देने वाली और दूसरी बल प्राप्त करने वाली। अद्वैतवाद आत्मा और परमात्मा को एक ही बना देता है, अतः वह धर्म की समुचित मांगों के अनुकूल नहीं। अद्वैतवादियों के मुख्य मुख्य सम्प्रदायों के सिद्धान्तों पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि उनके सिद्धान्त युक्तिसंगत भी नहीं हैं। इस प्रकार, आत्मा को परमात्मासे भिन्न मानना ही उचित है।

आत्मा अमर है क्योंकि निरवयव है, और नाश केवल अवयव-विच्छेद का ही नाम है। आत्मा अनादि है क्योंकि यदि इसकी उत्पत्ति मानें तो इसका कर्ता ईश्वर होगा और इस प्रकार ईश्वर इसके पाप आदि का स्रोत हो जाएगा और उस अवस्था में ईश्वर को पवित्र नहीं माना जा सकेगा, ईश्वर में एक त्रुटि आ जाएगी। आत्मा निरयव है। यदि सावयव हो तो भिन्न भिन्न इन्द्रियानुभवों की तुलना करने में अशक्त होगी और स्मृति का आधार भी नहीं हो सकेगी।

---

१. Morality

आधुनिक मनोविज्ञान साधारण चेतनता के अतिरिक्त एक उपचेतना[१] को मानता है। संसार-प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्ज लिखता है[२] कि 'जब से मैंने मनोविज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया है तब से लेकर आज तक इस विज्ञान में जो आविष्कार हुए हैं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उपचेतना का आविष्कार है'। इस उपचेतना की अनेक विचित्र और असाधारण शक्तियां हैं जिनकी व्याख्या आत्मा की सत्ता को मानने के बिना नहीं हो सकती।

आजकल पश्चिम में एक सिद्धान्त बहुत सर्वप्रिय हो रहा है जिसका नाम मानसिक विश्लेषण[३] है। यह अनेक रोगों का स्थान उपचेतना में मानता है और इसके अनुसार उन रोगों की चिकित्साविधि भी उपचेतना की सत्ता पर आश्रित है। अतः जितनी मात्रा में इस विधि को सफलता प्राप्त होती है उतनी मात्रा में उपचेतना की सत्ता की पुष्टि होती है। इस विधि के अनुसार, अनेक शारीरिक रोगों के कारण भी मानसिक हैं और उनकी चिकित्सा भी मानसिक रीतियों से ही हो सकती है। इससे पता लगता है कि विचार शरीर पर शासन करता है। अतः इसका आश्रय या अधिष्ठान शरीर नहीं हो सकता, शरीर से भिन्न कोई सत्ता (अर्थात् आत्मा) होनी चाहिए।

---

१. Secondary Consciousness or Subconscious Self.

२ Varieties of Religious Experience Page 233.

3. Psycho-Analysis.

आत्मा का सिद्धान्त मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी है। आत्मा को मानने का अर्थ है आशा और उत्साह के साथ जीना, आदर्शों के लिए जीना। आत्मा को न मानने का अर्थ है निराशावाद। प्रोफ़ेसर जेम्ज़[1] लिखता है कि 'वैज्ञानिक प्रकृतिवाद की दृष्टि में मनुष्य-जाति की वैसी ही स्थिति है जैसी उन लोगों की होगी जो एक झील के पृष्ठ पर जमी हुई बर्फ़ पर रहते हों। चारों ओर सीधी ऊंची पहाड़ियां हों जिससे कहीं भाग जाना असम्भव हो, तथा उन लोगों को ज्ञात हो कि बर्फ़ आहिस्ता आहिस्ता पिघल रही है और उनके डूबने का दिन निकट आ रहा है। दिन को जितनी तेज़ धूप होगी और रात्रि को जितनी प्रचण्ड अग्नियां जलाई जाएंगी उतनी ही जल्दी बर्फ़ पिघलेगी और एक विचारशील व्यक्ति को यह सारा दृश्य उतना ही निराशामय प्रतीत होगा'। इस प्रकार, मनुष्य के प्रियतम विश्वास तभी बने रह सकते हैं यदि वह परमात्मा और आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता हो।

समाप्त

१. Varieties of Religious Experience Page 141.

Glossary and Index

सन्ध्या सुमन

[लेखक—श्री पं० नित्यानन्द जी वेदालङ्कार]

उपासना का प्रत्येक धर्म में एक विशेष महत्त्व है। किन्तु सृष्टि की सबसे प्राचीन और सबसे नवीन—अविनश्वर—अपौरुषेय वेदोक्त उपासना का महत्व कुछ निराला ही है। यदि आप इस अनिर्वचनीय महत्ता का आस्वादन करना चाहते हैं और अनुपम भक्ति-सरोवर में स्नान करना चाहते हैं तो ऋषि निर्दिष्ट अर्थानुयायी सन्ध्या-सुमन का स्वाध्याय कीजिये। लेखक की भाषा इतनी सजीव है कि इस शास्त्रीय विषय को भी कवित्वमय बना दिया है। अवश्य पढ़िये। मूल्य केवल १)

ब्रह्मचर्य-सन्देश

[लेखक—श्रीयुत् प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार]

'ब्रह्मचर्य' जैसे नाजुक विषय पर इससे अच्छी दूसरी पुस्तक हिन्दी साहित्य में नहीं है। खण्डवा के 'कर्मवीर' की सम्मति है कि इस विषय पर हिन्दी में सब से अधिक प्रामाणिक, सब से अधिक खोज पूर्ण और सब से अधिक ज्ञातव्य विषयों से भरी हुई यही पुस्तक देखने में आई है"

यह पुस्तक ऐसी है जिसे पिता को पुत्र के हाथ में और शुभचिन्तकों को अपने नवयुवक मित्रों के हाथ में जल्दी से जल्दी दे देना चाहिये।

पुस्तक की उपयोगिता को समझते हुए गुर्जर देश के दो लेखकों ने इस पुस्तक के अलावा अलग अलग दो अनुवाद गुजराती भाषा में प्रकाशित किये हैं।

अंग्रेज़ी में यह पुस्तक 'Confidential Talks to Young men' के नाम से प्रसिद्ध है।

पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। लगभग पौने तीन सौ पृष्ठ की सचित्र पुस्तक का दाम केवल २)

मिलने का पता—गुरुकुल पुस्तक भण्डार

पो० गुरुकुल कांगड़ी जिला सहारनपुर